

**Text Dark And Light
Within The Book Only**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182536

UNIVERSAL
LIBRARY

सूर का कूटकाव्य

लेखक

डॉ० देशराजसिंह भाटी

एकमात्र वितरक

साहित्य प्रकाशन

मालीवाड़ा, दिल्ली-॥०००६

पु० देवा निमः प्रथमः पुत्रः ।
 प्रकाशक अर्जुन प्रकाशक, बडोदा, गुजरात ।
 मुद्रक अर्जुन प्रकाशक, बडोदा, गुजरात ।

परम श्रद्धय गुरुवर
मास्टर हरवंशसिंह जी
को सादर !

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य में कवि और भक्त के रूप में तो मूरदाग का महत्त्व असंदिग्ध है ही, कूटकाव्य कार के रूप में भी इनके महत्त्व को और इनकी विलक्षण प्रतिभा को अम्बीकार नहीं किया जा सकता । यदि इन्हें हिंदी के कूटकाव्य का जनक कहा जाये तो अनुचित न होगा, क्योंकि हिंदी में सर्वाधिक तथा योजनाबद्ध कूटों की रचना इन्होंने ही की है, परन्तु इनके कूट 'यत्र-तत्र' विखरे हुए हैं । अतः आवश्यकता थी एक ऐसी कृति की, जिसमें उनके सभी कूटों का संकलन हो । प्रस्तुत कृति इसी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयास है ।

यह कृति चार भागों में विभक्त है । प्रथम भाग में मूरसागर के, द्वितीय भाग में साहित्य-लहरी के और तृतीय भाग में मूर-मारावली के कूट-पद संकलित हैं । चतुर्थ भाग में 'मूर के शेष कूट' शीर्षक के अतर्गत मूर के उन कूटपदों का अकारादि क्रम से केवल संकलन है जो प्रामाणिकता के आधार पर विवादास्पद हैं ।

आशा है, यह प्रयास मूर के पाठकों को लाभान्वित करेगा और मूर-साहित्य के पुनर्मूल्यांकन में सहायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा ।

जिन विद्वानों की कृतियों से इस कृति के प्रणयन में सहयोग मिला है, मैं उन सभी का आभारी हूँ ।

—देशराजसिंह भाटी

विषय-सूची

१. सूर का कूटकाव्य : एक विवेचन	१—३२
२. सूरसागर के कूट	३३—१२३
३. साहित्य-लहरी के कूट	१२४—२३१
४. सूर-सारावली के कूट	२३२—२४१
५. सूर के शेष कूट	२४२—२६४

अनुक्रमणिका

सूरसागर के कूट

अद्भुत एक अनूपम बाग	६०
अहो दधि-ननया-सुत-रिपु-गति-गमनी	१२१
आजु तन राधा मज्यौ सिंगार	४६
आजु तोहे काहि आनद थोर	११७
आजु बन राजत जुगल किमोर	४५
नहि तेरे वृन्दावन बाग	८६
उर पर देखियन ममि मान	८८
उठि राधे कत रैन गँवावै	६२
उडुपति सौ बिनवति मृगनैनी	११२
ऊधौ इतने मोहि मतावत	१०५
कहँ लौ राखिय मन बिरमाई	६६
कहत कत परदेसी की बात	११०
कहि पठई हरि बात सु चित दै	८५
कहियो अति अबला दुख पावै	१२१
कुंज मै बिहरति नवलकिसोर	११४
गौरी-पूत-रिपु-ता-सुत-आए प्रीतम ताहि निनारे	१०१
ग्वालनि छाँड़ि दोष रहउ खर्यौ	१०३
जनि हटि करहु सारँगनैनी	६३
जब दधिरिपु हरि हाथ लियो	३५
जब हरि मुखी अधर धरी	३६
जलमुन-प्रीतन न न न न न न न न न न	६१
जलसुत-सुत ताकौ रिपु-पति-सुत	११५

तऊ न गोरस छाँड़ि दियौ	५०
त जु नील पट ओट दियौ री	८७
दधिसुत जामै नंद-दुवार	३८
दधिगुन-बदनी दधिहि निवारौ	८०
देखि री प्रकट द्वादस मीन	७४
देखि रे प्रगट द्वादस मीन	१०८
देखि सखि चारि चंद्र इकजोर	७३
देखि सखि तीस भानु इकठोर	७५
देखि सखि पाँच कमल द्वै सम्भु	७२
देखि सखि साठ कमल इक जोर	४८
देखो चारि कमल इक साथ	४२
देखो सात कमल इक ठौर	७०
देखौ माई दधिसुत मैं दधि जात	३७
देखौ सखि अकथ रूप अतूथ	११३
देखौ सोभा-सिधु समात	७१
धरसुत महज बनाउ किए	११६
पदमिनि सारँग एक मँभारि	६१
पीताम्बर की सोभा सखी री	५४
प्रात समय आवत हरि राजत	५३
प्रीत कर काहू सुख न लख्यौ	६८
वसे री नैनन मै पट इंद	६७
विधु-बदनी अरु कमल निहारै	७७
बिराजति एक अँग इति बात	६२
बैसी सारँग करहि लिए	१००
ब्रज की कहि न परति है बातै	१११
मनसिज माधौ मानिनिहि मारिहै	६४
माधव बिलमि बिदेस रहे	६७
मिलवहु पार्थ-मित्रहि आनि	५७
मेरौ मन हरि चितवन उरभानी	४६
रसना जुगल रसनिधि बोल	६५
रही दै घूँघट-पट की ओट	८६
राधा तै बहु लोभ कर्यौ	८४
राधा बसन स्याम तनु चीन्ही	५१

राधे जलसुत कर जु धरे	४१
राधे तेरे नैन किधौ री वान	७६
राधे तेरौ रूप न आन सौ	११८
राधे दधिसुत क्यौ न दुरावति	५२
राधे यै छवि उलटि भई	६०
राधे हरि-रिपु क्यौ न छिपावनि	८१
राधे हरि-रिपु क्यौ न दुरावति	८२
राधे हरि-रिपु क्यौ न दुरावति	८३
संग मोभित वृषभानु-किसोरी	६६
सकुचि तन उदधिसुता मुमकानी	७८
सखी मिलि करौ कछुक उपाय	५६
सखी री हरि-बिनु है दुख भारी	६४
सारंग-रिपु की ओट रहे दुरि	८८
मारंग सारंगधरहि मिलावहु	५८
मारंग-सुत-पति-तनया के तट	१२२
सुतादधि पति सौ क्रोध भरी	७६
सोचनि राधा लखत नखनि	१०४
स्याम अचानक आय गए री	५५
स्यामा निसि मै सरस बनी री	११६
हर कौ तिलक हरि बिनु दहत	६६
हरि-उर मोहनि बेलि लसी	४३
हरि कत भए ब्रज के चोर	११६
हरि-बिनु ऐसी विधि ब्रज जीजै	१०६
हरि मोकौ हरि-भष कहि जु गयी	१०२
हरि-सुत पावस प्रगट भयौ री	६८
हरि-सुत-सुत हरिकै तन आहि	१०६
हरि हमकौ यौ काहे बिसारी	१०७
हरै बलबीर बिना को पीर	३३

साहित्य-लहरी के कूट

अंग दान बल कौ दै बैठी	२२३
अघहर सोहत सुर न समेत	२१६
अदल पति रिपु पिता पतिनी	२३०
अब रथ देख परत न धूरि	१५६

अबलौं ऐसी नाहि सुनी	२२६
आज अकेली कुञ्ज-भवन में	१२६
आज गिर पूजन ग्वाल चले	२०३
आज नन्दनन्दन सजनी देख	२०१
आज सखिन सँग सरुचि साँवरी	१३०
आज रन कोपी भीम कुमार	१६७
आजु अली लखि अचरज एक	१६६
आवत सुनी नन्दकिसोर	१८३
आवत ही वृषभान-नन्दिनी	२०५
उलटौ रस सारँग हित सजनी	१३३
ऊधौ तब तैं अब अति नीकौ	१६१
कत मो गरे सौं लपटात	१६३
करि बिपरीत भवन में धारा	२११
कुंज-भवन तैं आज राधिका	१३६
कुंज-मग में आज मोहन मिलौ	२६६
कूदौ कालीदह में कान	१६६
खेलौ भानुजा के भीन	२१७
गिरजापति-पितु-पितु-पितहूँ तें	१३८
गृह तैं चली गोप-कुमारि	१३७
चाहन गंध बैरी बीर	१५०
छपे पति कत जात खेलन कान	२१६
जब तैं हौं हरि-रूप निहारौ	१६१
जब ब्रजचन्द चन्द मुख लखि है	२२०
जलज नीत हौं आज निहारे	२१४
जसुमत आज बैठ कै आगिन	२०१
जसुमत देख अपनी प्रान	१५७
जूप मोहि बहुपाद मिलावौ	१३२
जोर उतपल आदि उर तैं निकस	२००
ठाड़ी जलजा सुत कर लीनै	१६५
तात तात पर जात अकेली	१५८
दिनपति चले धौं कहाँ जात	१३१
द्रिगजा पति पतनी पति सुत के	१७६
दुती रासि दिनपति पुर नाहीं	२१६
दुरद मूल के आदि राधिका	१५४

देखत तू कत मान बिढ़ायो	१५१
देखत सजौ पांडु कुमार	१६८
देखत ही वृषभान-दुलारी	१३५
देख री वृषभानजा की दसा	१८१
देखि आज वृषभान-दुलारी	१७२
धिग धिग मोहि तोहि सुन सजनी	१६८
नन्दनन्दन बिन ब्रज मैं ऊधौ	१७३
नट देखत वृषभान-दुलारी	२२१
निसा-अंत-पति-सुत-सुभाव सुन	१३६
निसि दिन पंथ जोबत जाय	१४५
पलटि बरन वृषभान-नन्दिनी	१४८
प्राननाथ तुम बिन ब्रजबाला	१४६
फल-सूचक का कहिकै जायें	१८५
फिरि-फिरि उभकि भाँकत बाल	१५३
बंसीबंट के निकट आजु हैं	१६३
बन तैं आज नन्दकिसौर	१६०
बयरोचन सुत कौ सुभाव सुन	१७०
ब्रज मैं करो कौन उपाई	१७५
बाम बाम जिन सजनी कीन्हें	१८०
बालम कौन सीखी बान	१६१
बिप्र जू पावन पुन्य हमारे	२०४
बीती जामिनी जुग चार	१४६
बीथिन मिलौ नन्दकुमार	१४०
बैठी आज कुंजन ओर	१५२
बोल न बोलिऐ ब्रजचन्द	१७७
भई है कहा प्रथम सी बाल	१६४
भूसुत आइगो इहि बेर	१७६
भूसुत-मेघ-काल-निसि इनके	२२७
माधब अस न करिबे जोग	२१५
माधब कीजियै बिस्राम	२१२
मानिन अजहूँ छाँड़ी मान	१४३
मानिन अजहूँ मान बिसारी	१४२
मानिन तजौ नाहीं मान	१७६

मानिन वार बसन उधार	२१४
मुनि पुनि रसन के रस लेख	२३१
मेरी कही न मानत राधे	१८७
मोहन मो मन बसिगौ माई	१६४
यह सामरी सखी मेरे हित	२०८
रवि दो घर रिपु प्रथम बिकासौ	१६६
राधा वार वार जमुहात	१७३
राधे आज मदन मदमाती	१७१
राधे कियौ कौन सुभाव	१२४
राधे कैसे प्रान बचावै	१४७
राधे रात मुरत रँग राती	१२८
लखि ब्रजचंद चंद मुख राधे	१२६
सखी री मुन परदेसी की बात	१४५
सजनी जो तन वृथा गँवायौ	१६७
सजनी ताकी सब समझावै	२१३
सजनी नदनंदन आज	१६२
सजनी निरख अचरज एक	१७६
सजनी हौ न एक पहिचानी	२२२
सजनी हौ न स्याम-मुख हेरौ	१५६
सारँग सम कर नीक नीक मम	१२७
सारँग-पितु-मुत-धर-सुत-बाहन	२२४
मिधव-भग्व आराम मद्ध तै	२१०
मिधु-रिपु-भख-पति-पिता कौ	२२८
मिलीमुख सारँग निहारन करौ	१४१
सुन सुन नदनदन की रीत	१६६
सुरभी रस रातौ नदनदन	१३४
मिध-भग्व ग्रह सारँग सी जोत	१८४
सो जानो वृषभानु-दुलारी	२२५
सोवत कुंज-भवन मैं दोउ	१८६
सोवत थी मै सजनी आज	१६०
हरि उर पलक धारो धीर	१२५
हरि कौ अंतरिच्छ जब देखौ	२०६
हरि-ग्रहजा-पति-पतिनि सहेली	२०६

हेरत हरष नदकुमार	१५५
है ब्रजचंद चंद-चकोर	२२६
हौ अलि कितने जतन बिचारों	१८६
हों जल गई जमुना लैन	१८८

सूर-सारावली के कूट

अग्नि तान तेहि तात अँगना	२३६
अम्बुज-मात-तान-पति-ता-रिपु	२४१
अलि-बाहन-पति-बाहन-रिपु की	२३०
इंद्रसुता-पति-भुजा लगन लखि	२४०
कमल-पुत्र-ता-सुत-कर-राजत	२३३
कालिदी-पति-नैन-तासु-सुत	२४१
गंगा-सुत-रितु-रिपु सिख मेरी	२३८
जलसुत-बाहन देख बदन तुव	२३८
चतुरानन-सुत-ता-सुत-पतिनी	२३६
चतुरानन-सुत-ता-सुत-वा-सुत	२३३
तीस भानु द्वै मास सकल रितु	२४१
धरत कमल मै कमल कमल कर	२४०
पंकज उर पंकज जिन केरे	२३३
पति पाताल लगन तन धारन	२३६
बधु-कुमुद-पति-पिता-सुता जो	२४०
बायस अजा सब्द मनमोहन	२३८
दक्ष-प्रजापति-की-तनया-पति-ता-सुत-नार	२३६
दधिसुत-बाहन सुभग नासिका	२३५
भृंग-जूथ चतुरानन तनया	२३२
मारुत मुरपति-रिपु-ता-पतिनी	२३६
श्री बलदेव रास जे कहियै	२३७
मसि कौ भ्रात कहत ता बाहन	२३६
सातौ रास मेल द्वादस मै	२३७
सारँग ऊपर सारँग राजत	२३४
सारँग-रिपु की बदन ओट दै	२३४
सारँग-सुता देख सारँग कौ	२३५
सिधुसुता तुव भाग्य बिलोकत	२३७
निभुनना-गन-ता रिपु-गमनी	२३२

सुत-प्रह्लाद-तासु-सुत-ता-पितु-भ्राता	२३४
सैलसुता-धरि-ता-रिपु-बाधत	२३८

सूर के शेष कूट

अद्भुत एक कहाँ लौ बरनौ	२४२
अब मेरी राखी लाज मुरारी	२४२
अर्थ करौ पंडित अरु ग्यानी	२४२
अहो राजति राजीव नैन-छवि	२४२
आए माई चहुँ दिसि तै घनघोर	२४३
इंद्र उपबन इद्र अरि	२४३
एक समै मंदिर मै देखे	२४३
कमल पर कमल धरति उर लाइ	२४३
कमल पर बज्र धरति उर लाइ	२४४
कहुँ रजनी बिधु अधिक सुहाई	२४४
काहे कौ मम सदन सिधारे	२४४
गयौ मिटि पतियाहू ब्यौहार	२४४
गिरि गिरि परत वदन तै अम्भु	२४४
गोद लिए जसुदा नदनंदहि	२४५
चकोरहि त्रासत है राकेस	२४५
चितवति सारमुता की ओर	२४५
चौपरि जगत मढ़े जुग बीते	२४५
छिन पल राउरे की आस	२४६
जलमुत मै जल मलिल भयी री	२४६
जनि कर जलज पर जलजात	२४६
तब नैन इन सबहिनि सचु पायी	२४६
तुम बिनु कहौ कासो जाइ	२४७
तेरे तेज सुनौ किन भामिनि	२४७
तै जु पुकारे हरि पै जाइ	२४७
तै सखि उडुपति कौ गरब हर्यो	२४८
दस द्वै बानि कनक मौ नाँही	२४८
देखत आजु नाँही दोइ	२४८
देखि री देखि अद्भुत रीति	२४८
देखि री देखि अद्भुत रूप	२४८
देखौ राधे स्याम दसन छवि लागी	२४९

देख्यौ एक कलम अपार	२४६
देख्यौ री हरि नंगम नंगा	२४६
नन्द-गाँव कौ मारग वृभै	२४६
नन्दनन्दन दरसन जब पैहौ	२४६
नन्दनन्दन मुख देखौ माई	२५०
नागि एक दगहूँ दिम विचरनि	२५०
नीकन अद्भुत वान लई	२५०
नीबी ललित गही जदुराई	२५०
नेकु सखी सारँग ओट करि	२५१
पिय विनु बहन बैरिन बाइ	२५१
पथ रिपु दिन परस सब दिन	२५१
प्रभु कब देखिहौ मम ओर	२५१
प्रात समै नवकु ज सदन में	२५२
प्रेम कौ सारँग कौ दीन्हौ	२५२
वन तै आवात धेनु चराए	२५२
वन बोली वृषभानु-दुलारी	२५२
वालम बिलमि बिदेस रह्यौ री	२५२
बिधि कौ तात देहु री माई	२५३
विधु मै देखे बहुत प्रकार	२५३
बै मुख चितै जितै मुसकात	२५३
बैठी आजु रही अकेल	२५३
ब्रज मै आजु एक कुमारि	२५४
भजि मन दधिमुता-पति-चरन	२५४
भक्ति विनु बैल विराने ह्वै हौ	२५४
भरि भरि लेति लोचन नीर	२५४
भामिन आज भवन मै बैठी	२५५
भूलि रहे तुम कहाँ कन्हारै	२५५
माधौ जू यह मेरी इक गाइ	२५५
माधौ नैकु हटकौ गाइ	२५५
माधौ विन पमुपति-रिपु जारै	२५६
मुरली नाम गुन विपरीत	२५६
रजनी बिरह-वियोगिन राधे	२५६
राधे कत रिस सरसतई	२५८

राधे तुम उडु गन-पति-सुत-हीन्ह	२५७
राधे तेरे रूप की अधिकाइ	२५७
राधे तै कत मान कियौ री	२५७
राधे तै मन मोहि लियौ	२५८
राधे मान मनायौ मेरौ	२५८
रे मन निपट निलज्ज अनीति	२५८
रे मन समभु सोचि बिचारि	२५८
लैहौ दान इन्हनि कौ तुमसौ	२५९
लैहौ दान सब अँगनि कौ	२५९
लोचन लालच तै न टरै	२५९
लोचन लालची भए री	२५९
श्रीराधा-बिधु-बदन उदय तै	२६०
सखी ब्रज राजत एक धनी	२६०
सखी री कमल नैन परदेस	२६०
सखी री कंत दुरंतर छायो	२६०
सबै मिलि स्याम संदेस सुनौ री	२६१
सहज रूप की रासि नागरी	२६१
सारँग सारँगकर जु लिए	२६१
गिधुगना-पनि क्यौ न सँभारे	२६२
मुरति बिनु जलसुत बिकल भए	२६२
सुन्दर स्याम सोभा देख	२६२
सुनि हरि हरिपति आजु बिराजै	२६२
सोभा आजु भली बनि आई	२६२
स्याम-रँग नैना राँचै री	२६३
स्याम रति-अंत रस इहै कीन्हौ	२६३
हमकौ तुम बिन सबै सतावत	२६३
हरि-मुख निरखति नागरि नारि	२६३
हरि-रिपु अति गुंजार सुनाई	२६४

कूटकाव्य : एक विवेचन

सूरदास हिन्दी के मूर्धन्य कूटकाव्यकार है। इनके कूटकाव्य पर विहंगावलोकन करने से पूर्व 'कूट' शब्द की व्युत्पत्ति, कूटकाव्य के तत्त्व, कूटकाव्य का प्रयोजन, कूटकाव्य का वर्गीकरण, सूर-पूर्व कूटकाव्य आदि का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना युक्ति-संगत है।

'कूट' शब्द की व्युत्पत्ति

'कूट' शब्द 'कूट्' धातु में 'अच्' या 'घञ्' प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका अर्थ होता है कूटना या कूटा जाना—'कूटयति कूटयते वा कूटम्।' इसके व्युत्पत्तिलभ्य अनेक अर्थ हैं। यथा—आदान या स्वीकार करना, अवसन्न होना, डुबाना, सताना, भुकना, मुड़ना, पीड़ा देना, जलाना, नियंत्रित करना, विदा करना, वार्तालाप करना, सम्मति देना आदि। सामान्य व्यवहार में भी 'कूट' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। अमरकोशकार ने इसके नौ अर्थों का उल्लेख किया है—

‘मायानिश्चलयत्रेषु कैतवानूतराशिषु ।

अयोधने शैलशृंगे सीरांगे कूटमस्त्रियाम् ॥’

अर्थात् कूट शब्द के माया, निश्चल, यंत्र, कैतव, अनूत, राशि, अयोधन (हथौड़ा) शैल-शृंग और सीरांग (हल का एक भाग) ये नौ अर्थ होते हैं। इनके अतिरिक्त तुच्छ, हीन, द्वेष, गुप्तशस्त्र, व्यंग्यवाक्य, गूढ़प्रश्न, प्रहेलिका, गूढ़ोक्ति आदि अर्थों में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। काव्यशास्त्र में 'कूट' शब्द का प्रयोग गूढ़काव्य के लिए होता है। गूढ़काव्य का अर्थ है एक ऐसी विशिष्ट रचना, जिसमें अर्थ गूढ़ एवं कष्टबोध्य होता है।

काव्यशास्त्र में 'कूट' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग कब आरम्भ हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में किसी निश्चित काल की सीमा निर्धारित करनी तो असम्भव है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में ही इस शब्द का प्रयोग इस अर्थ में होने लगा था। ब्राह्मण-ग्रंथों में वाक्छल अथवा गूढ़ोक्ति को कूटकाव्य बताया गया है। ऐतरेय ब्राह्मणोपनिषद में लिखा है—

‘वाचः कूटेनैकपदया बलं विरज्य ।’

इसका अर्थ है—शब्दों के छल से तत्काल सेनाओं को रोक कर। परवर्ती

संस्कृत-साहित्य में भी इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है। भागवत में एक स्थान पर यह वाक्य मिलता है—

‘वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विमृष्टगुधिया ।’

अर्थात् वे देवर्षि के इन कूटवाक्यों को सुनकर स्वयं ही विचारने लगे।

और—

‘नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ।’

अर्थात् नारद ने पूर्ववत् वाणी के कूटवाक्य कहे। महाभारत में भी इस प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। यथा—

‘तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुनेः’

अर्थात् मुनि के उस श्लोक कूट का अर्थ आज भी उतना ही गूढ़ है। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ने ‘श्लोककूट’ की व्याख्या करते हुए लिखा है—

‘श्लोकेषु गूढार्थं, अन्यार्थत्वे सत्यर्थांतरप्रत्यायकत्वमित्यर्थः ।’

अर्थात् श्लोकों में गूढ़ अर्थ—शब्दों के वाच्यार्थ से स्पष्टतः भिन्न अर्थ।

इन प्रयोगों से यह अनुमान लगाना स्वाभाविक ही है कि परवर्त्ती कवियों और सूक्ति-संग्रहकारों ने ‘कूट’ शब्द के ऐसे प्रयोगों से ही अनुप्राणित होकर इस शब्द का प्रयोग गूढ़काव्य-रचना के अर्थ में प्रारम्भ कर दिया होगा।

संस्कृत-साहित्य में गूढार्थ-रचना का बाहुल्य है, अतः इस प्रकार की रचना के अनेक नाम मिलते हैं। यास्क ने अपने ‘निरुक्त’ में वर्ण्य-विषय के अनुसार ऋचाग्र्यों को तीन भागों में विभक्त किया है—प्रत्यक्षकृता, परोक्षकृता और आध्यात्मिकी इनमें परोक्ष-कृता और आध्यात्मिकी निश्चय ही गूढ़ और रहस्य-गर्भित रचना है, जैसा कि इनके नाम से ही स्पष्ट है। उपनिषदों में भी अनेक ऐसे वाक्य हैं जिनमें परमब्रह्म के स्वरूप का वर्णन परोक्ष या लाक्षणात्मक शैली में किया गया है। ऐसे वाक्यों को ‘ब्रह्मोद्य’ कहा गया है। ब्रह्मोद्य कूट के बहुत समीप है। ऐतरेय ब्राह्मणोपनिषद, शतपथ ब्राह्मणोपनिषद तथा भागवत में जो गूढार्थ वाक्य हैं, उन्हें ‘वाक्कूट’ तथा ‘वाणीकूट’ कहा गया है। महाभारत में आये हुए कूटश्लोकों का नाम ‘ग्रथग्रथि’ है। श्रीहर्ष ने भी अपने नैपथीय-चरित में प्रयुक्त गूढार्थ-श्लोकों को ग्रन्थग्रन्थि ही कहा है—

‘ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपिन्यासि प्रयत्नान्मया ।’

अग्निपुराण में ‘कुतूहलाध्यायी’ शब्द मिलता है जो निश्चय ही ऐसी काव्य-रचना का सूचक है जिसका अर्थ भ्रामक और चक्करदार शब्दों में निहित रहता है। काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने कूट के समकक्ष ‘वैनोदिक’ शब्द का उल्लेख किया है। राजशेखर के अनुसार, वैनोदिक एक प्रकार का गूढार्थ काव्य है जिसका उद्देश्य विनोद-प्रधान होता है। वाच्यार्थ से भिन्न अर्थ के लिए संस्कृत-साहित्य और संस्कृत-काव्य-शास्त्र में ‘वक्रोक्ति’ शब्द का भी प्रयोग होता है। वक्रोक्ति का शब्दार्थ है टेढ़ी उक्ति अर्थात् वाच्यार्थ से इतर अर्थ—‘वैदग्ध्यभगीभणिति ।’ प्रहेलिका भी गूढार्थ-

रचना का एक रूप है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत-साहित्य में परोक्षकृता, आध्यात्मिकी, ब्रह्मोद्य, वाक्कूट, वाणीकूट, ग्रंथग्रथि, कुतूहलाध्यायी, वैनोदिक, वक्रोक्ति और प्रहेलिका शब्दों का प्रयोग जिस काव्य-रचना के लिए हुआ है, वह कूटकाव्य के बहुत समीप है।

हिन्दी में कूट के लिए संध्याभाषा, विपर्यय या उलटवाँमी और दृष्टकूट शब्दों का भी प्रयोग होता है। संध्याभाषा का अर्थ है संध्याकालीन भाषा, अर्थात् प्रकाश और अंधकार की संधि के समान यह भाषा न तो सर्वथा लुप्त होती है और न स्पष्ट, पर इसका परिणाम है ज्ञान का आलोक। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जगत् प्रकार संध्याकाल में न तो प्रकाश स्पष्ट ही होता है और न लुप्त ही, उसी प्रकार इस भाषा में व्यक्त भाव भी न तो सहज प्रकाशित होते हैं और न निगूढ लुप्त, पर कटसाध्य अवश्य होते हैं। अनेक मूर्धन्य विद्वान् 'संध्या' शब्द के स्थान पर 'संधा' शब्द को शुद्ध मानते हैं। इन विद्वानों में प्रोफेसर विधुशेखर भट्टाचार्य, डा० प्रबोधचंद वागची, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। शुद्ध शब्द 'संध्या' हो या 'संधा', पर अर्थ दोनों का एक ही है—ऐसी भाषा जिसमें अभीष्टार्थ निगूढ होता है। नाथपंथी योगियों ने तथा कवीर आदि निर्गुण-संतों ने कुछ ऐसे पदों की रचना भी की है, जो आपाततः तो विरुद्ध दिखाई देते हैं, पर श्रमपूर्वक ही जिनका वाच्यार्थ प्रकट होता है। इस प्रकार की रचनाओं की प्रमुख विशेषता यही है कि अर्थ की गूढ़ता के कारण इनका अभीष्टार्थ सहज ही बोधगम्य नहीं होता। वस्तुतः उलटवासियाँ कूटकाव्य नहीं, उसका एक भेद अवश्य मानी जा सकती हैं। हिन्दी में कूटकाव्य के लिए दृष्टकूट शब्द अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। इसका अर्थ है ऐसा काव्य जिसमें शब्द और अर्थों में छल अथवा क्लिष्टता दृष्टिगोचर होती है—'दृष्ट कूट यस्मिन् तत् दृष्टकूटम्।' कुछ विद्वान् 'दृष्टकूट' शब्द के स्थान पर 'दृष्टिकूट' शब्द का प्रयोग शुद्ध मानते हैं। उनके अनुसार दृष्टिकूट का अर्थ है दृष्टि से छिपा हुआ अथवा जिसमें दृष्टि का छल हो—'दृष्ट्या कूटमिति दृष्टिकूटम्, अथवा 'दृष्टेः कूट यस्मिन् तत् दृष्टिकूटम्।' दृष्टिकूट की अपेक्षा दृष्टकूट शब्द ही हिन्दी में अधिक प्रचलित है।

कूटकाव्य के तत्त्व

यदि कूटकाव्य की रचना-शैली पर विचार किया जाय तो कूटकाव्य के दो प्रमुख तत्त्व परिलक्षित होते हैं—गूढार्थता और शब्द-कौशल। ये ही दो तत्त्व इसे अन्य काव्य-भेदों से पृथक् करते हैं अतः इन्हें ही इसके व्यावर्तक धर्म मानना चाहिए।

कूटकाव्य की रचना करते समय कवि का सम्पूर्ण प्रयास अर्थ की गूढ़ता पर केन्द्रित रहता है, अर्थात् वह अभीष्टार्थ को अधिक से अधिक गोपनीय बनाने का भरसक प्रयत्न करता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे ऐसी विशिष्ट शब्दा-

वली या अलंकार आदि का आश्रय लेना पड़ता है जो साधारण पाठक के लिए बोध-गम्य नहीं होते। यदि सरस काव्य की आत्मा रस है तो कूटकाव्य की आत्मा चमत्कार है जो विस्मय या कुतूहलता से उत्पन्न होता है। कूटकाव्यकार जिन ग्रंथियों को डालकर अपनी रचना को दुर्वोध बना देता है, अपने परिश्रम से पाठक उन्हें मुलभाकर जिस विस्मयजन्य चमत्कार की अनुभूति करता है, वही उसके लिए आनन्दानुभूति है। अतः कहा जा सकता है कि गूढार्थ और शब्द-वैचित्र्य से सम्पन्न काव्य को, जिसका हेतु चमत्कार प्रदर्शन होता है, कूटकाव्य कहते हैं। कूटकाव्य में शब्द-वैचित्र्य की प्रधानता होती है। शब्द-वैचित्र्य की संयोजना करने के लिए कूटकाव्यकार को अनेक साधनों का आश्रय लेना पड़ता है जिनमें से प्रमुख साधन ये हैं—

१. प्रतीकों का प्रयोग—जब कवि अपनी भावाभिव्यक्ति को सामान्य भाषा में व्यक्त करने में स्वयं को असमर्थ पाता है तो वह प्रतीकों का प्रयोग करता है। प्रतीक किसी भाव-विशेष के लिए अभिव्यक्ति के सकेत होते हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग बहुलता से होता है। प्रकृति के नाना उपकरणों से ये प्रतीक ग्रहण किये जाते हैं। कभी-कभी केवल एकवर्ण अथवा संख्या के द्वारा ही अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। यही कारण है कि वेदों, उपनिषदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों की भाषा प्रतीक-बहुला है। हिन्दी में तांत्रिकों सिद्धों, नाथपंथी योगियों और निर्गुण-संतों ने भी प्रतीकों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। यथा—

‘जल में कुम्भ कुम्भ में जल है,
बाहर भीतर पानी।
टूटा कुम्भ जल जलहि समाना,
यह तत कथौ गियानी।’

इन पंक्तियों में कबीरदास ने वेदांत के अद्वैत-सिद्धांत का प्रतिपादन बड़ी ही कुशलता से किया है। यहाँ ‘जल’ परमब्रह्म का प्रतीक है और ‘कुम्भ’ दृश्य जगत् का। इन प्रतीकों से कवि के अभीष्टार्थ में बहुत प्राणवत्ता आ गई है—यह जगत् जल में घट के समान परमब्रह्म में ही समाया हुआ है और परमब्रह्म की सत्ता ही इस दृश्यमान जगत् में सर्वत्र परिव्याप्त है।

२. अनेकार्थी शब्दों का एक विशिष्ट रूढ़ अर्थ में प्रयोग—अनेकार्थी शब्दों का एक विशिष्ट रूढ़ अर्थ में प्रयोग करने से ही कूटकाव्य में गूढ़ता एवं वैचित्र्य आता है। यथा—

‘देखौ माई दधिसुत में दधि जात।’

इस पंक्ति में ‘दधिसुत’ (उदधिसुत) के मोती, शंख, चंद्रमा आदि अनेक अर्थ हैं, पर यहाँ उसका रूढ़ार्थ ‘चंद्रमा’ ही ग्राह्य है।

३. एक शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति—एक ही शब्द की अनेक अर्थों में आवृत्ति होने से भी रचना में कूटता आती है। यथा—

‘सारंग सारंगधरहि मिलाबहु ।

सारंग विनय करति सारंग सौ सारंग दुख बिसराबहु ।

सारंग-सभै बहत अति सारंग सारंग तिनिहि दिखाबहु ।

सारंग-गति सारंगधर जे हैं सारंग जाइ मनाबहु ॥

सारंग-चरन सुभग कर-सारंग सारंग नाम बुलाबहु ।

सूरदास सारंग उपकारिनि सारंग मरत जियाबहु ॥’

इस पद में ‘सारंग’ शब्द की अनेक तथा भिन्न अर्थों में आवृत्ति हुई है। ये अर्थ हैं—सखी, कमल, आकाश, विष्णु, कामदेव, रात्रि, चन्द्रमा, प्रियतम, कृष्णसर्प, अनुराग, कमल, भ्रमर, कुरंग (विपत्ति)। अतः इस पद का यह अर्थ है : विगृहिणी नायिका अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! तू मुझसे मेरे प्रियतम कृष्ण को मिला दे। मैं तुझसे आग्रहपूर्वक विनय करती हूँ, तुझे भगवन् विष्णु की सौगंध है, तू मेरी काम-पीड़ा को दूर कर दे। वियोग के कारण, रात्रि को चन्द्रमा मुझे जलाता है, अतः तू मेरे प्रियतम को लाकर मुझसे मिला दे। उसकी गति कृष्णमर्प के समान है, अर्थात् वह अत्यंत क्रोधी और शीघ्र ही रुष्ट हो जाने वाला है। अतः तू उसे प्रेमपूर्वक मनाकर ले आ। कमल के समान चरण और हाथ वाला मेरा वह प्रियतम भ्रमर है (भौरे के समान चंचल प्रकृति वाला है)। सूरदास कहते हैं कि नायिका अपनी सखी से प्रार्थना करती हुई कह रही है कि हे उपकारिनि ! तू अपनी इस मरती हुई सखी को मरने से बचा ले।

४. शब्द-समूह की शृंखला से एक ही अर्थ का बोध—अपने काव्य में क्लिष्टता लाने के लिए कूटकार कभी-कभी ऐसे शब्द-समूह का प्रयोग करता है जिसमें अर्थ उत्तरोत्तर जुड़कर नवीन अर्थ को उत्पन्न करते जाते हैं और अंत में एक ही अर्थ रह जाता है जो कवि का अभिप्रेत होता है। यथा—

‘भू-सुत-सन्तु-नाथ-हित-पितु-त्रिय-प्रिय हिय बचन डिढ़ायो ।’

यहाँ ‘भू-सुत-सन्तु-नाथ-हित-पितु-त्रिय-प्रिय’ शब्दों की शृंखला से कवि का अभिप्रेत अर्थ ‘कलह’ है जो इस प्रकार निकलता है—भू पृथ्वी, पृथ्वी का सुत केवाँच, केवाँच का शत्रु बन्दर अर्थात् हनुमान, हनुमान का नाथ राम, राम का हित या हित्नु भरत, भरत का पिता दशरथ, दशरथ की त्रिया कैकेयी, कैकेयी की प्रिय वस्तु कलह। ‘कलह’ ही कवि का अभीष्टार्थ है।

५. वर्णों के योग से शब्द-निर्माण—अपने काव्य में गूढ़ता लाने के लिए कूट-कार कभी-कभी ऐसे वर्णों का प्रयोग करता है जिनके योग से एक नवीन शब्द का निर्माण हो जाता है। यथा—

‘सूरज सुत माता सुबोध की आयुन आवि ढहावै ।’

इन वर्णों से जो नवीन शब्द निर्मित होता है वह है 'कुंजै', जो इस प्रकार बनता है—सूरज सुत सूर्यपुत्र कर्ण, कर्ण की माता कुंती, सुबोध जैन; कुंती और जैन शब्दों के आदिवर्णों को मिलाने से बना 'कुंजै' ।

६. वर्णों के लोप से नवीन अर्थ का बोध—कहीं-कहीं वर्णों के लोप द्वारा कवि नवीन अर्थ का बोध कराता है । यथा—

‘अंत ते कर हीन फरकत, फनिग बाईं ओर ।’

फनिग को भुजंग भी कहते हैं । ‘भुजंग’ के अंतिम वर्ण ‘ग’ का लोप करने से ‘भुज’ शब्द रह गया जिसका अर्थ है भुजा । अतः इस पंक्ति का अर्थ हुआ—‘मेरी बाईं ओर की भुजा फड़क रही है ।

७. रूपसाम्य या ध्वनिसाम्य से अर्थ का बोध—कूटकाव्य में रूपसाम्य या ध्वनिसाम्य से भी अर्थ का बोध कराया जाता है । यथा—

‘मंदिर-अरध अबधि बवि हमसों, हरि-आहार चलि जात ।’

यहाँ पर ‘हरि-आहार’ का अर्थ है—मास, महीना; क्योंकि शेर का भोजन ‘मांस’ होता है और ‘मांस’ तथा ‘मास’ में ध्वनि एवं रूप का साम्य है ।

८. संख्यासूचक शब्दों से इष्टार्थ की अभिव्यक्ति—कूटकाव्यकार संख्याओं के द्वारा भी अपने इष्टार्थ की अभिव्यक्ति करता है । यथा—

‘नखत, वेद, ग्रह, जोरि अर्ध करि सोई बनत अब खात ।’

विरहिणी गोपी अपनी सखी से कह रही है कि वह अब विरह-व्यथा को सहन करने की अपेक्षा ‘विष’ खाना अधिक अच्छा समझती है । ‘विष’ शब्द का बोध होता है—‘नखत, वेद, ग्रह जोरि अर्ध करि’ से; अर्थात् नक्षत्र २७, वेद ४, ग्रह ९; २७ + ४ + ९ = ४०; चालीस का आधा ‘बीस’ जिससे ध्वनिसाम्य के आधार पर ‘विष’ शब्द बनता है ।

संख्या-सूचक शब्दों के द्वारा इष्टार्थ की अभिव्यक्ति की एक अन्य शैली भी मिलती है । यथा—

‘तिपीपी पल मांभ कोन्हों, निपट जीव निरास ।’

यहाँ ‘तिपीपी’ का अर्थ ‘गोपी’ है जो इस प्रकार निकलता है—तीन पी पी अर्थात् छः पी = छपी = गोपी ।

ज्योतिषशास्त्र की संख्या से भी अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होती है । यथा—

‘आठ रवि तें देख तब तें परत नाहि गंभीर ।’

यहाँ ‘आठ रवि तें’ तात्पर्य ‘राहु’ से है जो सूर्य से आठवाँ ग्रह है । राहु के ध्वनि-साम्य पर ‘राहु’ अर्थ इष्ट है ।

९. वर्णों की पुनरावृत्ति—कुछ वर्णों की पुनरावृत्ति से भी इष्टार्थ को व्यक्त करने वाले शब्द का निर्माण कूटकाव्यकार करता है । यथा—

‘मानिनि ! अजहूं छांडी मान ।

तीन बिबि दधि सुत उतारत, राम दल जुत सान ॥

तीन लल बल करे तो संग, कौन भल अलि जान ॥

डेढ़ लल कल लेत नाँहि, प्रान प्रीतम प्रान ॥'

यहाँ तीन बिबि=छबि; तीन लाल=छल; डेढ़ लल=तिल अर्थ अभिप्रेत हैं।

१०. पर्यायवाची शब्दों से इष्टार्थ की अभिव्यक्ति—पर्यायवाची शब्दों के द्वारा भी कूटकाव्यकार अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। इसकी दो प्रणालियाँ हैं : कही तो वह एक भाषा के शब्द से दूसरी भाषा का पर्यायवाची शब्द ग्रहण करके अपने इष्टार्थ को व्यक्त करता है और कही एक ही भाषा के पर्यायवाची शब्द उसके भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। दूसरी भाषा के पर्यायवाची शब्द का उदाहरण यह है—

‘निसा-अत-पति-सुत-सुभाव सुन, आजु कहां तें आई ।’

‘निगा-अत-पति-सुत-सुभाव’ का अर्थ ‘सखी’ है जो इस प्रकार निकलता है— निसा-अत दिन, दिन का पति सूर्य, सूर्य का सुत कर्ण, कर्ण का सुभाव दानी; फारसी भाषा में ‘दानी’ का पर्यायवाची शब्द ‘सखी’ है।

एक ही भाषा के पर्यायवाची शब्द का उदाहरण यह है—

‘दधि-सुत-सुत-पतिनी न निकासत’

यहाँ ‘दधि-सुत-सुत-पतिनी’ का अर्थ है ‘बात’ जो इस प्रकार निकलता है— दधि-गुत कमल, कमल का सुत ब्रह्मा, ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती। सरस्वती को वाण भी कहते हैं और वाणी का पर्यायवाची शब्द ‘बात’ है।

११. प्रहेलिका का प्रयोग—कूटकाव्यकार अपनी अभिव्यक्ति को गूढ़ तथा चामत्कारिक बनाने के लिए प्रहेलिका का भी प्रयोग करता है। यथा—

‘कारन अंत अंत तें घट कर, आदि घटत पे जोई ।

मद्ध घटे पर नास कियो है, नीतन तें मन भोई ॥’

अर्थात् नायिका अपने नेत्रों में वह मनभाई वस्तु लगाये हुए है जिसका अतवर्ण हटाने से ‘काज,’ आदिवर्ण हटाने से ‘जल’ और मध्यवर्ण हटाने से ‘काल’ बनता है वह शब्द है ‘काजल,’ अतः यहाँ वर्णप्रहेलिका है।

१२. शब्दों का विलोम-प्रयोग—कूटकाव्य में शब्दों का विलोम-प्रयोग भी किया जाता है। यथा—

‘करि बिपरीत भवन तें धारा ।’

यहाँ ‘धारा’ से ‘राधा’ अर्थ अभिप्रेत है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कूटकाव्य रचना की दृष्टि से भी और पठन पाठन की दृष्टि से भी श्रमसाध्य होता है, अतः यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि कूटकाव्य का रस से क्या सम्बन्ध है? रस को काव्य की आत्मा माना गया; जो सदैव व्यंग्य होता है। रस की व्यंग्यता के आधार पर काव्य के तीन भेद किंगये हैं—ध्वनिगाव्य, गुणीभूतव्यंग्यकाव्य और चित्रकाव्य। जिस काव्य में व्यंग्या मुख्य और तात्पर्य गौण होता है उसे ध्वनिकाव्य या उत्तमकाव्य कहते हैं। जिस काव्य

में व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ की समान प्रधानता होती है अर्थात् इन दोनों में न कोई मुख्य होता है और न कोई गौण, उसे गुणीभूतव्यंग्यकाव्य या मध्यमकाव्य कहते हैं और जिस काव्य में वाच्यार्थ या शब्द-कौशल की प्रधानता होती है, उसे चित्रकाव्य या अधमकाव्य कहते हैं। इस वर्गीकरण से स्पष्ट है कि कूटकाव्य अधमकाव्य की श्रेणी में आता है। अधमकाव्य में भी यद्यपि रस की यत्किंचित मात्रा होती है, पर वह उसके चमत्कार-प्रदर्शन के समक्ष नगण्य ही है। इसीलिए कूटकाव्य का मुख्य तत्त्व रस नहीं, चमत्कार माना जाता है। अतः कहा जा सकता है कि कूटकाव्य और रस का अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।

कूटकाव्य का प्रयोजन

प्रत्येक काव्य की रचना में काव्यकार का कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होता है। इसी प्रकार कूटकाव्य की रचना के भी अनेक प्रयोजन हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

१. कौतूहल उत्पन्न करना
२. शब्द-कौशल का प्रदर्शन
३. रहस्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति
४. कुछ बातों को गुप्त रखने की इच्छा

१. कौतूहल उत्पन्न करना—कूटकाव्यकार अपने पाठकों में कौतूहल की भावना जागृत करने के लिए अपनी रचना की सश्रम सृष्टि करता है। यह भावना हृदय पर नहीं, बुद्धि पर आधृत होती है। कवि अपनी अभिव्यक्ति को कुछ इस प्रकार उलझा देता है कि उसे सुलझाना सहज नहीं होता। पाठक जब अपने बुद्धि-बल से उस उलझन को सुलझा लेता है तो उसे अत्यंत कौतूहल होता है जो उसका एक प्रकार का आत्मिक आनन्द है। कौतूहल ही कूटकाव्य का प्रमुख प्रयोजन है इसीलिए संस्कृत-साहित्य में इसे ग्रंथग्रंथि, गुणज्ञानाध्यायी, प्रहेलिका, वैनोदिक आदि नामों से पुकारा गया है।

२. शब्द-कौशल का प्रदर्शन—क्लिष्टता कूटकाव्य का प्रमुख गुण है। अपने काव्य में इसी गुण का आधान करने के लिए कूटकाव्यकार शब्द-कौशल का आश्रय लेता है; अर्थात् वह ऐसे शब्दों का सायास प्रयोग करता है जिनमें उसकी भावाभिव्यक्ति इस प्रकार छिप जाती है कि उस तक पहुंचने के लिए पाठक को बहुत ही श्रम करना पड़ता है। एक समय था जब कविता राजदरबारों की सम्पत्ति थी और कवि राजदरबारों के कवि। इन कवियों का काम राजा तथा उसके दरबारियों को आनंदित और चमत्कृत करना तो था ही, साथ ही अन्य कवियों पर अपने पांडित्य का प्रभुत्व भी प्रतिष्ठित करना था। इस कथन के अनेक प्रमाण हैं कि राजसभाओं में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को आशुकवित्व और भाषा पर अधिकार के प्रदर्शन में पराजित करने वाले कवि हुआ करते थे। रुद्रट ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'काव्यालंकार' में स्पष्ट कहा है कि विनोद और क्रीड़ा की दृष्टि से मात्राच्युतक तथा विंदुमती आदि प्रहेलिका-भेदों

का विशेष महत्त्व था—

‘मात्राविबुच्युतके प्रहेलिका कारकक्रियागूढ़े ।

प्रदन्तोत्तराणि बान्यत् क्रीडामात्रोपयोगमिवम् ॥’

आचार्य दण्डी ने भी ‘काव्यादर्श’ में बताया है कि प्रहेलिकाएँ गोष्ठियों में विनोद के साधन हुआ करती थीं—

‘क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्जैराकीर्णमंत्रणे ।

परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः ॥’

उस काल में साधारण जन भी विद्वान् हुआ करते थे । बाण ने ‘कादम्बरी’ में एक ऐसी राजमभा का वर्णन किया है जिसके सभामद् विविध भौतिक के मनोविनोदों में सलग्न रहा करते थे । उनके मनोविनोद के साधनों में अक्षरच्युतक, विदुमती, मात्रा-च्युतक, गूढचतुर्थपाद और प्रहेलिका आदि काव्यकला की क्रीड़ाएँ भी सम्मिलित थीं—

‘कदाचिदाबद्धविदग्धमडलः काव्यप्रबंधरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालेपेन, कदाचिदा-
ख्यानकाव्ययिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिदक्षरच्युतकविदु-
ननिर्गुणतुल्यः प्रहेलिकाप्रदानादिभिर्विनितासम्भोगपरांगमुखः ।’

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कूटकाव्य या कूटकाव्य-जैसी रचना शब्दकौशल या पांडित्य-प्रदर्शन के लिए हुआ करती थी । परवर्ती संस्कृत और हिंदी के कवियों ने भी इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कूटकाव्य की रचना की ।

३. रहस्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति—रहस्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति साधारण भाषा के द्वारा दुष्कर है, अतः कवि को ऐसे भावों को व्यक्त करने के लिए असाधारण या प्रतीक-प्रधान भाषा का आश्रय लेना पड़ता है । बिना प्रतीकों के रहस्य-मयी भावना की अभिव्यक्ति सक्षम नहीं हो पाती, और प्रतीकों के द्वारा वह बहुत ही प्रभावशाली बन जाती है । इस मंतव्य का समर्थन करते हुए डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने लिखा है कि ‘जीवन के गहन तत्त्वों का अवगाहन करने वाले ज्ञानदृष्टा महर्षियों द्वारा आत्मशक्ति के अनुभूत सत्त्वों को जब प्रचुर सौंदर्य से परिपूर्ण गहरे रंगों वाले चित्रों के प्रतीक से व्यक्त किया जाता है तो वे सजीव हो उठते हैं ।’ यही कारण है कि हिन्दी के निर्गुण-कवियों की भाषा प्रतीक-प्रधान है । भौतिक आकर्षण और आध्यात्मिक तत्त्व दोनों एक-साथ नहीं रह सकते, भौतिक सुख के लिए आध्यात्मिक तत्त्व और आध्यात्मिकता की उपलब्धि के लिए भौतिक सुख का परित्याग करना पड़ता है, इस भाव को कबीर ने प्रतीकात्मक भाषा में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से सुबोध रीति में इस प्रकार व्यक्त किया है—

‘च्यूटी चावल ले चली, बिच मैं मिल गई दाल ।

कह कबीर दोउ ना मिले, इक ले दूजी डाल ॥’

यहाँ पर चीटी आत्मा और चावल तथा दाल भौतिक सुख एवं आध्यात्मिक तत्त्व के प्रतीक हैं । इसी प्रकार के असंख्य उदाहरण रहस्यवादी कवियों की रचनाओं में सहज ही मिल जाते हैं ।

४. कुछ बातों को गुप्त रखने की इच्छा—सभी बातें सभी पर प्रकट करने की नहीं होती, अतः कुछ बातों को गुप्त रखने के लिए भी कूट काव्य का सहारा लेना पड़ता है। यह परम्परा भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही मिलती है। महाभारत में एक श्लोक आता है—

‘अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्तनम् ।

यो वेत्ति न तु तं घ्नति प्रतिघातविदं द्विषः ॥’

यह विदुर की युधिष्ठिर से उस समय की उक्ति है जब दुर्योधन ने पांडवों की हत्या करने के लिए लाक्षागृह तैयार करवाया था। उस लाक्षागृह से युधिष्ठिर को सचेत करते हुए विदुर कहते हैं कि हे युधिष्ठिर ! वह प्रासाद अग्निग्राही पदार्थों का बना है जो बाहर से दृष्टिगोचर नहीं होते, अतः उसे रात्रि में त्याग दो। जो व्यक्ति प्रतिघात को भली भाँति जानता है, शत्रु उसे नष्ट नहीं कर सकते। यहां अलोहं, निशितं, शस्त्रं आदि शब्द वाच्यार्थ से भिन्न गुप्तार्थ के सूचक हैं। ‘अलोह’ का अर्थ है—‘अग्निग्राही पदार्थों से परिपूर्ण’, ‘निशित’ में ‘निशि’ (रात्रि) और ‘त’ (उस प्रासाद को) ये दो पृथक् शब्द हैं, एक नहीं। यहां ‘शस्त्र’ का अर्थ प्रासाद है, क्योंकि निवासार्थक ‘शस्’ धातु से इसकी उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार ‘शरीरपरिकर्तनम्’ का अर्थ है—‘बाहर से हानिकारक होने वाले सब चिन्हों को छिपाये हुए।’

भारत धर्म-प्रधान देश है, पर यहाँ के धार्मिक सम्प्रदायों में उदारता का प्रायः अभाव रहता है। यही कारण कि कुछ धार्मिक सम्प्रदायों ने अपने सिद्धान्तों को गुप्त रखने के प्रयास किये हैं। इन सम्प्रदायों में बगाल के पांचरात्र, चैतन्य और सहजिया आदि सम्प्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सहजिया सम्प्रदाय के लोग अपने धार्मिक एवं पूज्य ग्रन्थों को सबसे अधिक गुप्त रखने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। इसीलिए इनके अधिकांश ग्रंथ हस्तलिखित हैं जो इतर सम्प्रदाय वालों के लिए अप्राप्य या दुष्प्राप्य हैं। इनके ग्रन्थ ‘प्राणमंजरीपटल’ में स्पष्ट लिखा है कि प्रत्येक सम्भव उपाय से इस तंत्र की गोपनीयता की रक्षा की जानी चाहिए, क्योंकि स्वयं तंत्र की भी यही आज्ञा है—

‘शृणुतादिमतं तंत्रं पूर्णमन्यान्यपेक्षया ।

गोप्यं सर्वं प्रयत्नेन गोपनं तंत्र चोदितम् ॥’

और इस गोपनीयता के लिए प्रायः कूट-रचना का आश्रय लिया गया है।

कूटकाव्य का वर्गीकरण

हिन्दी में कूट-काव्य के वर्गीकरण का प्रयास अत्यल्प हुआ है। ‘साहित्यलहरी’ के प्रख्यात टीकाकार सारदार कवि ने इसके दो भेद किये हैं—दो मिल द्वाबरन कूट और वारावर्त कूट। यह वर्गीकरण अत्यन्त सीमित होने के साथ-साथ अत्यन्त अस्पष्ट भी है। कूट-काव्य का मुख्य प्रयोजन है अर्थ की गूढ़ता; यह गूढ़ता कभी अर्थ-प्रधान होनी है और कभी शब्द-प्रधान। इसी आधार पर कूट-काव्य के दो भेद हो सकते

है—आर्थीकूट और शाब्दीकूट । आर्थीकूट में कूटकार अर्थालंकारों के द्वारा विशेषतः रूपकातिशयोक्ति, सूक्ष्म आदि के द्वारा, अपने अभीष्टार्थ का गोपन करत है । यथा—

‘अवभुत एक अनूपम बाग ।

जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त, तापर सिंघ करत अनुराग ।

हरि पर सरवर, सर पर गिरवर, गिर पर फूले कंज पराग ।

रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ॥

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद काग
खंजन, धनुष, चद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥

इन पंक्तियों में नायिका के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन है, पर यहाँ केवल उपमानों का - बाग, कमल, गज, सिंह, सरवर, गिरवर, कंज, पराग, कपोत, अमृतफल पुहुप, पल्लव, सुक, पिक, काग, खंजन, आदि का ही कथन है । अतः यहाँ कवि रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा अभीष्टार्थ का गोपन किया है । और—

‘स्याम अचानक आय गए री ।

मैं बैठी गुरुजन-बिच सजनी, देखत ही मौ नैन नग री ।

तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बैदी सौं कर परस कियो री ।

आप हँसे उत पाग मसकि हरि, अन्तरजामी जानि लियो री ॥

लै कर कमल अधर परसायो, देखि हरषि उनि हृदं धर्यो री ।

चरण छुए, दोउ नैन लगाए, मैं अपने भुज अंक भर्यो री ॥’

नायिका अपनी अन्तरगिनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! मैं अपने गुरुज के बीच बैठी हुई थी कि वहाँ पर अचानक श्रीकृष्ण आ गये जिन्हें देखते ही मेरे ने भुक गये । तब मैंने एक युक्ति सोचकर अपने हाथ से अपने मस्तक पर लगी हुई वि का स्पर्श किया । अन्तर्यामी कृष्ण ने मेरा अभिप्राय जान लिया और हँसकर आप पगड़ी दवाई । फिर मैंने एक कमल लेकर उससे अपने अधरों का स्पर्श किया जि देखकर तथा हर्षित होकर उन्होंने (अपना हाथ) हृदय पर रखवा । मैंने कमल अपने चरण छुए, उन्होंने दोनों नेत्रों से उसे लगाया । तब मैंने उस कमल को आप भुजाओं में लेकर गोद में भर लिया ।

इन पंक्तियों में कवि ने नायक और नायिका के संकेतों से उनके भावों अभिव्यक्ति ही है । नायिका ने अपनी विदी को छुआ, अर्थात् संकेत से कृष्ण प्रणाम किया । कृष्ण ने अपनी पगड़ी दवाने के मिस उसके प्रणाम का उत्तर दिया नायिका ने कमल से अपने अधरों का स्पर्श करके यह दिखाया कि मैं तुम्हारे चुम्बन लिए लालायित हूँ । कृष्ण ने हृदय पर हाथ रखकर नायिका को यह बताया कि सदैव मेरे हृदय में बसती हो । नायिका ने कमल से अपने चरणों को स्पर्श करके विनती की कि तुम मुझे अपने चरणों की दासी समझो । कृष्ण ने अपने दोनों नेत्रों

कमल छुआकर उत्तर दिया कि तुम तो सदा मेरी आंखों में भूमती रहती हो । और तब नायिका ने कमल को अपनी भुजाओं में भरकर आलिंगन के प्रति अपनी इच्छा व्यक्त की । यहाँ पर शारीरिक संकेतों से भावाभिव्यक्ति होने के कारण सूक्ष्म अलंकार है ।

शाब्दी कूटों में शब्दजन्य चमत्कार तथा शब्द-कौशल होने से अर्थ-गोपन की प्रधानता होती है । शब्द-कौशल के अनेक साधन हैं जिनमें से प्रतीको का प्रयोग, अनेकार्थी शब्दों का एक विशिष्ट रूढ़ अर्थ में प्रयोग, एक शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति, शब्द-समूह की शृंखला से एक ही अर्थ का बोध, वर्णों के योग से शब्द-निर्माण, वर्णों के लोप से नवीन शब्द का बोध, रूपसाम्य या ध्वनिसाम्य से अभीष्टार्थ का संकेत, सख्यासूचक शब्दों से इष्टार्थ की अभिव्यक्ति, वर्णों की पुनरावृत्ति, पर्याय-वाची शब्दों से इष्टार्थ की अभिव्यक्ति, प्रहेलिका का प्रयोग, शब्दों का विलोम-प्रयोग आदि प्रमुख हैं । इन साधनों की व्याख्या पहले की जा चुकी है, अतः उसे दोहराने की यहाँ आवश्यकता नहीं है ।

सूर-पूर्व कूटकाव्य

अर्थ-गोपन के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करके श्रोता अथवा पाठक को विस्मित करना मानव की सहज प्रवृत्ति है । यही कारण है कि प्राचीनकाल से ही कूट-रचना की प्रवृत्ति मानव मन में रही है । संस्कृत-साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में भी कूटकाव्य के दर्शन सहज ही हो जाते हैं । ऋग्वेद में उच्चकोटि के साहित्य के साथ-साथ अनेक ऐसे भी मंत्र हैं जो गूढार्थक अथवा प्रहेलिकाओं के रूप में प्रयुक्त हुए हैं । यथा—

‘द्वादश प्रथयश्चक्रमेतं त्रीणि नभ्यानि उतच्चिकेत ।

तस्मिन्साकं त्रिशता शंकवोऽपिताः षष्टिर्न चला चलासः ॥’

अर्थात् बारह प्रथियों और तीन नाभियों वाले उस एक चक्र को कौन जानता है ? उसमें तीन सौ साठ शंकु भी लगे हैं । यहाँ पर चक्र का अभीष्टार्थ ‘वर्ष’, ‘तीन नाभियों’ का ‘तीन मुख्य ऋतुएँ’ और ‘शंकु’ का ‘दिन’ है । इसी प्रकार—

‘एकपाद् भूयो द्विपदो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमध्येति पश्चात् ।

चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन् पञ्चतीरुपतिष्ठमानः ॥’

अर्थात् एकपाद होते हुए वह द्विपाद से भी अधिक तीव्रगामी है । द्विपाद होते हुए भी त्रिपाद से अधिक तीव्रगामी है । द्विपाद की पुकार है, पर चतुष्पाद आता है । पाँच का समूह जहाँ देखता वहाँ ही है । यहाँ पर अभीष्टार्थ है : एक पाद = वायु का देवता एक पैर वाला मेघ ; अथवा एक चक्र वाला सूर्य । त्रिपाद = यष्टिका को धारण करने वाला वृद्ध पुरुष । चतुष्पाद = कुत्ता । रूपकातिशयोक्ति अलंकार के द्वारा भी ऋग्वेद में गूढार्थ की संयोजना की गई है । यथा—

‘चत्वारि भृगास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेशो मर्त्या आविवेश ॥’

इस मंत्र का शब्दार्थ है—इस वृषभ के चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। यह तीन ओर से बँधा हुआ गरज रहा है। यह महान् देवता मर्यों में प्रविष्ट हो गया है। इस मंत्र का अभीष्ट अर्थ क्या है? इसके विषय में इसके व्याख्याताओं में मतैक्य नहीं है। भाष्यकार सायण ने इस मंत्र के अनेक अर्थ किये हैं। सर्वप्रथम उन्होंने इसे यज्ञाग्नि का वर्णन बताया है और इस प्रसंग में चार सींगों का अर्थ ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद तथा होता, उद्गाता, ऋत्विक् और अध्वर्यु चार पुरोहित किया है। तीन पैर प्रातः, मध्याह्न और सायं तीन समय हैं। ब्रह्माग्नि और प्रवर्ग्य दो सिर हैं। गान वैदिक छंद सात हाथ है। यह देवता यज्ञाग्नि है जो मंत्र, की ब्राह्मण और कल्प द्वारा त्रिधावद्ध है इसे वृषभ कहा गया है क्योंकि यह यज्ञ के फल वर्षा करता है और साम तथा यजु वेद के गायन से उत्पन्न ध्वनि में गर्जन करता है। दूसरे अर्थ के अनुसार, सायण ने इस मंत्र का सम्बन्ध सूर्य से बताया है। इसके अनुसार इसका अर्थ यह है—सूर्य के चार सींगरूपी चार दिशाएँ हैं, तीन पैर रूपी तीन वेद हैं, दो सिररूपी दिन और रात हैं तथा सात हाथरूपी सात किरणें हैं। यह पृथ्वी, अतरिक्ष और आकाश तीन स्थानों से बँधा हुआ है। यह वृष्टि करता है, इसलिए इसे वृषभ कहा गया है। महाभाष्यकार पंतजलि ने इस मंत्र का सम्बन्ध शब्द ब्रह्म से सम्बद्ध करके इसका अर्थ इस प्रकार किया है—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात में चार प्रकार के सींग हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान में तीन काल तीन पैर हैं, शब्द और अर्थ दो सिर हैं और सात विभक्तियाँ सात हाथ हैं। यह शब्द ब्रह्म रूपी वृषभ उर, कंठ और सिर इन तीन स्थानों से बँधा हुआ है।

ऋग्वेद की भाँति अथर्ववेद में भी यत्र-तत्र कूट-मंत्र मिलते हैं। कु तापसूक्त और कवष-ऐलूष सूक्त में एक मंत्र इस प्रकार है—

‘अर्वाग् विलश्चमस ऊर्ध्वं बुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् ।

तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी संविदाना इति ॥’

अर्थात् चम्मच का मुख नीचे की ओर और ओर पेंदा ऊपर की ओर है। उसके किनारे पर सात ऋषि और आठवी वाग्देवता है। यहां ‘चम्मच’ का अभिप्रेत अर्थ ‘सिर’ है। सिर के विभिन्न भागों में पच प्राणवायु का निवास है जो स्फूर्तिकारी है। उसी के सन्निकट इद्रियाँ हैं जिनमें ज्ञान की वाणी भी है।

वेदों की भाँति उपनिषदों में भी कूट-रचना मिलती है। मुंडकोपनिषद का यह मंत्र अत्यन्त प्रचलित है—

‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिशस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नभ्याग्योऽभिचाकशीति ॥’

इसका शब्दार्थ यह है—दो पक्षी जो परस्पर सहयोगी और सखा हैं, एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट पिप्पल का भक्षण करता है और दूसरा कुछ भी भक्षण न करते हुए प्रकाशमान रहता है। अभीष्टार्थ यह है—जीव और ईश्वर

नियम्य-नियामक भाव से तुल्य चैतन्य स्वभाव होने से मित्र है और एक ही देह अथवा संसार में विद्यमान है। इनमें से जीव कर्मफल का भोग करता है और ईश्वर कर्मफलों से अनासक्त रहकर प्रकाशमान रहता है।

ईषोपनिषद् में सांसारिक भोगों में रत व्यक्ति का आध्यात्मिक ज्ञान छिपा रहता है और वह तभी प्रकाशित होता है जब सांसारिक भोगों का त्याग कर दिया जाये, इस भाव को कूटार्थ के द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

‘हिरण्ययेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्मा हि दृष्टये ॥’

अर्थात् सत्य का मुख सोने के पात्र से ढका हुआ है। हे पूषा ! तुम उसे अनावृत्त कर दो, जिससे तुम्हें सत्य के दर्शन हो सकें।

महाभारत में भी अनेक स्थानों पर कूट-श्लोको का प्रयोग है, जिन्हें ‘ग्रन्थ-ग्रन्थियाँ’ कहा गया है। इस विषय में यह कथा प्रचलित है—ब्रह्मा के आदेश से महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास ने गणेश जी से प्रार्थना की कि वे महाभारत के प्रणयन में उन्हें सहयोग दें। गणेश जी ने उनका लिपिक बनना तो स्वीकार कर लिया, पर यह शर्त रखी कि ग्रन्थ समाप्त होने तक उनकी लेखनी रुक न पाये। यदि उन्हें लेखनी को रोकने का अवकाश मिल गया तो वे अपना कार्य छोड़ देंगे। महर्षि व्यास ने उनकी शर्त तो स्वीकार कर ली, पर साथ ही अपनी भी यह शर्त लगा दी कि वे जो-कुछ भी लिखे उसका अर्थ भी समझते जायें। बिना अर्थ समझे कुछ न लिखें। गणेश जी ने भी उनकी शर्त मान ली। व्यास जी यद्यपि अत्यधिक शीघ्रता से श्लोक बनाकर बोलते थे, पर गणेश जी की भी लिखने की गति कम थी। वे भी उतनी ही शीघ्रता से उसे लिख लेते थे। व्यास जी को जब कुछ क्षण सोचने की आवश्यकता अनुभव होनी तो वे किसी ऐसे कूट-श्लोक की रचना कर देते, जिसका अर्थ समझने के लिए गणेश जी को कुछ क्षण लेखनी बन्द करनी पड़ती। इसीलिए महाभारत में लगभग आठ हजार आठ सौ कूट-श्लोक हैं जो यत्र-तत्र महाभारत में छिपे हुए हैं। गौतम का कथन है कि व्यास ने दस श्लोकों की रचना की तूझ और अपनी बुद्धि तथा प्रतिभा का दर्शन करने के लिए की थी—

‘ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिगूढं कुतूहलात्।

यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्विपायनस्त्वदम् ॥’

आदिपर्व से यमक और श्लेष पर आधृत कूट श्लोक का यह उदाहरण प्रस्तुत है—

‘प्राज्ञः प्राज्ञप्रलापज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः।

प्राज्ञं प्रलायज्ञं प्राज्ञः प्रलापज्ञो वचोऽब्रवीत् ॥’

यहाँ ‘प्राज्ञ’ शब्द के तीन अर्थ हैं—बुद्धिमान, ग्राम्य और दुर्बोध। इसी प्रकार ‘प्रलापज्ञ’ के दो अर्थ हैं—वह व्यक्ति जो ग्राम्य लोगों की बोलियों को जानने वाला है,

अथवा केवल असंस्कृत लोगों की भाँति प्रलाप जानने वाला है। अतएव इस श्लोक का अर्थ यह है—ग्राम्य लोगों की स्थानीय बोलियों को भली प्रकार समझने वाले उस प्राज्ञ व्यक्ति ने ये शब्द उस व्यक्ति से कहे जो स्वयं भी उन बोलियों का ज्ञाता था। उन बोलियों को न जानने वाले व्यक्ति उन शब्दों के अर्थों को न समझ सके, केवल वे ही व्यक्ति समझ सके जो उनको जानने वाले थे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण महा-भारत से उद्धृत किये जा सकते हैं।

महाभारत के अनंतर भक्ति और लौकिक साहित्य में कूट-रचना का प्रचुर प्रचलन दिखाई देता है। भवतो ने तो कुछ ऐसे निश्चित, गूढ़ार्थक एवं यीजशास्त्री की रचना की, जिनका प्रयोग किसी विशिष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही हुया है। भागवतपुराण में दार्शनिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वों की अभिव्यक्ति कूट-शैली में भी पर्याप्त शैली में हुई है। यथा—

‘द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कंधः पञ्चरसप्रसूतिः ।

वशंकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिबल्कलो द्विफलोऽर्कः प्रविष्टः ॥’

शब्दार्थ है—इस वृक्ष के दो बीज, सौ जड़ें, तीन नाल, पाँच स्कंध, पाँच रसों वाले फल, ग्यारह शाखाएँ, दो पक्षियों के नीड, तीन बल्कल और दो फल हैं। यह मूल्य मे प्रविष्ट हो गया है। वस्तुतः यह रूपात्मक भाषा में विश्व का वर्णन है। इस श्लोक का भावार्थ यह है—इस विश्वरूपी वृक्ष के पाप-पुण्य नाम के दो बीज हैं; संकड़ों प्रकार की आकांक्षाएँ इसकी जड़ें हैं; सत्त्व, रज और तम रूपी इसकी तीन नाल हैं; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच तत्त्व इसके पाँच स्कंध हैं; पाँच प्रकार के इन्द्रियानुभव इसके रसीले फल हैं, तीन लोक इसके बल्कल हैं और सुख-दुःख इसके दो फल हैं।

संस्कृत-साहित्य के सरस कवि और प्रख्यात आचार्य दण्डी ने अपने ‘काव्यादर्श’ में प्रहेलिका का जो सांगोपांग विस्तृत विवेचन किया है, उससे स्पष्ट है कि इनके समय तक कूट-रचना का पर्याप्त प्रचलन हो गया था और उसकी रचना भी हो चुकी थी। दंडी ने वचिता, पुरुषा, समानरूपा, योगमालात्मिका आदि अनेक प्रहेलिका भेदों का विवेचन किया है। वचिता प्रहेलिका में वचना का कारण प्रयुक्त शब्द के प्रचलित अर्थ का विकसित अर्थ से भिन्न होना होता है। यथा—

‘कुब्जासासेवमानस्य यथा ते वर्द्धन्ते रतिः ।

नेवं निविशतो नारीमरस्त्रीविडम्बिनीः ॥’

इस श्लोक में ‘कुब्जा’ का प्रचलित अर्थ ‘कुबड़ी स्त्री’ विवक्षित नहीं है। विवक्षितार्थ है—‘कान्यकुब्ज की सुन्दरी ।’ पुरुषा प्रहेलिका में कुछ वर्ण खींचतान से की हुई व्युत्पत्ति के बल पर ऐसा अर्थ देते हैं जो प्रायः व्याकरण-सम्मत नहीं होता। समानरूपा प्रहेलिका में शब्दों का अर्थ अलंकार अथवा लक्षणा की सहायता से पर्याय-रूप में ग्रहण किया जाता है और योगमालात्मिका प्रहेलिका में शब्दों की शृंखला से

अभीप्सित अर्थ का बोध होता है। यथा—

‘विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतो जनः ।

हिमापहामित्रधरैर्व्याप्तं व्योमाभिनंदति ॥’

यहाँ ‘विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतो जनः’ का अर्थ ‘संतप्त जन’ है जो इस शब्द-शृंखला से इस प्रकार निकलता है—वि पक्षी गरुड़, गरुड़ के द्वारा जीता इन्द्र, इन्द्र का आत्मभव (पुत्र) अर्जुन, अर्जुन का द्वेषी कर्ण, कर्ण का गुरु (पिता) सूर्य, सूर्य के पाद किरण, किरणों से आहत जन संतप्त जन। इसी प्रकार ‘हिमापहामित्रधरै’ का अर्थ ‘बादल’ है जो इस प्रकार निकलता है—हिम शीत, अपहा विनाशक, शीत का विनाशक अग्नि, अग्नि का शत्रु जल, जल को धारण करने वाला बादल।

संस्कृत के कवियों ने भी कूटकाव्य की रचना की है। कान्दिदास, माघ, श्रीहर्ष, भारवि आदि सभी कवियों के काव्यों में कूट पद अनायास ही देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारविकृत ‘किरातार्जुनीय’ का यह श्लोक प्रस्तुत है—

‘जगतीशरणे युक्तो हरिकांतः सुधासितः ।

दानवर्षा कृताशंसो नागराज इवाबभौ ॥’

इस श्लोक में ‘नागराज’ शब्द श्लिष्ट है जिसके सभंग और अभंग श्लेष से तीन अर्थ (हिमालय, ऐरावत और शेषनाग) हैं। इन अर्थों के कारण उक्त श्लोक के निम्न-लिखित तीन अर्थ हैं—

१. संसार में शंकर भगवान् के साथ रण में समर्थ, सिंह के समान कांतिमान, प्रजा का पालक, कृष्णवर्ण, अत्यधिक दानी और जय का अभिलाषी अर्जुन पृथ्वी की रक्षा करने के लिए ब्रह्मा द्वारा निर्मित सिंहों को आवास देने के कारण उनके प्रिय, सुधा के समान धवल वर्ण वाले, अनेक रत्नों के दाता, दैत्य तथा ऋषियों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हिमालय के समान सुशोभित हुआ।

२. वह अर्जुन राक्षसों से युद्ध करने में समर्थ तथा इन्द्र के प्रिय अमृत के स्वच्छ, दान की वर्षा करने वाले और विजय के इच्छुक ऐरावत के समान प्रतीत हुआ।

३. जगत् की रक्षा करने में समर्थ, कृष्ण का प्रिय, प्रजा का पालक और कृष्ण-वर्ण, दैत्यों, ऋषियों और लक्ष्मी के द्वारा प्रशंसित वह अर्जुन शेषनाग के समान सुशोभित हुआ।

संस्कृत-साहित्य की इस परम्परा ने हिन्दी-भक्त-कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया। इन कवियों ने कूट-पदों का प्रयोग मुख्यतः रहस्यवादी सिद्धांतों तथा शृंगार-वर्णन के लिए किया। जीवात्मा द्वारा कुंडलिनी को वश में करने का वर्णन गोरखनाथ ने कूट-शैली में इस प्रकार किया है—

‘त्रिभुवन डसनी गोरखनाथ डीठी ।

मारी छपणों जगाइ ल्यो भौरा ।

जिनि मारी स्रपणीं ताकौ कहा करे जौरा ।

स्रपणीं कहै मैं अबला बलिया ।

ब्रह्मा बिस्नु महादेव छलिया ।

माती माती स्रपणीं दसों दिसि धावै ।

गोरखनाथ गारुडी पवन बेगि त्यावै ॥'

इस पद का शब्दार्थ है—गोरखनाथ ने तीनों भुवनों को डमती हुई स्रपिणी को देखा । उसने उसे मारकर भौरे को जगा दिया । जिसने इस स्रपिणी को वश में कर लिया है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । स्रपिणी कहती है कि मैं अबला बाला हूँ, फिर भी मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश को भी छल लेती हूँ । वह स्रपिणी उन्मत्त होकर दसों दिशाओं में घूमती रहती है । गारुड़ी गोरखनाथ ने उसे पवन से वशीभूत कर लिया है । यहाँ स्रपिणी कुण्डलिनी और भौरा जीवात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं । इस प्रकार गोरख ने इन पंक्तियों में हठयोग का प्रतिपादन किया है ।

कबीर ने भी परमात्मा की महत्ता एवं उसके स्वरूप का वर्णन इसी प्रकार की कूट-शैली में अनेक स्थलों पर किया है । एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘जाइ रच्यो गोविंद पढ़िया पंडिता, तेरा कौन गुरु कौन चेला ।

आपणें रूप को आपुहि जाणै, आपं रहै अकेला ॥

बाँझ का पूत बाप बिन जाया, बिन पाँऊं तरवरि चढ़िया ।

बीज बिन अंकुर, पानि बिन सरवर, बिन साखा तरवर फलिया ॥

रूप बिन नारी, पटुप बिन पूजा, बिना पाँखा भँवर बिलम्बिया ।

सूरा होइ जु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥’

अर्थात् परमात्मा ने मूर्ख और पंडित दोनों की रचना की है । उसका न कोई गुरु है और न कोई चेला । वही स्वयं अपने स्वरूप को जानता है और सबैव अकेला रहता है । वह बाँझ-नारी का पुत्र है और बिना बाप के उत्पन्न हुआ है । वह बिना पैरो के वृक्ष पर चढ़ गया है । वह बिना बीज के अंकुर, बिना पानी के सरोवर, बिना शाखा के फला हुआ तरवर, बिना रूप के नारी, बिना पुष्प की पूजा और बिना पखों के भौरा है । कीट-पतंग तो सब जल जाते हैं, केवल सूर ही उस परम पद वाले परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं ।

उलटबाँसियाँ भक्त-कवियों की परम प्रिय काव्य-शैली रही है । सिद्ध और सत सभी प्रकार के कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है । उलटबाँसी के द्वारा गोरखनाथ ने ईश्वर की प्रहत्ता का इस प्रकार वर्णन किया है—

‘गगन मंडल मैं गाय बियाई, कागद वही जमाया ।

छाँछ छाँड़ि पिडता पानी, सिंघा माषण खाया ॥’

शब्दार्थ है—आकाश-मंडल में गाय ब्याई जिसकी दही कागज पर जमाई गई । सिंह ने छाछ को पानी समझकर छोड़ दिया और वह मक्खन को खा गया

इष्टार्थ यह है कि माया की यह सृष्टि नश्वर है। इसी में ज्ञान निहित रहता है। केवल परमात्मा ही वह विलक्षण तत्त्व है जो उस ज्ञान के सार को ग्रहण कह लेता है और शेष पदार्थों को असार जानकर छोड़ देता है।

कबीर ने तो इतनी अधिक उलटबाँसियाँ लिखी हैं कि वर्ण्य-विषय के आधार पर इन्हे दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—व्यंजनात्मक और गोपनात्मक। यदि इन दोनों पदों की तुलना की जाये तो कहा जा सकता है कि इनमें व्यंजनात्मक उलटबाँसियाँ ही उत्तम हैं क्योंकि इनमें काव्य-तत्त्व अधिक होता है। गोपनात्मक उलटबाँसियाँ तो प्रायः सिद्धान्तपरक हैं, जिनमें सिद्धांतों की व्यंजना मुख्य और काव्यत्व गौण है। कबीर की व्यंजनात्मक उलटबाँसी का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘उनइ बदरिया परियो संभा, अगुआ भूले बनखग भंभा।

पिय अंते घन अंते रहई, चौपरि कामरि माथे गहई।

फुलवा भार न सहि सकै, कहै सखिन सौं रोय।

ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों हलकी होय।’

अर्थात् बादल उमड़ आये। संध्या-समय आ गया। बनखगों का अगुआ भंभा के कारण मार्ग भूल गया। प्रिया अपने प्रियतम से मिलना चाहती है, पर उसके मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। फूलों के भार को न सह सकने के कारण वह अपनी मखियों से रोककर कहती है। कामरी ज्यों-ज्यों भीगती है, त्यों-त्यों हलकी होती जाती है। भावार्थ यह है कि जीवात्मा अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए अग्रसर होती है। गुरु उसका पथ-प्रदर्शक है, पर वह अज्ञान के कारण भटककर अपना पथ खो बैठती है। सामारिकता उसके पथ की बाधाएँ हैं। कामरी सांसारिक कर्म है। आत्मा ज्यों-ज्यों परमात्मा के प्रेम से मित होती है, कर्मफलों का प्रभाव उतना ही हल्का होता जाता है।

और गोपनात्मक उलटबाँसी यह है—

‘अबधू ऐसा ज्ञान बिचारो।

बेड़े चढ़े सो अधधर डूबै, निराधार भए पारो ॥

ऊघट चलै सो नगरि पहुँचे, बाट चले ते लूटे।

एक जेबरी सब लपटाने, कै बांधे कै छूटे ॥

मंदिर पॅसि चहूँ दिसि भीजै, बाहिर रहे ते सूका।

सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते बूखा ॥

बिना नैन के सब जग देखे, लोचन अछते अंधा।

कहै कबीर कछु समझ परी है, यह जग देख्यो अंधा ॥’

शब्दार्थ है—हे अबधू ! इस ज्ञान का विचार करो। जो बेड़े पर चढ़ता है वह मँझधार में ही डूब जाता है और जो उस बेड़े का सहारा नहीं लेता वह पार हो जाता है। जो बाट छोड़कर चलता है वह नगर में पहुँच जाता है और जो बाट पर

चलता है वह लुट जाता है। एक ही रस्सी से सब बंधे हुए हैं, फिर किसको बंदी और किसको मुक्त कहा जाये ? जो मन्दिर में प्रविष्ट हो गये हैं, वे पूर्णतया भीग गये हैं, और जो बाहर रह गये हैं, वे सूखे हुए हैं। जिनको बाण की चोट लगी है, वे सब प्रताप से सुखी हैं और जिनको नहीं लगी वे दुखी हैं। अन्धे मारे समार को देखते हैं, पर लोचन वाले अन्धे बने हुए हैं। कबीरदास कहते हैं कि मुझे तो यही समझ में आया है कि यह संसार ही अन्धा है।

इस पद का अभीष्टार्थ तभी समझ में आ सकता है, जब इसके प्रतीकों के अर्थ समझ लिये जायें। यहाँ पर वेड़ा त्रिविध देव, समार गहन समुद्र, दाट मुक्ति, नगर ईश्वर-प्राप्ति, रस्सी माया, मन्दिर ईश्वरत्व, अन्धा वियोगी, मर गुरु-ज्ञान है।

इसी प्रकार आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति कबीर ने निम्नलिखित उलट-बांसी में इस प्रकार की है—

‘ऐसा अदभुत मेरा गुरु, कथ्या मैं रहा उमेरें ।
 मूसा हस्ती सौं लड़ें, कोई बिरला पेखें ॥
 मूसा बैठा बाँबि मैं, लारें सापणि धाई ।
 उलटि मूसे सांपिन गिली, यहु अचरज भाई ॥
 चींटी परवत ऊषण्यां, ले राख्यो चौड़ें ।
 मुर्गा मिनकी सूँ लड़ें, फल पाणी दोड़ें ॥
 मुरही चूँषे बछतलि, बछा दूध उतारें ।
 ऐसा नबल मुणी भया, सारदूलहि मारें ॥
 भील लुक्या बन बीच में, ससा सर मारें ।
 कहै कबीर ताहि गुरु करौं, जो यह पदहि बिचारें ॥

अर्थ है—जब मैं जग रहा था तो मेरे गुरु ने आश्चर्य मुझसे कहा कि चूहा हाथी से लड़ता है, पर बिरला ही उसे देख सकता है। चूहा बिल में बैठा है और सापिणी के पीछे दौड़ रहा है। सापिणी ने उलटा मुड़कर उसे निगल लिया। हे भाई ! यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। चींटी ने सबके सामने पर्वत पर ईश्वर को उठाकर रख दिया है। मुर्गा मेंढक से लड़ रहा है। पानी में आग दौड़ रही है। गाय बछड़े को चौख रही है। बछड़ा दूध दे रहा है। यह नई बात ही सुनने में आई है कि हिरन सिंह को मार रहा है। भील वन में छिप गया है और खरगोश बाण चला रहा है। कबीरदास कहते हैं कि जो इस पद का अर्थ समझ ले तो मैं उसे अपना गुरु मान लूँ।

शृंगारिक वर्णनों में, विशेषतः सौन्दर्य-वर्णन में, गूढार्थक शब्दों का प्रयोग हिन्दी के आदि-कवि चदबरदाई की रचना में भी मिलता है। इनके कूट-पद प्रायः अलंकाराश्रित और नायिका के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। सयोगिता के

शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है—

‘कुंजर उप्पर सिंघ, सिंघ उप्पर वोय पढ्बय ।
पढ्बय उप्पर भ्रंग, भ्रंग उप्पर ससि सुभय ॥
ससि उप्पर इक कीर, कीर उप्पर अग दिट्ठौ ।
अग उप्पर कोदंड संघ, कंदप्प बयट्ठौ ॥
अहि मयूर महि उप्परइ, हीर सरस हेमन जर्यौ ।
सुर-भुवन छांडि कवि चंद कहि, तिहि धोखै राजन पर्यौ ॥’

अर्थात् हाथी पर सिंह था, सिंह पर दो पर्वत थे, पर्वत पर दो भौरे थे, और भौरों पर चंद्रमा सुशोभित था। चंद्रमा पर एक तोता था और तोते पर हिरन दिखाई दे रहा था। हिरन पर धनुष साधे कामदेव बैठा हुआ था। उस पर सर्प था। स्वर्णजटिन हीरे-जैसा मोर पृथ्वी पर विद्यमान था, जिसे देखकर महाराज पृथ्वीराज स्वर्ग को छोड़कर उसी के धोखे में पड़ गये। यहाँ हाथी गजगति का, सिंह कटि का, पर्वत कुचो का, भ्रमर कुचाग्र भाग का, चंद्रमा मुख का, तोता नासिका का, हिरन नेत्रों का, धनुष भृकुटी का, सर्प केशों का और मयूर तिरछी चितवन का प्रतीक है। इसी प्रकार—

‘तजि भूषन बर बाल, एक आचिज्ज अपन्नौ
लता हेम पर चंद, उभै खंजन दिग चिन्नौ ॥
श्रीफल उरज बिसाल, बाउ पर भुंग सुपत्ती ।
सुकि सुत रंग अरन्नि, करी भग्गाबल बत्ती ॥
सोमंत उरगपति मुअसरन, हंस मुत्ति चरवर करी ।
सुध काज चढ़े पप्पील सुत, काम पत्तिनी दुख डरी ॥’

अर्थात् उस सुन्दरी बाला ने आभूषण त्यागकर भी एक आश्चर्य उत्पन्न कर दिया। सोने की लता पर चन्द्रमा है जिसके पास सदैव दो खंजन रहते हैं। श्रीफल के समान विशाल उरोजों पर भ्रमर है। उसके ऊपर लाल रंग का शुक चमक रहा है। उसकी शरण में सर्पराज सुशोभित है। हंस मोती चुग रहे हैं। कामदेव की स्त्री रति उससे भयभीत होकर हाथी पर चढ़ गई है। यहाँ हेमलता सुन्दर अंगयष्टि की, चन्द्रमा मुख का, खंजन नेत्र का, भ्रमर कुचाग्र भाग का, सर्प केश का, हंस ग्रीवा का, मोती दांत का और हाथी सुडौल जघा का प्रतीक है।

सूर-पूर्व हिन्दी-कवियों में विद्यापति ने पर्याप्त कूट-रचना की है। विद्यापति की कूट-रचना भी अलंकाराश्रित है। इन्होंने अधिकांशतः रूपकातिशयोक्ति, यमक, अतिशयोक्ति, विरोधाभास और सदेह अलंकारों का आश्रय लिया है। यथा—

‘सजनी अपरूप पेखल रामा ।

कनकलता अवलम्बन ऊअल हरिनहीन हिमधामा ॥

नयनं नलिनि दुग्धो अंजन रंजइ भौंह बिभंग विलासा ।
चकित चकोर जोर बिधि बाँधल केवल काजर पासा ॥
गिरिवर गरुड पयोधर परसित गिम गज मोतिकहारा ।
काम कम्बु भरि कनक सम्भु पर ढारत सुरसरि धारा ॥
पएसि पयान आग सत जागइ सोइ पावई बहु भागी ।
विद्यापति कह गोकुल नायक गोपी जन अनुरागी ॥'

सखी सखी से राधा के अपार सौंदर्य का वर्णन करती हुई कह रही है कि हे सखि ! मैंने एक अपूर्व रमणी देखी । सोने की लता का महारा लेकर हरिणहीन हिमधाम उगा हुआ था । दोनों कमल-नयन अंजन-रंजित थे । भृकुटि का विभंग विलास-मय था । नेत्रों की चंचलता ऐसी प्रतीत होती थी मानो ब्रह्मा ने चकोर-युगल को केवल काजल-पाश से बाँध दिया हो । पर्वत के सदृश गुरु पयोधरों का स्पर्श करता हुआ मोतियों का हार उसके गले में था, जो ऐसा प्रतीत होता था मानो कामदेव श्रीवा-रूपी शंख में हाररूपी गंगाजल भरकर शिवरूपी कुचों पर उड़ेल रहा हो । विद्यापति कहते हैं कि वही भाग्यवान उस रमणी को पा सकता है, जिसने कृष्ण और गोपियों से अनुराग तथा प्रयाग में सौ यज्ञ किये हों । यहाँ पर कनकलता, हरिणहीन हिमधाम, चकोर, गिरिवर आदि राधा की अंगयष्टि, निष्कलक मुख, चंचल नेत्र, कठोर एवं उन्नत कुच आदि के प्रतीक हैं और केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार है । अतः यह रूपकातिशयोक्ति अलंकाराश्रित कूट है । और—

‘सारंग नयन बयन पुनि सारंग सारंग तमु समधाने ।
सारंग ऊपर उगल दस सारंग केलि करथि मधुपाने ॥’

यहाँ ‘सारंग’ शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमकाश्रित कूट है । इसका अर्थ है—उसकी (नायिका की) आँखें हिरन की आँखों के सदृश हैं । उसकी वाणी में कोयल की वाणी का-सा माधुर्य है । उसी भौंहों का कटाक्ष कामदेव के धनुष का संधान है । उसके कमल जैसे ललाट पर भौंहों के समान काली अनेक लटें लटक रही हैं, जो ऐसी प्रतीत होती हैं मानों भौरे मधुपान करके केलि कर रहे हों ।

कही-कहीं विद्यापति ने एकाधिक अलंकारों का आश्रय लेकर कूट रचना की है । यथा—

‘जुगल सैल सिम हिमवर पेखल एक कमल दुइ जोति रे ।
फुललि मधुर फुल सेंदुर लोटायल पाँति बइसलि गजमोति रे ॥
आज देखल जति के पति आएल अपुरुष बिहि निरमान रे ।
विपरित कनक कदलितर सोभित थल पंकज के रूप रे ॥
तथहु मनोहर बाजन बाजए जनि जागे मनसिज भूप रे ॥’

सखी सखी से नायिका के अपूर्व सौंदर्य का वर्णन करती हुई कह रही है कि हमने दो पर्वतों की सीमा में चन्द्र का दर्शन किया। वहीं एक कमल में दो ज्योतियाँ भी देखने में आईं। फूली हुई मधुरी का पुष्प सिद्धर में लोट रहा था और गजमुक्ताओं की पंक्ति बैठी थी। आज हमने जितना सौंदर्यागार देखा, उस पर कौन विश्वास करेगा। वह तो वस्तुतः विधाता की अपूर्व सृष्टि थी। सोने के केले के उल्टे स्तम्भ के नीचे कमल का रूप था। वहाँ भी मनोहर बाजे बज रहे थे जैसे राजा कामदेव को जगाने का अनुष्ठान किया जा रहा हो। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति, विरोध, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का सकर है।

सौंदर्य-वर्णन के अतिरिक्त विद्यापति ने विदग्ध-विलास में भी कूट-शैली का प्रयोग किया है। यथा—

‘सखि हे कि कहब किछु नहि फूर।

सपन कि परतेख कहए न पारिए, किए नियरे किए दूर ॥

तड़ितलता तल जलद समारल, अंतर सुरसरि धारा।

तरल तिमिर ससि सूर गरासल, चौदिस खसि पड़ तारा ॥

अम्बर खसल धराधर उलटल, धरनी डगमग डोले।

खरतर बेग समीरन संचर, चंचरिगन कर रोले ॥

प्रणय-पयोधि-जले तन भाँपल, ई नहि जुग अबसान।

के विपरीत कथा पतिआयल, कवि विद्यापति भान ॥’

नायिका की विपरीत-रति का वर्णन कूट-शैली में करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि हे सखि ! क्या कहूँ ? कुछ कहा नहीं जाता। मैं नहीं जानती कि यह स्वप्न की घटना है या प्रत्यक्ष की, निकट की है या दूर की। विजली की लता के नीचे बादल अवस्थित है, अंतर केवल गंगा की धारा का ही है। गहन अंधकार ने चंद्रमा और सूर्य को ग्रस लिया है। तारे टूटकर चारों ओर बिखर गये हैं। आकाश खिसल गया, पर्वत उलट गये, धरती डगमगाने लगी। प्रबलतर वायु वेग से चलने लगी। भ्रमर-समूह शोर करने लगा। प्रणय-सागर के जल में सारा शरीर डूब गया, पर यह प्रलयकाल नहीं है। यह तो विरोधी कथा है। जिस पर कोई विश्वास नहीं कर सकता। यहाँ तड़ित लता राधा का, जलद कृष्ण का, गंगा की धारा हार का, अम्बर कंचुकी का, धराधर कुचों का, धरनी नितम्ब का, समीर रतिश्रमजन्य उच्छ्वास का, भ्रमर-समूह अलंको का प्रतीक है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सूरदास से पूर्व संस्कृत और हिन्दी साहित्य में कूटकाव्य का पर्याप्त विकास हो चुका था। संस्कृत में तो यह अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुका था, पर हिन्दी में इसका विकास सीमित था, जो विद्यापति में परिलक्षित होता है। गूर ने इसी परम्परा को ग्रहण करके इसे पूर्णता प्रदान की। कूटकाव्यकार की दृष्टि से भी सूर का हिन्दी-साहित्य में मूर्धन्य स्थान है।

सूर का कूट काव्य

सूरदास की सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावाली—इन तीन कृतियों में कूट-पदों की रचना मिलती है। इनमें सूरसागर तो असद्विध रूप से सूर की ही रचना मानी जाती है, पर साहित्यलहरी और सूरसारावाली के सूर-रचित होने में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, फिर भी अधिकांश विद्वान् उन्हें सूर-रचित ही मानते हैं। हमने भी इन्हें सूर-रचित स्वीकार किया है और इसीलिए उक्त तीनों कृतियों में से सूर के कूट-पदों को संगृहीत किया है।

इसमें सदेह नहीं कि हिन्दी के कूट-साहित्य में सूरदास का मूर्धन्य स्थान है, वरन् यह कहना अन्यथा न होगा कि हिन्दी-कूट-साहित्य का विकास सूर ने ही किया है। सूर के कूटकाव्य का विश्लेषण करने के लिए इसे निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित करना युक्तियुक्त होगा—

१. सूर के कूट-पदों का वर्गीकरण
२. सूर के कूट-पदों के वर्ण्य-विषय
३. सूर के कूट-पदों में काव्य-कला

वर्गीकरण

कूटकाव्य के स्वरूप का विवेचन करते समय हमने कूटकाव्य के दो भेद किये हैं—आर्थी-कूट और शाब्दी-कूट। अर्थालंकारों पर आश्रित कूटों को आर्थी और शब्द-कौशल पर आधारित कूटों को शाब्दी-कूट कहते हैं। सूर ने इन दोनों प्रकार के ही कूटों की रचना की है। यथा—

‘कहँ लौं राखिय मन बिरमाई ।

इक टक सिव धर नैनन लागत, स्याम-मुता-धनि चलि आई ॥

हर-बाहन दिबि-बास-सहोदर, तिहि पति उदित मुखि महि जाई ।

गिरजा-पति-रिपु नख-सिख व्यापत, बसत सुधा-प्रिय कथा सुनाई ॥

बिरहिनि बिरह आप बस कीन्हों, लेहु कमल जमि पाँइ छुवाई ।

बेगहि मिलौ सूर के स्वामी, उदधि-मुता-पति मिलि है आई ॥’

इस पद में बिरहिणी नायिका की सखी नायक से उसके बिरह का निवेदन कर रही है। यहाँ शब्द-कौशल की अपेक्षा अर्थ (भाव) का प्राधान्य है जो परिवराकुर, पूर्णोपमा, दृष्टांत आदि अर्थालंकारों के सहयोग से व्यक्त हुआ है। अतः आर्थी-कूट है। इसी प्रकार—

‘कुंज मैं बिहरत नबल किसोर ।

एक अचम्भौ देखि सखी री, उग्यौ सूर बिनु भोर ॥

तहँ घन स्याम दामिनी राजत, द्वँ ससि चारि चकोर ।

अम्बुज खंजन मधुप आप मिलि, क्रीड़त एकहि खोर ॥

तहँ द्वं कीर बिम्बफल चाखत, बिद्रुम मुक्ता चोर ।
 चारि चिकुर आनन पर भलकत, नाचत सीसनि मोर ॥
 तामैं एक अधिक छवि सोहै, हंस कमल इक ठोर ।
 हेमलता तमाल गही द्वं फल मानौं देति अँकोर ॥
 कनक लता नीलम पर राजत, उपमा कहँ सब थोर ।
 सूरदास प्रभु इहिं बिधि क्रीडत, ब्रज-जुबती-चितचोर ॥'

यहाँ सखी सखी से राधा और कृष्ण के विहार का वर्णन कर रही है। यह वर्णन विभावना, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा और प्रतीप आदि अर्थालंकारों से उत्कर्षता को प्राप्त हुआ है। अतः यह भी आर्थी-कूट है।

शाब्दी-कूटों में अर्थ की अपेक्षा शब्द-कौशल की प्रधानता होती है। कवि अपने काव्य में अनेक साधनों से शब्द-संयोजना करता है, जिनमें से मुख्य है—प्रतीकों का प्रयोग, अनेकार्थी शब्दों का एक विशिष्ट रूढ़ अर्थ में प्रयोग, एक शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्ति, शब्द-समूह की शृंखला से अंत में एक अर्थ का बोध, वर्णों के योग से शब्द-निर्माण, वर्णों के लोप से नवीन अर्थ का बोध, संख्यासूचक शब्दों से इष्टार्थ अभिव्यक्ति, वर्णों की पुनरावृत्ति से अर्थ-बोध, पर्यायवाची शब्दों से अर्थ-बोध, प्रहेलिका से भावाभिव्यक्ति और शब्दों के विलोम द्वारा अभीष्टार्थ का बोध। इन साधनों का उल्लेख पहले किया जा चुका है और उदाहरण भी सूर-काव्य से दिये गये। अतः यहाँ पर उनकी पुनरावृत्ति अनपेक्षित है। इनके आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शब्द-संयोजना के जितने भी साधन सम्भावित हैं, उन सबका सूर ने सफलतापूर्वक उपयोग किया है।

वर्ण्य-विषय

सूर मुख्यतः भक्त-कवि है, अतः भक्ति के विविध स्वरूपों का विवेचन ही इनका वर्ण्य-विषय है। फिर भी, पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा इनके कूटकाव्य का क्षेत्र विस्तृत है। इनके प्रमुख वर्ण्य-विषय है—कृष्ण की लीलाओं का वर्णन, रहस्य-भावों की अभिव्यक्ति और काव्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन।

कृष्ण सूर के आराध्य देव हैं। सूर ने इनके जीवन के दो ही पक्षों का वर्णन किया है—बचपन और यौवन। कृष्ण की बाल-लीला के विविध रूप सूर ने अधिकांशतः इन्हीं दो पक्षों का आधार लेकर प्रस्तुत किये हैं। बचपन के चित्रण में सूर ने कृष्ण की विविध बाल-लीलाओं का वर्णन किया है जिनमें कृष्ण का सहज बाल-स्वभाव और कहीं-कहीं उनका ब्रह्मत्व वर्णित है। ये पद प्रायः वात्सल्य रस से तथा कृष्ण-छवि से ओतप्रोत हैं। कोई गोपी उनकी बाल-छवि पर मुग्ध होकर अपनी सखी से कह रही है—

‘देखो माई, दधिसुत मैं दधि जात ।

एक अचम्भौ देखि सखी री, रिपु मैं रिपु जु समात ॥

दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वे पात ।
यह शोभा देखत पमुपालक, फूले अंग न समात ॥
बारम्बार विलोकि सोचि चित्त, नन्दमहर मुसुवयात ।
यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात ॥'

इस पद में दही खाते हुए कृष्ण की बाल-छवि का और उस उस पर रीझने वाले नन्द के अपार आनन्द का वर्णन है । और—

‘दधि-सुत जामे नन्द-दुवार ।
निरखि नैन अरुण्यो मनमोहन, रटत देहु कर बारम्बार ॥
दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार ।
कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुधार ।
गोकुलनाथ बए जसुमति के, आंगन भीतर, भवन मंभार ।
साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फरत न लागी बार ॥
जानत नहीं मरम सुर, नर. मुनि, ब्रह्मादिक नहि परत बिचार ॥
सूरदाम प्रभु की यह लीला, ब्रज-बनिता पहिरे गुहि हार ॥’

इस पद में सूरदाम ने कृष्ण के अलौकिकत्व का संकेत देकर शांत रस की अभिव्यक्ति की है । कृष्ण-काव्य की एक प्रमुख विशेषता यह रही थी है कि कवि यथावसर उनके ब्रह्मत्व का संकेत दे देते हैं ।

यौवन के चित्रण में सूर ने सयोग और वियोग दोनों ही दशाओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं । सयोग-शृंगार में कृष्ण और राधा के सौंदर्य-चित्र है । राधा के सौंदर्य का वर्णन करती हुई मखी सखी से कह रही है—

‘आजु तन राधा सज्यौ सिंगार ।
नीरज-सुत-सुत-बाहन कौ भख, स्याम अरुन रंग कौन बिचार ।
मुद्रापति-अंचवन-तनया-सुत, ताके उरहि बनावहि हार ।
गिरि-सुत तिन पति बिबस करन कौं, अच्छत लै पूजत रिपु-मार ॥
पंथ-पिता-आसन-सुत सोमित, स्याम घटा बन-पंक्ति अपार ।
सूरदास-प्रभु अंस-सुता-तट, क्रीड़त राधा नंद-कुमार ॥’

अर्थात् आज राधा ने शृङ्गार किया है । उसने अपने सर्प के समान केशों को श्याम और अरुण रंग का विचार त्याग करके सज्जित किया है । भाव यह है कि उसने अपने काले केशों को लाल रेशम से गुहा है । वह अपने हृदय पर मोतियों की माला धारण किये हुए है जो ऐसी प्रतीत होती है मानो नायक को विवश करके अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए वह अशक्तों से कामदेव की पूजा कर रही है । उसकी काली साड़ी पर सुन्दर ग्रीवा में धारण की हुई मुक्ता-माला ऐसी लगती है मानो काली घटा में यक-पंक्ति हो । इस प्रकार शृङ्गार किये हुए राधा यमुना के किनारे कृष्ण के साथ क्रीड़ा कर रही है ।

सूर ने राधा और कृष्ण के सम्मिलित सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। कृष्ण और राधा यमुना के किनारे बैठे हुए हैं। उनके शरीरों का प्रतिबिम्ब यमुना-जल में पड़ा हुआ है। उस स्थिति में उनके सौन्दर्य का वर्णन सखी सखी से कर रही है—

‘देखि सखि, चारि चंद्र इक जोर ।

निरखति बैठि नितम्बनि पिय सँग, सार सुता की ओर ॥

द्वै ससि स्याम नबल घन सुन्दर, द्वै बिधु की छवि गोर ।

तिनकं मध्य चारि सुक राजत, द्वै फल आठ चकोर ॥

ससि-ससि सँग प्रबाल कुंद कलि, अरुभि रह्यौ मन मोर ।

सूरदास प्रभु अति रति-नागर, बलि-बलि जुगल किसोर ॥’

जिस प्रकार सूरदास ने राधा के अपूर्व सौन्दर्य का चित्रण किया है, उसी प्रकार कृष्ण के सौन्दर्य के भी विविध एवं मनोहारी चित्र प्रस्तुत किये हैं। कृष्ण के अपूर्व सौन्दर्य के वर्णन में असमर्थ कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है—

‘पीताम्बर की सोभा सखि री, मो पै कही न जाई ।

सागर-सुत-पति-आयुध मानौ, बन-रिपु-रिपु मै देत दिखाई ॥

जा रिपु पवन तामु सुत-स्वामी, आभा कुंडल कोटि दिपाई ।

छाया-पति-तनु बदन बिराजत, बंधुक अधरनि रहे लजाई ॥

नाकी-नायिक-बाहन की गति, राजत मुरली सुधुनि बजाई ।

सूरदास-प्रभु हर-सुत-बाहन, ता पख लै रहे सीस चढ़ाई ॥’

अर्थात् हे सखि ! मुझसे पीताम्बरधारी कृष्ण की शोभा का वर्णन नहीं किया जाता। उनकी शारीरिक कांति ऐसी प्रतीत होती है मानो बादलों में बिजली चमक रही हो। उनके कानों के कुण्डल ऐसे चमक रहे हैं, मानो करोड़ों सूर्यों का प्रकाश प्रकाशित हो रहा हो। उनके मुख पर सूर्य की कांति मुशोभित हो रही है। उनके अधरों की अरुणिमा के समक्ष दुपहरिया का पुष्प भी लज्जित हो जाता है। वे सिर पर मोर-पंख धारण करके मस्ती से भरी हुई मधुर मुरली बजा रहे हैं।

वस्तुतः राधा और कृष्ण के शृङ्गार-चित्रण के द्वारा सूर ने मधुरा-भक्ति का चित्रण किया है जो कृष्ण-काव्य का एक प्रमुख वर्ण्य-विषय रहा है। यही कारण है कि कृष्ण और राधा के सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त सूर ने सुरति, उत्कंठा, मान, मनुहार आदि का भी विस्तार से वर्णन किया है।

रहस्य-भावों की अभिव्यक्ति भी सूर ने बड़ी कुशलता से की है। माया का वर्णन करते हुए सूर कहते हैं—

‘माधव जू, यह मेरी इक गाइ ।

अब आजु तें आपु आगें दई, लै आइयें चराइ ॥

अति हरहाई हटकतहं, बहुत अमारग जाति ।

फिरति बेद बन ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति ॥’

अर्थात् हे माधव । मेरी एक गाय है जिसे मैं आपके आगे कर रहा हूँ । इन्हें आप चराकर ले आइये । यह बहुत हरियल (उद्धत) है और मेरे बहुत रोकने पर भी यह अपना मार्ग छोड़कर कुमार्ग पर ही जाती है । यह सदा वेद-रूपी मधुर वन व उजाड़ती हुई फिरती रहती है ।

यह गाय वास्तव में माया है, जो व्यक्ति के वश में कभी नहीं आती, वरन् उस ही अपने नियंत्रण में सदैव रखती है । केवल ब्रह्म-शक्ति या ब्रह्म-अनुग्रह से ही उस छुटकारा पाया जा सकता है । इसी प्रकार, मूर ने विषयामक्त जीवात्मा को उस बँधी की संज्ञा दी है जो सांसारिक विषयों का उपभोग करता हुआ स्वच्छन्द विचरता है—

‘भगति बिनु बँल बिराने ह्वै ही ।

पाउँ चारि सिर सृंग गुंगमुख, तब कैसे गुन गँहो ॥

चारि पहिरि दिन परत फिरत बन, तऊ न पेट अघँहो ।

टेढ़ कंधर फूटी नाकनि, कोसौ धौ भुस लँहो ॥’

मूर ने कतिपय काव्यशास्त्रीय उपादानों का भी विवेचन किया है । २ लक्षण-लक्ष्य रूप में नहीं, केवल लक्ष्य रूप में है ; अर्थात् इन्होंने लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिये हैं । यथा—

‘राधे कियो कौन सुभाव ।

प्रानपति बेदन बिभूषित सुन्य गुन चित चाव ॥

मानसरबासी सुधागृह ते न निकसन पाव ।

रजनिचर गुन जानि दधिसुत धरन रिपु हित चाव ॥

रजनिचर हित भच्छ सौ तन सरस दीपत आव ।

सूरदास सुजान सुकिया अघट उपमा गाव ॥’

इस पद में ‘सुकिया’ (स्वकीया) नायिका और ‘अघट उपमा’ (पूर्णपमा) अलंकार है । चूँकि यहाँ राधा की अपने प्रियतम के प्रति प्रबल अनुरक्ति वर्णित इसलिए स्वकीया नायिका है । इस वर्णन के आधार पर स्वकीया नायिका का लक्षण निकलता है—जो विवाहिता नायिका अपने प्रियतम में अनुरक्त रहती है, स्वकीया नायिका कहते हैं । रजनिचर-हित-भच्छ सौ तन सरस दीपत आव’ में उपमेय, कनक (रजनिचर-हित-भच्छ) उपमान, सौ वाचक शब्द और दीपत साधा धर्म है । उपमा के चारों अंगों का कथन होने से यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है । ३ पूर्णोपमा का लक्षण यह हुआ—जहाँ उपमा के चारों अंगों का कथन हो, वहाँ पूर्णोपमा अलंकार होता है । इस पद्धति से सूरदास ने साहित्यलहरी में निम्नलिखित काव्यशास्त्रीय उपादानों का विवेचन किया है :

१. नायिका-भेद—स्वकीया, अज्ञातयौवना, ज्ञात यौवना, मध्या, प्रौढा, धी कनिष्ठा-ज्येष्ठा, परकीया, अनुद्धा, गुप्ता, वचनविदग्धा, क्रियाविदग्धा, लक्षिता, मुदि अनुशयाना, अन्यसम्भोगदुखिता, गर्विता, कलहातरिता, मानवती, प्रोप्यतपति

खंडिता, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, गच्छत्पतिका, आगत्पतिका ।

२. अलंकार-भेद—पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, रूपक, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, छेकापन्हृति, शुद्धापन्हृति, सूक्ष्म, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, आवृत्तिदीपक, पर्यायोक्ति, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिपरांकुर, अप्रस्तुतप्रशंसा, रत्नावली, पर्याय, व्याघात, व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असम्भव, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, अन्यान्य, विशेष, कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार, यथासंख्य, परिसंख्या, संदेह, समुच्चय, कारकदीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति, काव्यलिंग, अर्थांतरन्यास, प्रौढोक्ति, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहर्षण, विषादन, उल्लास, अनुज्ञा, उल्लेख, मुद्रा, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अद्भुत, मीलित, उन्मीलित, सामान्य, विशेष, गूढोत्तर, चित्र, सूक्ष्म, पिहित, व्याजोक्ति, गूढोक्ति, चिह्नोक्ति, मुक्ति, लोकोक्ति, वक्रोक्ति, छेकोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, अत्युक्ति, उदात्त, प्रतिषेध, निरुक्ति, विधि, हेतु, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वित्, समाहित, समृष्टि, सकर ।

३. व्यभिचारीभाव-भेद—निर्वेद, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मरण, ब्रीडा, चपलता, हर्ष, निद्रा, विवोध, अमर्ष, अवहित्था, औत्सुक्य, अपस्मार, स्वप्न, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास, वितर्क के नामो का कथन है और ग्लानि, धृति, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, उग्रता के नामो का उल्लेख नहीं है ।

४. रस-भेद—शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शात ।

५. भाव-भेद—रति-भाव (पुत्र-विषयक, देव-विषयक, गुरु-विषयक), भावसधि, भावशवलता, भावोदय, भावशांति ।

६. शब्दशक्ति-भेद—वाचक, वाच्य, लक्षणा ।

इस विस्तृत नामावली को देखकर यह तो असंदिग्ध शब्दों में कहा जा सकता है कि सूर ने काव्यशास्त्र के पर्याप्त क्षेत्र का समाहार किया है, पर यह भी कहा जा सकता है कि इस विवेचन में अपेक्षित गाम्भीर्य एवं व्यवस्था का अभाव है ।

काव्य-कला

किसी भी कवि के काव्य की कला का विवेचन करने के लिए उसे दो वर्गों में विभाजित किया जाता है—अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष । इन्हें ही क्रमशः भावपक्ष और कलापक्ष कहते हैं । अनुभूति पक्ष के अंतर्गत काव्य का वर्ण्य-विषय और अभिव्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत वर्ण्य-विषय को व्यक्त करने वाले साधन भाषा आदि आते हैं ।

सूर के इस काव्य के वर्ण्य-विषय का विवेचन ऊपर किया जा चुका है, जिससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि सूर के वर्ण्य विषय की सीमा पर्याप्त सीमित है, पर इस सीमित

सीमा मे भी इन्होंने अपने वर्ण्य-विषयो का—विशेषतः शृङ्गार और वात्सल्य का— इतना सांगोपांग वर्णन किया है कि वह परवर्ती कवियों के लिए उच्छिष्ट मात्र रह गया है। इनके कूटो को पढ़कर यह धारणा निर्मूल हो जाती है कि कूटकाव्य मे या तो केवल शब्द-कौशलजन्य विलम्बता होती है, या केवल चमत्कार। सूर ने सौन्दर्यानु-भूति और कल्पना-शक्ति के द्वारा जो रहस्यात्मक या शृङ्गारिक चित्र प्रस्तुत किये है, वे अपनी भावमयता के कारण बहुत ही प्रभावशाली बन गये है। यथा—

‘चकई री चलि चरन सरोवर जहाँ न प्रेम बियोग।

निसि-दिन राम नाम की बरखा भय खज नहिं दुख सोग ॥

जहाँ सनक से मीन हस सिव मुनि जन रवि नख प्रभा प्रकास।

प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर राजत निगम सुबास ॥

जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताहल सुकृत अमृत रस पीजे।

सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम इहाँ कहा रहि कीजे ॥’

इस पद का अर्थ है—हे चकवी-रूपी आत्मा ? परमात्मा के चरण-रूपी उस सरोवर पर चल जहाँ कभी प्रेम का वियोग नहीं होता; जहाँ सदा राम-नाम की वर्षा होती रहती है; जहाँ किसी प्रकार का भय, रोग, दुख और शोक नहीं रहता, जहाँ सनक-सनन्दन-रूपी मत्स्य, शिव-रूपी हंस और ऋषि-मुनि-रूपी सूर्य का प्रकाश रहता है; जहाँ सदा भक्तों के हृदय-रूपी कमल खिले रहते हैं, जिन्हें मांमारिक विषय-रूपी चंद्रमा का कभी भय नहीं रहता और जहाँ वेद-रूपी सुगंधि सदा सुवासित होती रहती है। उस सरोवर मे मुक्ति-रूपी मोती तथा पुण्य-रूपी अमृत-रस भी है। हे सूर्य चकवी-रूपी आत्मा ! ऐसे सुन्दर सरोवर को छोड़कर यहाँ रहने से तुझे क्या लाभ होगा ?

इस पद मे रूपक अलंकार के द्वारा परमात्मा की महत्ता का तथा सगर की असारता का बड़े ही प्रभावशाली ढंग से वर्णन है। इसी प्रकार—

‘सारंग, सारंगधरहिं मिलावहु।

सारंग विनय करति सारंग सौ सारंग दुख बिसरावहु ॥

सारंग-समय दहति अति सारंग, सारंग तिनहिं दिखावहु।

सारंग-गति सारंग-घर जे हैं, सारंग जाइ मनावहु ॥

सारंग-चरन, सुभग कर-सारंग, सारंग नाम बुलावहु।

सूरदास सारंग उपकारिनि, सारंग मरत जियावहु ॥’

यह पद भी भावपूर्ण है। विरहिणी नायिका अपनी सखी से विनय कर रही है कि वह कृष्ण को लाकर उससे मिलादे ताकि उसका विरह-दुख समाप्त हो जाये और वह मरने से बच जाये। ‘सारंग नाम बुलावहु’ में ‘सारंग’ विशेष्य तथा ‘सारंग उपकारिनि’ में ‘उपकारिनि’ विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से वक्तव्य की भावमयता और भी

प्रभावशाली बन गई है। लेकिन कहीं-कहीं भावमयता की अपेक्षा शब्द-कौशल एवं क्लिष्टता की प्रधानता है। यथा—

‘जल-सुत-प्रीतम-सुत-रिपु-बंधव-आयुध आनन बिलख भयौ री ।
मेरु-सुता-पति बसत जु माथे, कोटि प्रकास नसाइ गयौ री ॥
मास्त-सुत-पति-अरि-पुर-बासी-पितु-बाहन, भोजन न सुहाई ।
हर-सुत-वाहन असन-सनेही, भानहुँ अनल देह दौ लाई ॥
उदधि-सुता-पति ताकर बाहन ता बाहन कसै समुझाये ।
सूर स्याम मिलि धर्म-सुवन-रिपु ता अवतारहिं सलिल बहावै ॥’

इस पद में दूनी नायिका से नायक की विरह-दशा का वर्णन करके नायिका को उसके प्रति प्रेरित करने का प्रयास कर रही है। यहाँ लम्बे-लम्बे शब्द-समूहों के कारण पद के अर्थ में क्लिष्टता आ गई है। पर यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कूटकाव्य में क्लिष्टता का आ जाना स्वाभाविक ही है।

अनुभूति-पक्ष की भाँति सूर्य का अभिव्यक्ति-पक्ष भी समृद्ध है; अर्थात्, इनकी भाषा में वे सभी गुण हैं जो किसी सफ़ल कूटकाव्य की भाषा के लिए अपेक्षित होते हैं। कूटकाव्य की भाषा में शब्द-कौशल की प्रधानता होती है, अतः यहाँ पर सूर के शब्द-कौशल पर ही विचार करना युक्तिसंगत होगा।

सूर के कूट-पदों की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रचुर शब्द-सम्पत्ति और शब्दों का समुचित चयन है। ये शब्द जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से लिये गये हैं और उनका प्रयोग इन्होंने अत्यंत कौशल से किया है। वस्तव्य की गूढार्थता के लिए कही तो एक ही शब्द का अनेक व्यापक अर्थों में, कही पर्याय-रूप में, कही यौगिक शब्दों की रचना के रूप में सूर ने प्रयोग किया है।

१. एक ही शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग—सूर ने अपने अभीष्टार्थों को गूढ़ बनाने के लिए एक शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए ‘सारंग’ और ‘हरि’ शब्द लिये जा सकते हैं। ‘सारंग’ शब्द का प्रयोग सूर ने इन अर्थों में किया है—आकाश, हाथी, मेघ, सरोवर, जल, खटवाग, स्वर्ग, धनुष, वस्त्र, घूँघट, नेत्र, कमल, आनन्दमय, सरस, केलि, चंद्र, रात्रि, कृष्ण, राधा, राखी, नारी, दम्पति, दीपक, भ्रमर, सर्प, विष्णु, सूर्य, कामदेव, स्वर्ण, हंस, केश, चक्रवाक, शङ्ख, शोभा, भूषण खंजन, कोकिल, विद्युत्, बाज, वीणा, एकराग, पर्वत, कुरंग, सिंह, नदी, अमृत, समुद्र, दिन-रात, पद्मिनी-नायिका। इसी प्रकार ‘हरि’ शब्द का प्रयोग भी सूर ने इन अर्थों में किया है—कृष्ण, सिंह, सूर्य, कवि, इन्द्र, मयूर, मेघ, पवन, हाथी, कामदेव आदि।

२. पर्याय रूप में प्रयोग—अनेक शब्दों का सूर ने पर्याय-रूप में प्रयोग किया है। ‘शिव’ के लिए सूर ने पर्यायों की रचना की है—कुसुमशर-रिपु, गिरिसुता-पति, मेरुसुता-पति, गिरितनया-पति, शिखरबंधु, सारंगरिपु ता पति रिपु वा रिपु, अलिवाहन रिपुवाहन, मास्तसुतपतिरिपुपति, भूमिधरआदिपिता, सिंधुसुतधर,

आदि । इसी प्रकार 'कामदेव' के लिए सूर ने इन पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है—मेग्गुनापति, ताके पतिसुत, हरिसुत, सिखवधुअरि, गिरिजापतिरिपु, हरिसुतमुत, जलसुतमुत ताको गिपुपति-मुत, कालनेमिरिपु ताको रिपु, उपमापतिरिपु, सारंगरिपु ता पति रिपु वा रिपु ता रिपु, भूमिधर-आदि-पिता-बैरी, सिधुसुतधरसुहितमुत, भूषन-पितुपितुसेनापतिपितु ना आरि । 'कृष्ण' के पर्याय-रूप में इन शब्दों का प्रयोग सूर ने किया है—मारगपति, गिरिसुत तिन पति, विजयमना, पारथमित्र, रविमारथी-महोदर ना पति, दग्गिपति, मेरसुतापति ताके पति, वाग्जिमुतपति, भूमिभवारिपु, गोपतिमुत, दादुरिपुगिपुपति, पच्छिराज मु नाथ आदि ।

३. यौगिक शब्द—कुछ यौगिक शब्दों की रचना भी सूरदास ने की है यथा—हरिभख, हरिरिपु, हरिसुत, हरिदवन, हरिवाहन, छायापति, मारगसुन आदि ।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शब्द-भोजन की दृष्टि से सूर की भाषा बहुत ही समृद्ध है ।

शब्द-संयोजना के अतिरिक्त अलंकार-योजना भी भाषा की समृद्धि में महती सहायक होती है । सूर ने कूटकाव्य की रचना में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही सफल प्रयोग किया है । शब्दालंकारों में यमक का अधिक प्रयोग है जो कवि के काव्य-कौशल का परिचायक है । यथा—

‘पदमिनी सारंग एक मँझारि ।

आपहि सारंग नाम कहावे, सारंग बरनी बारि ॥

तामैं एक छबीलौ सारंग, अथ सारंग उनहारि ।

अथ सारंग पर सकलइ सारंग अथ सारंग विचारि ॥

तामैं सारंग-सुत सोभित है, ठाढ़ी सारंग भारि ।

सूरदास प्रभु तुमहं सारंग, बनी छबीलौ नारि ॥’

यहाँ ‘सारंग’ शब्द की अनेकार्थी आवृत्ति होने से यमक शब्दालंकार है ।

और—

‘राधे, दधि-सुत क्यों न दुरावति ।

हौं जु करति वृषभानु-नंदिनी, काहें जीव सतावति ॥

जल-सुत दुखी, दुखी हैं मधुकर, द्वं पंछी दुख पावत ।

सारंग दुखी होत बिनु सारंग, तोहि दया नहि आवत ॥

सारंग-रिपु की नेक ओट करि, जौ सारंग मुख पावत ।

सूरदास सारंग किहि कारन, सारंग-कुलहि लजावत ॥’

इस पद में तुल्ययोगिता, अर्थान्तरन्यास, सम आदि अर्थालंकारों का भावोत्कर्षक प्रयोग है ।

अतः कहा जा सकता है कि काव्यकला की दृष्टि से भी सूर का कूटकाव्य उत्कृष्ट एवं सफल है। सूर के कूटकाव्य की विशेषताओं को देखते हुए यह कहना अयुक्त न होगा कि हिन्दी-कूटकाव्य के इतिहास में सूर का अद्वितीय स्थान है। इससे पूर्व भी किसी हिन्दी-कवि ने इतने समृद्ध कूटकाव्य की रचना नहीं की और इनके बाद भी कोई इस दिशा में इनकी बराबरी भी न कर सका।

सूरसागर के कूट

: १ :

राग सारंग

हरें बलबीर बिना को पीर ?

सारंगपति प्रगटे सारंग तें, जानि दीन पर भीर ॥

सारंग बिकल भयो सारंग मैं, सारंग तुल्य सरीर ।

पर्यो काल सारंग-बासी सों, राखि लियो बलबीर ॥

सारंग इक सारंग ह्वै लौट्यो, सारंग ही के तीर ।

सारंगपानि राय ता ऊपर, गए परीच्छित कीर ॥

गहैं दुष्ट द्रुपदी को सारंग, नैननि बरसत नीर ।

सूरदास प्रभु अधिक कृपा तें, सारंग भयो गँभीर ॥३३॥

शब्दार्थ—बलबीर=कृष्ण । पीर=पीड़ा, दुःख । सारंगपति=कृष्ण । मारंग तें=आकाश से । सारंग बिकल भयो=हाथी दुखी हुआ । सारंग मैं=सरोवर में । सारंग तुल्य=बादल के समान । सारंग-बासी सौ=सरोवर-निवासी से, ग्राह से । सारंग=भ्रमर, जिसे षटपद भी कहते हैं अतः यहाँ इसका अर्थ है षट्पाँव अर्थात् षट्वांग नामक राजा । सारंग ह्वै=स्वर्ग से । सारंग ही के=सरोवर ही के । सारंगपानि=धनुर्धारी । राय=राजा । कीर=शुक अर्थात् शुकदेव । सारंग=साड़ी । गँभीर=विस्तृत, अपार ।

प्रसंग—सूरदास अपने आराध्यदेव कृष्ण की भक्तवत्सलता का वर्णन कर रहे हैं ।

अर्थ—कृष्ण के बिना कौन दुःख को मिटाने वाला है ? अपने भक्त पर विपत्ति जानकर कृष्ण आकाश से प्रकट हो जाते हैं । बादल के समान (श्याम) शरीर वाला हाथी जब ग्राह से पकड़ा जाकर तथा अपनी मृत्यु सन्निकट जानकर सरोवर में दुखी हुआ तो कृष्ण ने ही (तुरत) उसके प्राणों की रक्षा की । राजा षट्वांग स्वर्ग से लौटकर सरोवर के ही किनारे आ गये । धनुर्धारी राजा परीक्षित (कृष्ण की कृपा से ही) शुकदेव की शरण में गये । जब दुष्ट (दुःशासन) ने द्रौपदी की साड़ी पकड़ी तो (निर्वसना होने के भय से) उसके नेत्रों से आँसू बरसने लगे । सूरदास कहते हैं कि प्रभु (कृष्ण) की असीम कृपा से ही (द्रौपदी की) साड़ी अपार हो गई ।

विशेष—इस पद में चार अतर्कथाएँ हैं :

१. सारंग बिकल भयौ.....लियौ बलबीर—श्रीमद्भागवत में कृष्ण की भक्त-वत्सलता के विषय में अनेक कथाएँ कही गई हैं जिनमें से एक कथा 'गजेन्द्र-मोक्ष' है। इस कथा में बताया गया है कि एक हाथी जब सरोवर में प्रविष्ट होकर अपनी हथिनियों के साथ आनन्द-क्रीड़ा कर रहा था, तभी एक ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया और उसे पानी में खींचने लगा। हाथी अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी ग्राह को पराजित न कर सका। अपने प्राणों को संकट में देखकर उसने अपनी सूँड़ में एक कमल लेकर भगवान् कृष्ण को अर्पित किया और उनसे अपनी सहायता की प्रार्थना की। कृष्ण तुरत वहाँ प्रकट हुए। उन्होंने ग्राह को मारकर हाथी के प्राणों की रक्षा की। इस कथा का कृष्ण-भक्त-कवियों ने बहुत ही उल्लेख किया है।

२. सारंग इक सारंग ह्वै लोट्यो सारंग ही के तीर—'सूरसागर' के प्रथम स्कंध में राजा पट्वांग की कथा का उल्लेख करते हुए सूरदास ने बताया है कि राजा पट्वांग बहुत ही प्रतापशाली थे। जब देवों का असुरों से युद्ध हुआ तो इन्द्र इन्हें अपनी सहायता के लिए स्वर्ग ले गये। इन्हें देखते ही सारंग असुर डरकर भाग गये। तब इन्द्र ने इन्हे वरदान माँगने के लिए कहा। इन्हें इन्द्र द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि इनकी आयु केवल दो मुहूर्त की ही रह गई है। तब इन्होंने हरि-भक्ति का वर माँगा। एक मुहूर्त तो इन्हे स्वर्ग से पृथ्वी पर आने लगा और एक मुहूर्त में ही कृष्ण की भक्ति करके ये परमलोक को गये।

३. सारंगपानि राय ता ऊपर गए परीच्छत कीर—सूरदास ने 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध में इस कथा का भी उल्लेख करते हुए बताया है कि अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित बड़े ही कुशल एवं योग्य राजा थे। इनके राज्य में प्रजा सब प्रकार से सुखी थी। एक दिन जब ये भ्रमण करते हुए कुर्क्षेत्र में पहुँचे तो इन्होंने एक गाय और एक बैल को बहुत ही दुखी देखा। बैल केवल एक ही चरण पर खड़ा था। उसके तीन चरण नष्ट हो गये थे। यह बैल धर्म था और गाय पृथ्वी थी। इसी बीच एक शूद्रराज, जो कलियुग था, वहाँ आया और बैल तथा गाय को खदेड़कर ले चला। यह देखकर परीक्षित ने उसे मारने के लिए अपनी तलवार उठाई। भयभीत होकर शूद्रराज (कलियुग) ने अपना परिचय देते हुए अपने लिए निवाम-स्थान पूछा। राजा परीक्षित ने उसे क्षमा करके छोड़ दिया और उसके निवाम के लिए ये स्थान बताये—हरि-विमुख, वेश्या, मुरापान, बधिकों का गृह और जुआरी। तब कलियुग ने कहा कि हे महाराज ! मुझे केवल एक ही वह स्थान बता दीजिये जिसमें इन पाँचों स्थानों का समावेश हो जाये। राजा ने तब उसे सोना (कनक) बता दिया। यह सुनकर कलियुग राजा के मुकुट में, क्योंकि वह सोने का था, प्रवेश कर गया। कलियुग के प्रभाव से राजा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई।

एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया। प्यास से व्याकुल होकर पानी की खोज करता हुआ वह एक ऋषि के आश्रम पर पहुँचा। उसने ऋषि से पीने के लिए

पानी माँगा, पर ऋषि तो समाधि लगाये हुए थे। वे कुछ न बोले। राजा ने इसे अपना अपमान समझा और एक मरा हुआ साँप ऋषि के गले में डालकर वहाँ से चला गया। जब ऋषि-पुत्र वहाँ आया तो क्रुद्ध होकर बोला, जिस व्यक्ति ने यह साँप मेरे पिता के गले में डाला है, एक सप्ताह पश्चात् यह साँप जीवित होकर उसी व्यक्ति को डस लेगा। जब ऋषि ने समाधि खोली और उन्हें यह समाचार मिला तो उन्होंने दुःख-सहित यह सूचना राजा परीक्षित को भिजवा दी। अपनी आयु केवल सात दिन की शेष जानकर वे शुकदेव की शरण में गये। शुकदेव ने उन्हें हरि-भक्ति का रहस्य बताया। तदनुसार, राजा परीक्षित हरि-भक्ति में लग गये और उसके प्रभाव से स्वर्गलोक-प्राप्ति हुई।

४. गहँ दुष्ट द्रुपदी.....सारंग भयो गम्भीर—राजा युधिष्ठिर अपना सर्वस्व हारकर प्रत में जुए में द्रौपदी को भी हार गये। द्रौपदी पर अपना अधिकार जानकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। अपने अपमान का बदला द्रौपदी से लेने के लिए उसने अपने भाई दुःशासन को आज्ञा दी कि वह द्रौपदी को, जिस अवस्था में भी वह हो, खींचकर दरबार में ले आये। दुःशासन ने ऐसा ही किया। जब द्रौपदी दरबार में लाई गई तो वह केवल एक साड़ी पहने हुए थी। दुर्योधन ने दुःशासन को फिर आज्ञा दी कि 'भरे दरबार में ही द्रौपदी को नगी कर दिया जाए। दुःशासन बलात् उसकी साड़ी खींचने लगा। अपनी लज्जा को बचाने के लिए, और कोई उपाय न देखकर, द्रौपदी ने कृष्ण का स्मरण किया। कृष्ण की कृपा से वह साड़ी इतनी बड़ी हो गई कि दुःशासन उसे खींचते-खींचते थक गया, पर उसका छोर न आया। इस प्रकार कृष्ण ने द्रौपदी की ताज बचा ली।

रस—शांत रस।

अलंकार—१. 'हरै बलवीर बिना.....पर भीर' में सामान्य का विशेष वाक्य से समर्थन होने के कारण अर्थातिरन्यास अलंकार।

२. कृष्ण की भक्ति-वत्सलता को सिद्ध करनेके लिए 'सारंग विकल भयो · सारंग भयो गम्भीर' तक अनेक उदाहरण दिये गये हैं। अतः उदाहरण अलंकार।

३. 'सारंग' शब्द की अनेकार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

: २ :

राग बिलावल

जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ।

खगपति-अरि डर, असुरनि संका, बासर-पति आनन्द कियौ॥

बिडुखि सिंधु सकुचति, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ।

अति अनुराग संग कमला-तन, प्रफुलित अंग न समात हियौ॥

एकनि दुख, एकनि मुख उपजत, ऐसी कौन बिनोद कियौ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे गहत ही, एक एक तैं होत बियौ॥७६१॥

शब्दार्थ—दधि-रिपु=दही का शत्रु अर्थात् रई । खगपति-अरि=गरुड़ का शत्रु अर्थात् सर्प, यहाँ वासुकी से तात्पर्य है जिसे समुद्र-मंथन के समय नेती बनाया गया था । बासर-पति=दिन का स्वामी अर्थात् सूर्य । कमला-तन=लक्ष्मी का शरीर । बियौ=पृथक्, अलग ।

प्रसंग—कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन है ।

अर्थ—जब कृष्ण ने (दही या मक्खन खाने के लिए) रई अपने हाथ में ली तो वासुकी डर गया । (समुद्र-मथन के समय मंदराचल की रई और वासुकी की नेती बनाई गई थी । उस समय वासुकी को बहुत कष्ट हुआ था । कही दोबारा वह कष्ट सहने का अवसर न आ जाये, यह सोचकर वासुकी डर गया ।) राक्षसों को शंका हुई । (समुद्र-मथन के समय जो वस्तुएँ समुद्र से निकली थी, उनमें अमृत भी था । ब्रह्मा ने छल से सारा अमृत देवताओं को पिला दिया था । अतः दोबारा छले जाने की शंका असुरों के मन में उत्पन्न हुई ।) सूर्य को आनंद हुआ (क्योंकि उसने सोचा कि राहु अब उसे न ग्रस सकेगा ।) समुद्र दुख और संकोच से भर गया । (समुद्र ने सोचा कि यदि दोबारा उसका मंथन हुआ तो उसे मंथन का फिर कष्ट भोगना पड़ेगा, इस कारण उसे दुख हुआ और संकोच इसलिए हुआ कि अब उसके पास देने के लिए कुछ नहीं रह गया है, क्योंकि श्री, मणि, रम्भा आदि रत्नों को तो वह पहले ही दे चुका है ।) शिव मोच में पड़ गये कि अब वे फिर विष आदि को किस प्रकार पी सकेंगे । (यह सोचकर कि अब वह विष्णु के पास पहुँच जायेगी ।) अत्यन्त प्रेम के कारण लक्ष्मी का शरीर प्रसन्न हुआ और वह फूले अंग न समाई । (कृष्ण की इस लीला से) किसी को दुख हुआ और किसी को सुख । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु ! आपका यह विनोद भी कितना विचित्र है, क्योंकि जैसे ही आपने रई पकड़ी, सब एक-दूसरे से पृथक् हो गये; अर्थात् सब अपने मुख-दुख की बात सोचने लगे ।

विशेष—१. मथन से जो चौदह वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं, वे ये हैं—

‘श्री, मनि, रम्भा, बारुनी, अमिय, संख, गजराज ।

धनु, धन्वतरि, धेनु, ससि, कल्पद्रुम, बिष, बाज ॥’

२. **खगपति-अरि-डर**—महाभारत के ‘आदि पर्व’ में एक कथा है—कश्यप ऋषि की विनता और कद्रू नाम की दो पत्नियाँ थी । एक दिन उनमें ‘सूर्य के घोड़ों का रंग कैसा है’ इस विषय को लेकर विवाद छिड़ गया । विनता ने श्वेत और कद्रू ने काला बताया । उन दोनों में यह शर्त भी लग गई कि जो हारेगी उसे ही दूसरी की आजीवन दासी बनना होगा । सूर्य के घोड़े थे तो श्वेत, पर अपनी माता को विजयी बनाने के लिए कद्रू के पुत्र सर्प उनके चारों ओर लिपट गये जिससे वे काले दिखाई दिये । फलतः विनता कद्रू की दासी हो गई । जब विनता से गरुड़ का जन्म हुआ तो उन्हें इस छल का पता चला । अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने सर्पों को खाना प्रारम्भ कर दिया । तभी से गरुड़ और सर्पों में शत्रु-भाव चला आ रहा है ।

३. असुरनि-संका—समुद्र-मंथन से जो चौदह रत्न प्राप्त हुए उनमें एक अमृत-घट भी था । देवताओं को यह चिन्ता हुई कि यदि असुरों ने अमृत पी लिया तो वे अमर और अजेय बन जायेंगे । इसलिए ब्रह्मा ने मोहिनी का रूप धारण करके छल से सारा अमृत देवताओं को ही पिला दिया । बेचारे असुरों को उसकी एक वूँद भी न मिली ।

रस—वात्सल्य रस ।

अलंकार—१. कृष्ण के हाथ में रई देखकर देवताओं तथा असुरों को समुद्र मंथन की स्मृति आ गई । अतः सदृश वस्तु को देखकर सदृश वस्तु की स्मृति हो आने का वर्णन होने से स्मृति अलंकार ।

२. ज्योंही कृष्ण ने हाथ में रई उठाई, देवताओं और असुरों को समुद्र-मंथन का कार्य याद आ गया । अतः कार्य और कारण का एक ही काल में वर्णन होने से अक्रमातिशयोक्ति अलंकार ।

३. समुद्र-मंथन के विषय में वाम्की, असुर, सूर्य आदि की प्रतिक्रियाएँ भिन्न हैं । अतः ज्ञाताओं के भेद के कारण एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से उल्लेख किये जाने के कारण उल्लेख (प्रथम) अलंकार ।

: ३ :

राग बिलावल

देखो माई दधि-सुत में दधि जात ।

एक अचम्भो देखि सखी रो, रिपु में रिपु जु समात ॥

दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात ।

यह सोभा देखत पसु-पालक, फूले अंग न समात ॥

बारम्बार बिलोकि सोचि चित, नंद महर मुसुक्यात ।

यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात ॥७६०॥

शब्दार्थ—दधि-सुत = (१) उदधि (समुद्र) का पुत्र अर्थात् चंद्रमा; (२) चंद्रमा के समान सुन्दर मुख । दधि = (१) उदधि (समुद्र) (२) दही । रिपु मैं रिपु जु समात = (१) चंद्रमा राहु को ग्रस रहा है, (२) हाथ में दही लेकर मुख में डाल रहे हैं । कीर = तोता (नासिका) । पंकज - कमल (नेत्र) । द्वै पात = दो पत्ते [दो कान] । पसु-पालक = ग्वाल ।

प्रसंग—कृष्ण हाथ में लेकर दही खा रहे हैं । उनकी इस क्रिया का तथा उनके शारीरिक सौंदर्य का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

प्रथम अर्थ—हे सखि ! देखो, चंद्रमा में समुद्र समा रहा है । हे सखि ! एक अचम्भे की बात और देखो, चंद्रमा राहु को ग्रस रहा है । दही पर तोता, तोते पर कमल और कमल के दो पत्ते हैं । कृष्ण की इस शोभा को देखकर ग्वाल फूले अंग

नहीं समाते । नंद उनके सौंदर्य को बार-बार देखकर और उसका मन में विचार करके मुस्करा रहे हैं । कृष्ण के इसी रूप का ध्यान मन में आते ही सूरदास उस पर बलिहारी जाते हैं ।

द्वितीय अर्थ—हे सखि ! देखो, कृष्ण के चंद्रमा के समान सुन्दर मुख में दही समा रही है; अर्थात् वे दही खा रहे हैं । हे सखि ! एक आनंद की बात यह भी देखो कि वे हाथ में दही लेकर अपने मुख में खा रहे हैं । उनके दधि युक्त मुख पर तोते की चंचु-जैसी सुन्दर नासिका है, नासिका पर कमल के समान सुन्दर नेत्र है, कमल के दो खिले हुए पत्तों के समान सुन्दर उनके दोनों कान हैं । कृष्ण की इस शोभा को देखकर ग्वाले फूले अंग नहीं समाते । नंद उनके सौंदर्य को बार-बार देखकर और उसका अपने मन में विचार करके आनंदित होकर मुस्करा रहे हैं । कृष्ण के इसी रूप का ध्यान मन में आते ही सूरदास उस पर बलिहारी जाते हैं ।

विशेष—चंद्रमा की उत्पत्ति समुद्र से मानी गई है, अतः यदि चंद्रमा समुद्र में समा जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आश्चर्य तो यही है कि समुद्र चंद्रमा में समा रहा है और राहु को चंद्रमा ग्रस रहा है ।

रस—वात्सल्य रस ।

अलंकार—१. 'दधि-सुत में दधि जात' में अनेकार्थवाची शब्दों का प्रयोग होने से श्लेष अलंकार ।

२. 'दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात' में केवल उपमानों का ही कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

: ४ :

धराग नाथी

दधि-सुत जामे नंद दुवार ।

निरखि नैन अरुइयौ मनमोहन, रटत देहु कर बारम्बार ॥

दीरघ मोल कह्यो ब्योपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार ।

कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुहार ॥

गोकुलनाथ बए जसुमति के आंगन भीतर, भवन मेंभार ।

साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फरत न लागी बार ॥

जानत नहीं मरम सुर नर मुनि, ब्रह्मादिक नहिं परत बिचार ।

सूरदास प्रभु की यह लीला, ब्रज-बनिता पहिरे गुहि हार ॥७६॥

शब्दार्थ—दधि-सुत = (१) उदधि-सुत अर्थात् मुक्ता; (२) मुक्ति देने वाले पुरुष । निरखि = देखकर । नैन अरुइयौ = नेत्र उलझ गये, मोहित हो गये । दीरघ = अधिक । परम सुहार = अत्यधिक सुन्दर । गोकुलनाथ = कृष्ण । बए = बो दिये । जल मेलत = पानी देते ही । बार = देरी । गुहि हार = हार बनाकर ।

प्रसंग—कृष्ण की लीला का वर्णन है ।

प्रथम अर्थ—नन्द के द्वार पर मुक्ता का व्यापारी आया । उसके मुक्ता को देखकर कृष्ण उस पर मोहित हो गये और उसे लेने की बार-बार हठ करने लगे । व्यापारी ने उस मुक्ता का मूल्य अधिक बताया जिसे सुनकर देखने वाले सभी मनुष्य ठगे-से रह गये । कृष्ण ने उस मुक्ता को अपने हाथ में ले लिया और उस अत्यन्त सुन्दर मुक्ता को उन्होंने (माँगने पर भी व्यापारियों को वापिस) नहीं दिया । कृष्ण ने उसे यशोदा के भवन के भीतर आँगन में वो दिया । पानी देते ही उममें शाखाएँ फूट पड़ी और पत्ते निकल आये । उसे फलते-फूलते भी देर नहीं लगी । जिस मुक्ता का रहस्य देवता, मनुष्य और मुनि भी नहीं जानते, जो ब्रह्मा आदि महादेवों की विचार-सीमा से भी बाहर है, सूरदास कहते हैं कि यह प्रभु कृष्ण की ही लीला है कि उसी मुक्ता का हार बनाकर ब्रज की नारियाँ उसे पहनती हैं ।

द्वितीय अर्थ—नन्द के द्वारे मुक्ति देने वाला — मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है, इसका रहस्य बताने वाला—पुरुष आया । उसकी बातें कृष्ण को अच्छी लगें और वह उसे स्वयं को समर्पित करने की हठ करने लगे । जब उस व्यक्ति से मुक्ति का साधन-रूपी मूल्य पूछा गया तो उसने योग, समाधि आदि-मूल्य बताया जिसे सुनकर ब्रजवासी दंग रह गये, क्योंकि उनका इन साधनों से परिचय नहीं था । तब कृष्ण ने मुक्ति का अधिकार अपने हाथ में ले लिया और उस व्यक्ति को वापिस नहीं दिया । कहने का भाव यह है कि केवल कृष्ण में ही मुक्ति-प्रदान करने की शक्ति है । उस मुक्ति का क्षेत्र उन्होंने यशोदा का आँगन बना दिया जो भक्ति का पानी मिलते ही पल्लवित एवं पुष्पित हो गई । जिस मुक्ति के रहस्य को सुर, नर, मुनि और ब्रह्मा आदि महादेव भी नहीं समझ पाते, वही मुक्ति कृष्ण ने ब्रज की नारियों के लिए भी सुलभ बना दी ।

विशेष—‘ज्ञान पर भक्ति की विजय’ यह मान्यता कृष्ण-भक्तों की रही है । कृष्ण-साहित्य का अमर-प्रसंग इसी मान्यता का प्रतिपादन करता है । सूर ने भी इस पद में प्रकारांतर से यही प्रतिपादित किया है कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए वैराग्य लेकर योग-साधना करने की आवश्यकता नहीं है । यदि कृष्ण भगवान् का अनुग्रह प्राप्त हो जाये—जो उनकी भक्ति से मिलता है—तो मुक्ति सहज ही मिल जाती है । कहने का भाव यह है कि मुक्ति प्राप्त करने का साधन ज्ञान नहीं, भक्ति है ।

रस—शांत रस ।

अलंकार—१. भंग्यंतर ने अभीष्टार्थ का वर्णन होने से पर्यायोक्ति अलंकार ।

२. ‘साखा-पत्र भए जल मेलत’ में कारण और कार्य का एक साथ, एक ही काल में, वर्णन होने से अक्रमातिशयोक्ति अलंकार ।

: ५ :

राग मलार

जब हरि मुरली अधर धरी ।

गूह-व्योहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी ।

पद-रिपु पट अँटव्यो न सम्हारति उलट न पलट खरी ॥

सिव-सुत-बाहन आइ मिले हैं, मन चित बुद्धि हरी ।

दुरि गये कीर कपोत मधुप पिक, सारंग सुधि बिसरी ।

उड़पति बिद्रुम बिम्ब खिसाने, दामिनि अधिक डरी ॥

मिलि हैं स्यामहि हंस-सुता-तट, आनंद उमंगि भरी ।

सूर स्याम कौ मिलीं परस्पर, प्रेम-प्रवाह-ढरी ॥१२७७॥

शब्दार्थ—गृह-व्योहार=घर के काम । आरज-पथ=आर्य-पथ, लोक-वेद की रीति । पद-रिपु=पैर का शत्रु अर्थात् काँटा । पट=वस्त्र । सिव-सुत-बाहन=मोर (सिव-सुत=कार्तिकेय, उसका बाहन=मोर) । कीर=तोता । सारंग=(१) मृग, (२) सिंह, (३) हंस । उड़पति=चन्द्रमा । बिम्ब=बिम्बाफल । हंस-सुता-तट=यमुना का किनारा ।

प्रसंग—कृष्ण की मुरली के प्रभाव का वर्णन है ।

अर्थ—जब कृष्ण ने (बजाने के लिए) अपनी मुरली अपने अधर पर रखी; अर्थात् जैसे ही उन्होंने मुरली बजाई, (मुरली की ध्वनि को सुनकर ब्रज की बनिताओं ने) घर के काम और लोक-वेद की रीति को छोड़ दिया । उन्होंने (कृष्ण से मिलने के लिए) बन को जाते समय किसी प्रकार की शंका नहीं की । (मार्ग में) उनका वस्त्र काँटों में उलझ गया, पर उन्होंने खड़ी होकर या उलटकर उसे नहीं संभाला । भाव यह है कि काँटों में उलझकर उनका अंचल फट गया, पर इसकी चिंता न करके वे आतुरता से कृष्ण की ओर ही दौड़ती गईं । (उनका अंचल फट जाने से उनका सिर और मुख दिखाई देने लगा जिसके कारण उनकी वेणी को देखकर और उसे नागिन समझकर) बन के बीच मिलने वाले मोर किकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये । (उनकी नासिका, ग्रीवा, केश की शोभा और वाणी के माधुर्य को देखकर) तोता, कपोत, भ्रमर और कोयल (लज्जित होकर) छिप गये । (उनकी नेत्रों, कटि और गति की शोभा को देखकर) मृग, सिंह और हंस अपनी सुधि भूल गये । (उनके मुख, दाँत अधर और हास्य की शोभा को देखकर) चन्द्रमा, विद्रुम, बिम्बाफल लज्जित हो गये और बिजली बहुत अधिक डर गई । कृष्ण यमुना के किनारे मिलेंगे, (इस आशा के कारण) आनन्द और उमंग से भरी हुई (गोपियाँ निरंतर उसी ओर चलती गईं) । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण से मिलने के उपरांत वे प्रेम-प्रवाह में बह गईं । अर्थात् उनका प्रेम-भाव उच्च शिखर पर पहुँच गया ।

विशेष—कृष्ण-काव्य में 'मुरली' को कृष्ण भगवान् की वशीकरण शक्ति का प्रतीक माना गया है । इस पद में मुरली का प्रभाव इसी प्रतीक से व्यक्त किया गया है ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—अभिसारिका ।

अलंकार—१. 'सिव-सुत-बाहन आइ मिले हैं, मन चित बुद्धि हरी' में मोर वेणी को नागिन समझते हैं, अतः आंति अलंकार ।

२. 'दुरि गये.....अधिक डरी' में उपमान की हीनता का वर्णन होने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार ।

३. 'जब हरि.....संक करी' में कार्य-कारण का एक साथ वर्णन होने से अक्रमातिशयोक्ति अलंकार ।

: ६ :

राग नट

राधे जल-सुत कर जु धरे ।

अति हीं अरुन अधिक छबि उपजत, तजत हंस सगरे ॥

चुगत चकोर चले ह्वं सनमुख, भ्रमके रहे खरे ।

तब बिहँसी बृषभानु-नंदिनी, बोझ मिलि भगरे ॥

रबि अरु ससि बोझ एकं रथ, सनमुख आनि अरे ।

सूरदास प्रभु कुंज-बिहारी, आनंद उमंगि भरे ॥१८१०॥

शब्दार्थ—जल-सुत = जल का पुत्र अर्थात् मुक्ता, मोती । अरुन = लाल । सगरे = समग्र, सारे । भ्रमके रहे खरे = भ्रमककर खड़े हो गये । बृषभानु-नंदिनी = बृषभानु की पुत्री अर्थात् राधा । अरे = अड़ गये । कुंज-बिहारी = कुंज में विहार करने वाले अर्थात् कृष्ण ।

प्रसंग—दूती राधा की सखी से राधा के सौंदर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—जब (अपने लाल) कर में राधा ने (श्वेत) मोतियों को लिया तो उसके कर की लालिमा से वे और भी अधिक कातिमान हो गये । कहने का भाव यह है कि वे अपनी श्वेतता छोड़कर लाल अग्नि-कण के समान दिखाई देने लगे । (अग्नि-कण जानकर उन्हें चुगने के लिए आये हुए) सारे हमो ने उन्हें छोड़ दिया । तब उन्हें (अग्नि-कण जानकर) चकोर उत्साहपूर्वक उनकी ओर उन्हें चुगने के लिए चले, लेकिन (यह सोचकर कि अग्नि-कण हाथ पर नहीं रखे जा सकते, अतः ये अग्नि-कण नहीं हैं) भ्रमककर खड़े हो गये । तब (हंसों और चकोरों का भ्रम समझकर) राधा हँस पड़ी । (उसकी हँसी से मोतियों का ऊपर का भाग श्वेत हो गया, पर नीचे का लाल ही बना रहा, अतः हंस उन्हें मोती और चकोर अग्नि-कण जानकर) दोनों ही (उन्हें चुगने के लिए) आपस में भगड़ पड़े । (ऊपर से सफेद और नीचे से लाल वह मोती ऐसा प्रतीत होता था, मानो) सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक ही (कर-रूपी) रथ पर परस्पर सम्मुख आकर अड़ गये हों । सूरदास कहते हैं कि (राधा के इस अपार लावण्य को देखकर) प्रभु कृष्ण आनन्द और उमंग से भर गये ।

विशेष—अंतिम दो पंक्तियों का (रबि अरु ससि.....उमंगि से भरे) का यह अर्थ भी हो सकता है—

'सूर्य और चन्द्रमा को एक ही राशि में स्थित जानकर (जब ये दोनों एक ही राशि में आ जाते हैं तो भूतल पर अमावस्या का घोर अंधकार छा जाता जाता है)।

निकुंज में बैठे हुए कृष्ण (यह जानकर कि इस निबिड अंधकार में राधा को यहाँ तक आने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी) आनन्द से भर गये ।

अलंकार—१. हंसों और चकोरों की भ्रांति का वर्णन होने से भ्रातिमान् अलंकार ।

२. अरुण मुक्ता का फिर से श्वेत हो जाने से पूर्वरूप अलंकार ।

३. 'रवि अरु ससि दोऊ एकै रथ सनमुख आनि अरे' में 'हँसी' और 'अरुणिमा' की सूर्य और चन्द्रमा के रूप में कल्पना होने से वस्तुप्रेक्षा अलंकार ।

: ७ :

राग नट

देखो चारि कमल इक साथ ।

कमलहि कमल गहँ लावत हैं, कमल कमल ही मध्य समात ॥

सारँग पर सारँग खेलत है, सारँग ही सौँ हँसि-हँसि जात ।

सारँग स्याम औरहू सारँग, सारँग सारँग सौँ करे बात ॥

अरि-सारँग राखि सारँग कौँ, सारँग गहि सारँग कौँ जात ।

तौ लै राखि सारँग सारँग कौँ, सारँग लै आऊँ वा हात ॥

सोइ सारँग चतुरानन दुरलभ, सोइ सारँग सम्भु मुनि ध्यान ।

सेवत सूरदास सारँग कौँ, सारँग ऊपर बलि-बलि जात ॥१८१३॥

शब्दार्थ—चार कमल=दो राधा के कुच और उन पर रखे हुए कृष्ण के दो हाथ । कमलहि कमल गहँ लावत है=कमल कमल को पकड़कर ला रहे हैं, अर्थात् राधा अपने दोनों हाथों से कृष्ण के दोनों हाथों को छुड़ा रही है । कमल कमल ही मध्य समात=राधा और कृष्ण दोनों के हाथ परस्पर बंध गये हैं, अर्थात् राधा कृष्ण के हाथ पकड़कर अपने कुचों को छुड़ा रही है, पर कृष्ण छोड़ नहीं रहे हैं । सारँग=कमल-नेत्र । सारँग=रंग-सहित, आनन्द-विभोर होकर । सारँग=लाल कमल अर्थात् रात्रि-जागरण के कारण लाल नेत्र । सारँग=सखी । अरि-सारँग=रति-क्रीड़ा के शत्रु, अर्थात् चुगलखोर । सारँग=रति-क्रीड़ा । सारँग गहि=रात को लेकर । सारँग कौ जात=चन्द्रमा जा रहा है । सारँग कौँ=दम्पति को । सारँग=दीपक । चतुरानन=ब्रह्मा । सारँग ऊपर=चरण-कमलों पर ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा और कृष्ण की रति-लीला का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण के दोनों हाथों को राधा के दोनों कुचों पर देखो । राधा अपने दोनों हाथों को छुड़ा रही है, पर राधा और कृष्ण दोनों के हाथ परस्पर बंधे हुए हैं, अर्थात् राधा कृष्ण के हाथ पकड़कर अपने कुचों को छुड़ा रही है, पर कृष्ण छोड़ नहीं रहे हैं । दोनों के कमल-नेत्र परस्पर मिलते हैं और दोनों ही आनन्द-विभोर होकर केवल मुस्कराकर रह जाते हैं । (यह सुनकर श्रोता) सखी (वक्ता)

सखी से कहने लगी कि रात्रि-जागरण के कारण इनके श्याम नेत्र और भी अधिक लात हो गये हैं (क्योंकि प्रेम की लाली से तो ये पहले ही लात थे)। तुम चुगलखोरो से इस दम्पति की रक्षा करना, क्योंकि रात को लेकर चन्द्रमा जा रहा है; अर्थात् अब रात बीतने वाली है। हे मखि ! तुम तब तक इस दम्पति की रक्षा करना जब तक मैं दीपक ले आऊँ। जो दम्पति ब्रह्मा के लिए दुर्लभ है, जिस दम्पति का शम्भु और मुनि ध्यान करने रहते हैं, सूरदास उसी दम्पति की सेवा करते हैं और उनके चरण-कमलों पर बलिहारी होते हैं।

रस—सम्भोग शृंगार रस

अलंकार—‘सारंग’ शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

: ८ :

राग नट

हरि, उर मोहनि-बेलि लसी।

तापर उरग असित तब सोभित पूरन अस ससी॥

चापति कर भुज-दंड रेख-गुन अंतर बीच कसी।

कनक कलस मधु-पान मनौ करि भुजगिनि उलटि धँसी॥

तापर सुंदर अंचल भाँप्यौ अंकित दंसत-सी।

सूरदास प्रभु तुमहि मिलत जनु दाड़िम बिगसि हँसी॥१८१४॥

शब्दार्थ—उरग=सर्प। चापति=दवाकर। रेख-गुन=डोरी की रेखाएँ। दंसत-सी=चुभी हुई-सी। दाड़िम=अनार।

प्रसंग—नायिका के कुचों पर पड़ी हुई वेणी की शोभा का वर्णन उसकी सखी या दूती नायक (कृष्ण) से कर रही है।

प्रथम अर्थ—हे कृष्ण ! (नायिका के हृदय पर पड़ी हुई वेणी) मोहिनी बेलि के समान सुशोभित हो रही है। उसके ऊपर सर्पों से असित पूर्ण चंद्रमा शोभायमान है; अर्थात् मुख-चंद्र के ऊपर केश सुशोभित हो रहे हैं। (वह वेणी) भुजदंडों से (अच्छी तरह) दवाकर बनाई गई है जिसमें डोरी की रेखाएँ बीच-बीच में कसी हुई हैं। (कुचों पर पड़ी हुई वेणी ऐसी प्रतीत होती है) मानो सर्पिणी कुच रूपी स्वर्ग कलशों से मधु-पान करके वापिस लौट रही हो। (वह वेणी) सुन्दर अंचल से ढकी हुई है जो चित्त में चुभी हुई-सी लगती है। सूरदास कहते हैं कि जिस सुन्दरी का हास्य मानो खिले हुए अनार के समान है, वह तुम्हें मिल रही है; अर्थात् वह सुन्दरी नायिका तुम में अनुरक्त है।

द्वितीय अर्थ—(सखी सखी से कह रही है कि) कृष्ण के हृदय पर (पड़ी हुई राधा) मोहिनी बेलि के समान सुशोभित हो रही है। उसके (राधा के) ऊपर जो सर्प-वेणी है, वह उसके पूर्ण चंद्र-मुख को ग्रस रही है; अर्थात् राधा के सुन्दर मुख

पर उसकी वेणी पड़ी हुई है। उस वेणी की डोरी की रेखाएँ उसके वक्षस्थल के नीचे कृष्ण की भुज-दण्डों से दबकर अंकित हो गई हैं जो ऐसी प्रतीत होती हैं मानो सर्पिणी कुच-रूपी स्वर्ण-कलशों का मधु-पान करके वापिस लौट रही हो। उस वेणी पर जो सुन्दर अंचल ढका हुआ है वह दश के समान प्रतीत हो रहा है। सूरदास कहते हैं कि खिले हुए अनार के समान सुन्दर हास्य वाली सुन्दरी भगवान् कृष्ण को प्राप्त हुई है।

रस—शृंगार रस।

अलंकार—१. 'मोहनि बेलि लसी' में 'मोहनि बेलि' उपमान और 'लसी' साधारण-धर्म है। अतः वाचक-उपमेयलुप्तोपमा अलंकार।

२. 'कनक कलस मधु-पान मनौ करि भुजगिनि उलटि धँसी' में कुचों पर कनक कलश और वेणी पर भुजगिनी का, अर्थात् एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की कल्पना होने से वस्तुप्रेक्षा अलंकार।

: ६ :

राग नट

उर पर देखियत हैं ससि सात।

सोवतहू तैं कुँवरि राधिका, चौंकि परी अधिरात।

खंड-खंड ह्वै गिरे गगन तैं, बास-पतिन के भ्रात।

कैं बहु रूप किए मारग तैं, दधि-सुत आवत जात।

बिधु बिहारे बिधु किए सिखंडो, सिव में सिव-सुत जात।

सूरदास धारें को धरती, स्याम सुनै यह बात ॥१८१६॥

शब्दार्थ—ससि सात=वेणी (ससि=एक और सात मिलकर आठ हुए। आठ का अर्थ हुआ अष्ट वस्तु, वसु का अर्थ साँप और साँप का अर्थ हुआ साँप के समान काली एवं लम्बी वेणी)। अधिरात=आधी रात। बास-पतिन के भ्रात=सितारे जो उसके सिर में लगे हुए थे (बास=गृह, गृहपति=ग्रहपति, ग्रहपतियों के भ्रात=तारे, सितारे)। दधि-सुत=उदधि-सुत, चन्द्रमा। बिधु=चन्द्रमा, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख। बिधु=विधि, दैव। सिखंडी=मोर। सिव=उरोज, हृदय। सिव-सुत=क्रोध (सिव=हृदय, सुत=उत्पन्न होने वाला भाव अर्थात् क्रोध)। धरती=पृथ्वी, धैर्य।

प्रासंग—राधा की सखी कृष्ण से कह रही है।

अर्थ—(सोती हुई राधा ने जब करवट बदली तो उसकी वेणी उसके हृदय पर आ पड़ी अतः) अपने हृदय पर पड़ी वेणी को देखकर (भ्रम से उसे सर्प समझ कर) राधा आधी रात में ही सोती हुई चौक कर जग पड़ी। उसके सिर पर लगे हुए सितारे टूट-टूटकर गिर पड़े (मानो आकाश से नक्षत्र खंड-खंड होकर पृथ्वी पर आ गिरे हों)। अथवा चंद्रमा अनेक रूप धारण करके आकाश-मार्ग से आ-जा रहा हो। उसके मुख पर बाल बिखर गये। दैव ने उन्हें मोर बना दिया: अर्थात्

मोर-पंखों की तरह वे अस्त-व्यस्त हो गये । (उनकी अस्त-व्यस्तता देखकर राधा के) हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ । मूरदाम कहने हैं कि हे श्याम ! यह जान मुनिये, हम (विरह की) अवस्था में उसे धैर्य भी किस प्रकार हो सकती है ? कहने का भाव यह है कि आप उससे तुरन्त मिलकर उसे धैर्य प्रदान करें ।

विशेष—१. 'ससि सात' का यह भी अर्थ हो सकता है—गमि = एक, एक के ऊपर सात अर्थात् सत्तरह, सत्तरह=शत्रु अर्थात् सपत्नी (साँत) ।

२. 'उर पर देखियत है ससि सात' का यह अर्थ भी हो सकता है—तुम्हारी निष्ठुरता देखकर उसके हृदय पर साँप लोट रहा है; अर्थात् वह बहुत ही अधिक दुखी है ।

३. 'बास-पतिन के भ्रात' का यह अर्थ भी हो सकता है—बासप (वाष्प) तनिके भ्रात (प्रांसुप्रो के भाई) = पसीना (पसीने की बूँदें) ।

रस—शृंगार रस ।

अलंकार—१. 'खंड खंड हूँ गिरे गगन तै, बास-पतिन के भ्रात' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'कै बहु रूप किए मारग तै, दधि-सुत आवत जात' में सदेह का वर्णन होने से सदेह अलंकार ।

३. 'बिधु-बिहुरे बिधु किए सिखड़ी' में 'बिधु' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार और 'ब' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

: १० :

राग बिलावल

भ्राजु बन राजत जुगल किसोर ।

दसन-बसन खंडित मुख मंडित, गंड तिलक कछु थोर ॥

डगमगात पग धरत सिथिल गति, उठे काम-रस भोर ।

रति-पति सारंग अरुन महा छबि, उमंगि पलक लगे भोर ॥

स्रुति अवतंस बिराजत हरि-सुत, सिद्धि दरस सुत ओर ।

सूरदास प्रभु रस-बस कीन्ही, परौ महा रन जोर ॥१८१७॥

शब्दार्थ—जुगल किसोर=राधा और कृष्ण । दसन-बसन=दाँतों का आच्छादन अर्थात् अधर । गंड=कपोल । कछु थोर=कुछ थोड़ा अर्थात् मिटा हुआ । काम-रस=सुरति का आनन्द । भोर=विभोर । रति-पति=कामदेव अर्थात् केलि-क्रीड़ा । सारंग=कमल, कमल-नेत्र । भोर=(१) विभोर, (२) अरुणोदय । स्रुति=(१) वेद, (२) कान । अवतंस=भूषण । हरि-सुत=(१) गजमुक्ता, (२) भगवान के पुत्र । सिद्धि=(१) सिद्धियाँ, (२) पूर्णता को प्राप्त किये हुए अर्थात् लम्बे-लम्बे ।

दरस= (१) दर्शन, (२) अमावस्या । दरस-सुत= (१) सिद्धि का सुत, (२) अमावस्या का सुत अर्थात् अन्धकार; अन्धकार=केश ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा और कृष्ण की सुरतांत दशा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! आज वन में कृष्ण और राधा दोनों ही सुशोभित हो रहे थे । उनके खंडित अधरों से उनका मुख शोभायमान था । उनके कपोलों के तिलक (परस्पर आलिंगन और चुम्बन आदि के कारण) मिटे हुए-से हो गये थे । वे केलि-क्रीड़ा के आनन्द से विभोर हो रहे थे, अतः वे डगमगाते हुए चरण (पृथ्वी पर) रख रहे थे और उनकी गति में शिथिलता थी । केलि-क्रीड़ा से (रात-भर जगने के कारण) उनके नेत्रों की लाली अत्यन्त शोभा-सम्पन्न थी और वे आनन्द-विभोर होकर उमग के साथ अपनी पलकों को चला रहे थे; अर्थात् आनन्द-विभोरता के कारण उनकी आँखें कभी खुल जाती थीं और कभी बन्द हो जाती थी । उनके कमल-नेत्रों की लाली अरुणोदय के समान थी । उनके कानों में गज-मुक्ताओं का भूषण सुशोभित था और उनके श्याम केश लम्बे-लम्बे थे, जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो दर्शन की सिद्धियों को प्राप्त करके सिद्धि-सुत वेदों के भूषण भगवान् के पुत्र शोभायमान हो । सूरदास कहते हैं कि (सुरति) के महारण में (राधा को) जीतकर प्रभु (कृष्ण) ने (उस को) रस-वश कर लिया है ।

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

अलंकार—१. 'दसन-वसन' 'काम-रस भोर' में पग धरना, शिथिल गति, आनन्द-विभोर होना आदि कई भावों का एक साथ वर्णन होने से समुच्चय अलंकार ।

२. 'भोर', 'स्रुति', 'हरि-सुत', 'सिद्धि' आदि का श्लिष्टार्थक प्रयोग होने से श्लेष अलंकार ।

: ११ :

राग केदारो

आजु तन राधा सज्यो सिंगार ।

नीरज-सुत-सुत-बाहन कौ भख, स्याम अरुन रँग कौन बिचार ॥

मुद्रापति-अँचवन-तनया-सुत, ताके उरहि बनावहि हार ।

गिरि-सुत-तिन-पति बिबस करन कौं, अच्युत लै पूजत रिपु-मार ।

पंथ-पिता-आसन-सुत सोभित, स्याम घटा बग-पंक्ति अपार ।

सूरदास प्रभु अंस-सुता-तट, क्रीडत राधा राधानंद कुमार ॥१८२०॥

शब्दार्थ—नीरज-सुत-सुत-बाहन को भख=केश (नीरज-सुत=ब्रह्मा, उसका सुत महादेव, उसका बाहन बैल, उसका भक्षण घास, घास जैसे लम्बे-लम्बे अर्थात् सर्प, सर्प=केश) । मुद्रापति-अँचवन-तनया-सुत=मोती (मुद्रापति=अग्रस्त्य, उसका अँचवन समुद्र, उसकी तनया सीपी, उसका पुत्र मोती) । गिरि-सुत-तिन-पति=कृष्ण

(गिरि-सुत वृक्ष, उनका पति कल्पवृक्ष, कल्पवृक्ष के समान सभी इच्छाओं के पूर्ण करने वाला नायक अर्थात् कृष्ण) । अच्छत = अक्षत । रिपु-मार = (१) शिव, (२) उरोज (स्मर-रिपु अर्थात् शिव, शिव = उरोज) । पथ-पिता-आसन-सुत = सुन्दर ग्रीवा (पथ = वेद, उसका पिता ब्रह्मा, उसका आसन हंस, उसका पुत्र सुग्रीव = सुन्दर ग्रीवा) । अस-सुता-तट यमुना का तट ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा और कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! आज राधा ने अपने शरीर को शृंगार से गजाया है । उसने अपने केशों को, श्याम और अरुण रंग का विचार किये बिन हंसजित किया है, अर्थात् उगने अपने काले केशों को लाल रेशम के साथ गुंथा है । मोतियों का हार बनाकर उसने अपने हृदय पर (उरोजों पर) धारण किया है, मानो कृष्ण के दिवश करने के लिए (अपने वश में करके अपनी सभी कामनाएँ पूर्ण करने के लिए) उसने उरोज-रूपी शिव की अक्षत लेकर पूजा की है । उसकी सुन्दर ग्रीवा मुशोभित हो रही है । (उसकी काली साड़ी पर पड़ी हुई सफेद मोतियों की माला ऐसी प्रतीत होती है, मानो) श्याम घटा में अणार वक् पक्ति हो । सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार शृंगार किये हुए) राधा यमुना के तट पर कृष्ण के साथ क्रीड़ा कर रही है ।

विशेष—१. 'नीरज-सुत-सुत-बाहन को भख' का यह पाठ भी मिलता है—'नीरज-सुत-बाहन को भक्षण ।' इसका अर्थ है—नीरज-सुत ब्रह्मा, उसका वाहन हंस, उसका भक्षण मोती । इस पाठ से 'नीरज सुत...कौन विचार' इस पक्ति का यह अर्थ होगा—उसने मोती-युक्त बेसर को धारण किया, जिसमें अधर की अरुणिमा और नेत्रों की श्यामता प्रतिबिम्बित हो गई ।

२. 'पथ-पिता-आसन-सुत' का यह पाठ भी मिलता है—'पारथ-पितु-आसन-सुत ।' इसका अर्थ होगा—पारथ अर्जुन, उसका पिता इन्द्र, उसका आसन गज, उसका सुत गजमुक्ता ।

३. **नीरज-सुत**—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि विष्णु ने अपने एकाकी जीवन से ऊबकर सृष्टि रचने की इच्छा की । उन्होंने प्रथम महत्तत्त्व, अहंकार-तत्त्व और पंच तन्मात्रा द्वारा षोडश कलायुक्त पौरुष रूप अर्थात् ग्यारह इन्द्रिय और पंच महाभूत, सोलह अंशों से निशिष्ट मूर्ति धारण की । पहले योगनिद्रा विस्तारपूर्वक एकाग्रण में शयन करने पर उनके नाभि-स्वरूप हृदयस्थ कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई ।

४. **मुद्रापति अञ्चवन**—पुराणों में यह कथा आती है कि एक समय अपने किनारों पर रखे हुए टिटहरी के अंड़ों को समुद्र बहाकर ले गया । इससे टिटहरी को बहुत दुख हुआ और क्रोध भी बहुत आया । उसने समुद्र को सुखाने का सकल्प कर लिया और अपनी चोच में समुद्र से पानी ले-लेकर बाहर फेकने लगी । जब अगस्त्य मुनि वहाँ स्नान के लिये आये और उस पक्षी की पीड़ा से अवगत हुए तो उन्होंने एक ही चल्न में समुद्र को आचमन करना चाहा । यह देखकर समुद्र बहुत भयभीत हुआ और क्षमा-याचना करते हुए टिटहरी के अंड़े उसे लौटा दिये । इसी के कारण अगस्त्य मुनि के 'समुद्र-चुलक' 'पीताब्धि' आदि नाम भी पड़ गये ।

रस—शृंगार रस ।

अलंकार—१. गिरि-सुत-तिन पति बिबस करने कौ, अच्छत लै पूजत रिपु-मार' में अहेतु में हेतु की उत्प्रेक्षा होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ।

२. 'श्याम घटा बग-पंक्ति अपार' में काली साड़ी की श्याम घटा के रूप में और मोतियों की बग पंक्ति के रूप में अर्थात् एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में कल्पना किये जाने के कारण वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार ।

: १२ :

राग ललित

देखि सखि, साठि कमल इक जोर ।

बीस कमल परगट दिखियत हैं, राधा-नंदकिसोर ॥

सोरह कला सम्पूरन मोह्यो, ब्रज अरुणोदय भोर ।

तामैं सखी द्वैक मधु लागि रहे, चितवत चारि चकोर ॥

मैमत द्वै गजराज अरे हैं, कोटि मदन भे भोर ।

सूरदास बलि-बलि या छबि की, अलकनि की भक्तभोर ॥१८२१॥

शब्दार्थ—बीस कमल=राधा और कृष्ण के चार चरण, चार कर, दो मुख, चार नेत्र, हृदय, दो नाभि और राधा के कुच दो=बीस । भोर-विभोर=करना, मोह लेना । द्वैक=दो । मधु=शहद, अधर । चारि चकोर=नेत्र-रूपी चार चकोर । मैमत=मदमत्त । कोटि=(१) करोड़ो, (२) दुर्ग । मदन=कामदेव । भोर=(१) अरुणोदय, प्रातःकाल, (२) विभोर । अलकनि की=केशों की ।

प्रसंग—राधा और कृष्ण यमुना नदी के किनारे खड़े हुए दर्पण देख रहे हैं । उनका प्रतिबिम्ब दर्पण और यमुना के जल दोनों में पड़ रहा है । उनकी उस समय की शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! देखो, साठ कमल एक ही स्थान पर आकर इकट्ठे हो गये हैं (बीस राधा और कृष्ण के अंग, उनका दर्पण और जल में प्रतिबिम्ब, इस प्रकार साठ हुये) । राधा और कृष्ण के बीस कमल (चार चरण, चार कर, दो मुख, चार नेत्र, दो हृदय, दो नाभि और दो राधा के कुच) तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, (किन्तु शेष चालीस प्रतिबिम्ब से ही दिखाई देते हैं) । कृष्ण ने अपनी पूर्ण सौलह कलाओं से अरुणोदय की भाँति ब्रजवासियों को मोहित कर लिया है । उसमें (राधा और कृष्ण के) मधु से भरे हुये दो अधर हैं और चार नेत्र रूपी चकोर देख रहे हैं; अर्थात् कृष्ण और राधा एक-दूसरे को प्रेम-भाव से देख रहे हैं (उन दोनों के परस्पर टकराते नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं) मानो कामदेव के दुर्ग में दो हाथियों को लड़ते-लड़ते प्रातःकाल हो गया हो, अथवा करोड़ो कामदेव उनके प्रेम-भाव को देखकर विभोर हो गये हों । सूरदास कहते हैं कि उनके केशों की भक्तभोर से जो शोभा होती है, मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ ।

विशेष—‘कोट मदन भैं भोर’ का यह पाठ भी मिलता है—‘कोटि मदन भय भोर ।’ तब इस पंक्ति ‘मैमत द्वै.....भय भोर’ का यह अर्थ भी हो सकता है— ‘मनो दो जंघा-रूपी गजराज बलवान कामदेव-रूपी महावन के भय से परस्पर लड़ रहे हों ।’

रस—ममभोग शृंगार ।

अलंकार—१. ‘साठ कमल इक जोर,’ ‘बीस कमल परगट देखियत है’ और ‘तामैं सखी द्वैक मधु लागि रहे चितवति चारि चकोर’ में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. ‘मैमत द्वै गजराज अरे है, कोटि मदन भैं भोर’ में एक वस्तु की दूसरी वस्तु के रूप में कल्पना किये जाने से वस्तुत्वैकाग्र अलंकार ।

: १३ :

राग रामकली

मेरो मन हरि-चितवनि अरुभानो ।

फेरत कमल द्वार ह्वै निकसे, करत सिंगार भुलानो ॥

अरुन अधर दसनन दुति राजत, मो तन मुरि मुसुकानो ।

उदधि-सुता-सुत पाँति कमल में, बंदन भुरके मानो ।

ईहि रस मगन रहत निसि बासर, सार जीति नहि जानो ।

सूरदास चित-भंग होत क्यों, जो जिहि रूप समानो ॥२२८५॥

शब्दार्थ—हरि-चितवनि = कृष्ण की चितवन में । अरुभानो = उलझ गया है । दसनन दुति = दाँतों की कांति । मो तन = मेरी ओर । मुरि = मुड़कर । उदधि-सुता-सुत = मोती (उदधि-सुता सीपी, उसका सुत मोती) । पाँति = पंक्ति । बंदन = सिद्ध । भुरके = छिड़कना । चित-भंग = चित का विचलित होना ।

प्रसंग—कृष्ण के प्रथम दर्शन से ही राधा का उनके प्रति स्नेह हो गया है । अपने इसी स्नेह का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मेरा मन कृष्ण की चितवन में उलझ गया है । जब वे कमल हिलाते हुए मेरे द्वार के आगे से निकले तो (उन्हे देखकर) मैं शृंगार करना ही भूल गई । जब वे मेरी ओर मुड़कर मुस्कराये तो उनके लाल अधर पर उनकी सफेद दाँतों की कांति इस तरह सुगोभित हुई मानो कमल में बिछी मोती की पंक्ति पर सिद्ध छिड़क दिया गया हो । मैं (उनकी स्मृति से उत्पन्न) इसी आनन्द में रात-दिन डबी रहती हूँ । इसमें मैं अपनी हार-जीत कुछ नहीं समझती । सूरदास कहते हैं कि जो जिसके रूप में समा गया है, उसका चित उससे किस प्रकार विचलित हो सकता है ? अर्थात् जब मन किसी पर अनुरक्त हो गया है तो वह सदा उसी में डूबा हुआ रहेगा ।

रस—शृंगार रस (दर्शनजन्य प्रेम) ।

अलंकार—‘अरुन अधर’.....‘भुरके मानौ’ में अधर की अरुणिमा के स्थान पर सिंदूर की और :ग:।:।: के लिए मुक्ता-पत्ति की कल्पना होने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

: १४ :

राग धनाश्री

तऊ न गोरस छाँड़ि दियो ।

चहुँ-फल भवन गह्यौ सारँग-रिपु-बाजि धरा अथयौ ॥

अमी बचन रचि रचत, कपट हठ, भगरौ फेरि ठयो ।

कुमुदिनि प्रफुलित, हो जिय सकुची, लं मृग चंद नयो ॥

जानि निसा सिसु-रूप बिलोकत, नवल किसोर भयो ।

तब तूँ सूर नेकु नहिं छूटत, मन अपनाइ लियो ॥२२८६॥

शब्दार्थ—तऊ=तो भी, तब भी । गोरस=दूध । चहुँ-फल=चारों थनों का फल अर्थात् दूध । भवन=दोहनी । सारँग-रिपु-बाजि=सूर्य के घोड़े (सारँग रात्रि, उसका रिपु सूर्य उसके बाजि घोड़े) । धरा अथयौ=पृथ्वी पर से अस्त हो जाने पर । अमी=अमृत । मृग चंद=मृग-सहित चंद्रमा । नयो=नवीन । किसोर=किशोर, तरुण ।

प्रसंग—नायिका (राधा) का मन कृष्ण की ओर आकर्षित हो गया है । अपने इसी प्रेम का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! सूर्य के घोड़ों का पृथ्वी पर से अस्त हो जाने पर भी अर्थात् रात हो जाने पर भी (गाय) के चारों थनों का दूध दोहनी में निकाल लेने पर भी कृष्ण ने वह दूध मुझे नहीं दिया । पहले तो उन्होंने अमृत के समान मधुर शब्दों में बातें की, फिर कपटपूर्ण हठ की (और तब भी मैं उसकी बातों से नहीं आई तो) फिर मुझसे झगड़ा शुरू कर दिया । नवीन मृग-सहित चंद्रमा के उदित होने पर कमलिनी तो खिल गई, पर मैं लज्जावश सकुचा गई । कृष्ण का शिशु-रूप, रात्रि का आगमन जानकर नवीन तरुण-रूप को प्राप्त हो गया । सूरदास कहते हैं कि तभी से मेरा मन उन्होंने अपने वश में कर लिया है जो छुटाने से छूटता भी नहीं । कहने का भाव यह है कि मेरा मन कृष्ण में बहुत ही अनुरक्त हो गया है

विशेष—कृष्ण के बाल-रूप से तरुण रूप धारण करने का वर्णन सूरदास ने अन्य स्थलों पर भी किया है । यथा—

‘हरि जानत है मंत्र-जंत्र, सीखौ कहूँ टोना ।

बन मैं तरुन कन्हार, घरहि आवत हूँ छौना ॥’

रस—शृंगार रस (दर्शनजन्य प्रेम)

अलंकार—१. ‘अमी बचन’ में वाचक और साधारण धर्म का लोप होने से वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

२. 'कुमुदिनि प्रफुलित, हौ जिय सकुची, लै मृगचंद नयो' मे कारण कही और कार्य कही होने से असंगति अलंकार ।

: १५ :

राग कान्हरी

राधा बसन स्याम तनु चीन्ही ।

सारंग बदन बिलास बिलोचन, हरि सारंग जानि रनि कीन्ही ।

सारंग बचन कहत सारंग सौ, सारंग-रिपु दै राखति भीनी ।

सारंग-पानि गहत रिपु सारंग, सारंग कहा कहति लिखी छीनी ॥

सुधा पान कर कै नीकी बिधि, रह्यो सेस फिर मुद्रा दीन्ही ॥

सूर सुदेस आहि रति-नागर, भुज आकर्षि बाम कर लीन्ही ॥२२६८॥

शब्दार्थ—बसन स्याम = काला वस्त्र । तनु = तनिक । चीन्ही = पहचानी । सारंग = सखी । बदन = मुख । बिलास = काम । बिलोचन = दृष्टि । सारंग = रात, कृष्ण । सारंग गौ = राधा से । सारंग-रिपु = वस्त्र (सारंग दीपक, उसका रिपु वस्त्र) सारंग-पानि = कृष्ण । नीकी विधि = भली प्रकार से, तृप्त होकर । सेस मुद्रा दीन्ही = हृदय से लगा लिया । सुदेस = सुन्दर स्थान । रति-नागर = कृष्ण । आकर्षि = खींच कर । बाम = बामा, राधा । कर लीन्ही = अंक मे भर ली ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा और कृष्ण की रति-क्रीड़ा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मैंने काले वस्त्र से राधा तनिक पहचानी । कृष्ण ने उसके मुख को और दृष्टि को कामातुर देखकर तथा रात का आगमन जानकर उसके साथ रति प्रारंभ कर दी । कृष्ण राधा से (रति-समय भी) बात करने लगे (पर लज्जावश राधा चुप ही रही और) महीन वस्त्र डालकर उसने अपने अंगों को छिपा लिया । विरोधी के रूप में आये उस वस्त्र को कृष्ण के पकड़ने ही (अर्थात् जैसे ही कृष्ण ने उस वस्त्र को हटाना चाहा) राधा ने कहा कि तुम क्या कह (कर) रहे हो, इस वस्त्र ने तुम्हारा क्या छीन लिया है; अर्थात् यह वस्त्र तो तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं है, फिर तुम इसको क्यों हटाना चाहते हो । कृष्ण ने उसके अधर के पान से तृप्त होकर फिर उसे हृदय से लगा लिया । सूरदास कहते हैं कि फिर रति-नागर (कृष्ण) ने सुन्दर स्थान पर बैठकर और राधा को अपनी भुजाओं से खींचकर अपने अंक में भर लिया ।

विशेष—'बाम कर लीन्ही' का यह अर्थ भी हो सकता है—'बाम भुजा में भर ली ।'

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

अलंकार—१. 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'सूर सुदेस आहि रति-नागर' में 'रति-नागर' विशेष्य का सामिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार ।

: १६ :

राग सोरठ

राधे, दधि-सुत क्यों न दुरावति ।

हों जु कहति वृषभानु-नंदिनी, काहे जीव सतावति ॥

जल-सुत दुखी, दुखी हैं मधुकर, द्वै पंछी दुख पावति ।

सारंग दुखी होत बिनु सारंग, तोहि दया नहिं आवति ॥

सारंग-रिपु की नैकु ओट करि, जौ सारंग सुख पावत ।

सूरदास सारंग किंहि कारन, सारंग-कुलहि लजावत ॥२३३२॥

शब्दार्थ—दधि-सुत (उदधि-सुत) = चंद्रमा, चन्द्रमुख । दुरावति = छिपाती है । वृषभानु-नंदिनी = राजा वृषभानु की पुत्री, राधा । जल-सुत = कमल । द्वै पंछी = चक्रवाक-युगल । सारंग = भौरा । सारंग = भौरी । सारंग-रिपु = वस्त्र (सारंग दीपक उसका रिपु वस्त्र) । सारंग = राधा । सारंग-कुलहि = (१) उत्तम कुल को, (२) नारी कुल को, (३) सारंग कुल को ।

प्रसंग—राधा सरोवर के किनारे खड़ी है । उसकी सखी चातुरी से उसके मुख की अपार शोभा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तू अपने चद्रमुख को क्यों नहीं छिपाती ? मैं पूछती हूं कि हे वृषभानु-नन्दनि ! तू क्यों जीवों को सता रही है ? ('वृषभानु-नन्दनी' कहने से सखी का अभिप्राय यह है कि वृषभानु तो बड़े ही दयालु राजा है और तू उन्ही की पुत्री होकर ऐसा निष्ठुर कार्य कर रही है ।) कमल दुखी है (चंद्रोदय होने पर कमल बंद हो जाता है), भौरे दुखी है (कमलों के बन्द हो जाने पर वे या तो कमलों में ही बंदी बनकर तड़प रहे हैं या कमल पराग से वंचित हो गए हैं, इसीलिए दुखी है) । चक्रवाक-युगल भी दुख पा रहे हैं (चंद्रोदय होने पर चक्रवा-चक्रवी बिछुड़ जाते हैं और रात-भर विरह-दुख से तड़पते रहते हैं) । भौरा (कमल में बन्दी होने से) भौरी के बिना दुखी हो रहा है, (फिर भी) तुझे दया नहीं आ रही है । तनिक अपने वस्त्र की ओट कर ले (अपने मुख को वस्त्र में छिपा ले), जिससे सारंगों को सुख मिले । सूरदास कहते हैं कि हे राधे ! किस कारण तू अपने उत्तम कुल को (अथवा नारी कुल को अथवा सारंग कुल को) लज्जित कर रही है ।

२. अंतिम दो पक्तियों का यह पाठ भी मिलता है—

‘सारंग रिपु की नैकु ओट दै, यौ सारंग दुख छावति ।

सूरदास सारंग के धोखै, सारंग-कुलहि लजावति ॥’

रस—शृंगार रस ।

अलंकार—१. ‘जल-सुत दुखी, दुखी है मधुकर, द्वै पंछी दुख पावति’ में जल-सुत, मधुकर, द्वै पंछी का ‘दुख पावति’ एक ही धर्म होने से तुल्ययोगिता (प्रथम) अलंकार ।

२. 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

३. 'हो' जु कहति वृषभानु-नन्दिनी, काहे जीव सतावति' मे 'वृषभानु-नन्दिनी' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार ।

४. 'सूरदास सारंग किहि कारन, सारंग-कुलहि लजावत' मे राधा भी सारंग है और अन्य वस्तुएँ भी सारंग है, यह समता होने से सम अलंकार ।

५. राधा की मुख-छवि के माध्यम से चन्द्रोदय का वर्णन है, अर्थात् भंग्यतर से अंभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति हुई है, अतः पर्यायोक्ति अलंकार ।

: १७ :

राग सूही

प्रात-समय आवत हरि राजत ।

रतन जटित कुंडल सखि खवननि, तिनकी किरनि सूर-तनु लाजत ॥

सातै रासि मेलि द्वादस में, कटि मेखला अलंकृत साजत ।

पृथ्वी-मथी-पिता सो लं कर, मुख समीप मुरली धुनि बाजत ॥

जलधि-तात-तिहि-नाम-कंठ के, तिनके पंख मुकुट सिर भ्राजत ।

सूरदास कहै सुनहु मूढ़ जन, भगतनि भजत अभगतनि भाजत ॥२४२०॥

शब्दार्थ—राजत=शृंगार करके । खवननि=कानों में । किरनि=आभा । सूर-तनु=सूर्य की किरणें । सातै रासि=सातवी राशि तुला, उमका स्वामी शुक्र अर्थात् हीरा । द्वादश=बारहवी राशि मीन, उसका स्वामी बृहस्पति, बृहस्पति के रंग का अर्थात् स्वर्ण । पृथ्वी-मथी-पिता=लकुटी (पृथ्वी को मथने वाला प्रभु, उसका पिता वेणु, वेणु का अर्थ बाँस भी होता है और बाँस का अर्थ लकुटी) । जलधि-तात-तिहि-नाम-कंठ=मोर (जलधि-तात आकाश, आकाश का रंग नील, नील में कंठ जोड़ा नीलकंठ अर्थात् मोर) । भ्राजत=सुशोभित था । भजत=सदा ध्यान रखते हैं । भाजत=भागते हैं, विमुख रहते हैं ।

प्रसंग—सखी सखी से कृष्ण के सौंदर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! प्रातःकाल कृष्ण शृंगार करके आये । उनके कानों में रत्नों से जड़े हुए कुण्डल थे जिनकी आभा सूर्य की किरणों को भी लज्जित कर रही थी । उनकी कटि में हीरों से जड़ी हुई सोने की मेखला (तगड़ी) सुशोभित थी । वे हाथ में लकुटी लिये हुए थे और मुख (होंठ) पर रखकर मुरली की मधुर ध्वनि बजा रहे थे । उनके सिर पर मोरपंखों का मुकुट सुशोभित था । सूरदास कहते हैं कि हे मूर्खजनो ! सुनो, कृष्ण अपने भक्तों का सदा ध्यान रखते हैं और अभक्तों से सदा विमुख रहते हैं ।

विशेष—१. राशियां बारह मानी गई है—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन । इनके स्वामी य हैं—मेष और

वृश्चिक का मंगल, वृष और तुला का शुक्र, मिथुन और कन्या का बुध, सिंह का सूर्य, धन और मीन का बृहस्पति, मकर और कुम्भ का शनिश्चर और कर्क का चंद्रमा ।

२. पृथ्वी-मथी-पिता—यह कथा श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में है । इस कथा का सारांश यह है—राजा वेणु बड़ा अत्याचारी और नास्तिक था । उसने ऋषि-मुनियों के यज्ञ आदि सभी कर्म बन्द करवा दिए थे । फलतः ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उसकी हत्या कर दी । राजा की हत्या के पश्चात् उसके समूचे राज्य में अराजकता छा गई । तब ऋषियों ने मंत्रों द्वारा वेणु की जंघा का मंथन किया जिससे एक काला तथा कुरूप मनुष्य उत्पन्न हुआ जिसे भीलों का राजा बनाया गया । वेणु की दक्षिण भुजा का मथन करने से लक्ष्मी-सहित पृथु उत्पन्न हुआ । इसको पृथ्वी का राजा बनाया गया । प्रजा ने पृथु से प्रार्थना की कि वह उसकी सहायता करे और उसकी आजीविका का प्रबन्ध करे । राजा को पृथ्वी पर बहुत क्रोध आया, क्योंकि वह कुछ उत्पन्न ही नहीं कर रही थी । जब क्रुद्ध होकर पृथु ने अपना धनुष संभाला तो भयभीत होकर पृथ्वी गौ के रूप में उपस्थित हुई जिसको दुहकर अनेक रत्न निकाले गए । इस प्रकार प्रजा पुनः धन-धान्य से सम्पन्न हो गई ।

रस—भक्ति रस ।

अलंकार—१. 'रतन जटित कुंडल सखि स्रवननि, तिनकी किरनि सूर-तनु लाजत' में प्रसिद्ध उपमान सूर्य की किरणों को हीन बताने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार ।

२. 'भगतनि भजत अभगतनि भाजत' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार ।

: १८ :

राग कान्हारौ

पीताम्बर की सोभा सखि री मो पै कही न जाई ।

सागर-सुत-पति-आयुध मानौ, बन-रिपु-रिपु मैं देत दिखाई ॥

जा रिपु पवन, तामु सुत-स्वामी आभा, कुंडल कोटि दिपाई ।

छाया-पति-तनु बदन बिराजत बंधुक अधरनि रहे लजाई ॥

नाकी-नायक-बाहन की गति, राजत मुरली सुधुनि बजाई ।

सूरदास प्रभु हर-सुत-बाहन, ता पख लै रहे सीस चढ़ाई ॥२४८७॥

शब्दार्थ—सागर-सुत-पति-आयुध=बिजली (सागर-सुत ऐरावत, उसका पति इन्द्र, उसका आयुध वज्र अर्थात् बिजली) । बन-रिपु-रिपु=मेघ (बन-रिपु अग्नि, अग्नि का रिपु मेघ) । जा रिपु पवन तामु सुत-स्वामी=सूर्य (पवन जिसका रिपु है अर्थात् दीपक, जिसे सारंग भी कहते हैं, सारंग का अर्थ है जल, जल का सुत कमल, कमल का स्वामी सूर्य) । दिपाई=दीप्त हो रही है, प्रकाशित हो रही है । छाया-पति-तनु=सूर्य की काति । बदन=मुख । बंधुक=दुपहरिया का फूल । नाकी-नायक-बाहन

की गति=गजगति (नाकी=स्वर्ग, उसका नायक इन्द्र, उसका वाहन गज, उसकी गति गज-गति) । हर-सुत-बाहन=मोर (हर का सुत कातिकेय, उसका वाहन मोर) ।

प्रसंग—सखी सखी से कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण के पीताम्बर की शोभा का मैं वर्णन नहीं कर सकती । (कृष्ण के श्याम शरीर पर पीला वस्त्र इस प्रकार दिखाई देता है मानो) मेघ में बिजली चमक रही हो । (उनके कानों के) कुण्डलों में करोड़ों सूर्यों की आभा प्रकाशित हो रही है । (उनके) मुख पर सूर्य की कांति विद्यमान है और उनके अधर दुपहरिया के फूलों को भी लज्जित कर रहे हैं । वे गज-गति से सजोभित होकर मुग्ली की मधुर ध्वनि बजा रहे हैं । सूरदास कहते हैं कि प्रभु कृष्ण अपने सिर पर मोर-पंख धारण किये हुए हैं ।

रस—शृङ्गार रस ।

अलंकार—१. पीताम्बर की शोभा सखि री मो पै कही न जाई' में अतिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'सागर-सुत-पति-आयुध मानो, बन-रिपु-रिपु में देत दिखाई' में पीताम्बर की बिजली तथा श्याम शरीर की मेघ के रूप में सम्भावना होने से वस्तुतः प्रेक्षा अलंकार ।

३. 'बंधुक अधरनि रहे लजाई' में प्रमिद्ध उपमान 'बंधुक' की हीनता का वर्णन होने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार ।

: १६ :

राग धनाश्री

स्याम अचानक आइ गए री ।

मैं बैठी गुरुजन बिच सजनी, देखत हीं मो नैन नए री ॥

तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी, बँदी सों कर परस कियो री ।

आपु हँसे उत पाग मसकि हरी, अंतरजामी जानि लियो री ॥

लँ कर कमल अधर परसायौ, देखि हरषि पुनि हृदय धर्यौ री ।

चरन छुए दोउ नैन लगाए, मैं अपने भुज अंक भर्यौ री ॥

ठाढ़े रहे द्वार अति हित करि, तब ही तँ मन चोरि गयो री ।

सूरदास कुछ दोष न मेरो, उत गुरुजन इत हेतु नयो री ॥२४६८॥

शब्दार्थ—नए=भुक्त गये । बुद्धि=उपदेश । मसकि=मसकाया ।
हित=प्रेम । हेतु=हित, प्रेम ।

प्रसंग—गुरुजनों के मध्य में ही नायिका (राधा) ने कृष्ण से संकेतों द्वारा बातें की । उसी घटना का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मैं गुरुजनों के बीच बैठी हुई थी कि अचानक ही वहाँ कृष्ण आ गये । उन्हें देखते ही (लज्जा के कारण) मेरे नेत्र भुक्त गये । (उनसे बातें करने

के लिए) तब मैंने एक बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय किया और (अपने मस्तक की) बिंदी को अपने हाथ से स्पर्श किया (अर्थात् बिंदी) छूने के बहाने उन्हें प्रणाम किया)। अन्तर्यामी कृष्ण ने मेरे भाव को समझ लिया और अपनी पगड़ी दबाकर हँस दिये (अर्थात् पगड़ी दबाने के बहाने से उन्होंने मेरे प्रणाम को शिरोधार्य किया)। फिर मैंने एक कमल हाथ में लेकर उसका अपने अधर से स्पर्श किया (अर्थात् उनके अधर-चुम्बन की लालसा प्रकट की)। मेरी यह क्रिया देखकर वे हर्षित हुए और उन्होंने (भी एक कमल) अपने हृदय पर रक्खा (अर्थात् उन्होंने यह बताया कि तुम सदैव मेरे हृदय में बसती हो)। मैंने अपने दोनों चरण छुए (अर्थात् संकेत से यह बताया कि तुम मुझे अपने चरणों की दासी समझो)। उन्होंने (अपने हाथ) नेत्रों से लगाये (अर्थात् यह बताया कि तुम सदा मेरे नेत्रों में बसती हो)। तब मैंने उस कमल को अपने अक में भर लिया (अर्थात् आलिंगन करने की इच्छा प्रकट की)। तब वे अत्यन्त प्रेमपूर्वक मेरे द्वार पर खड़े रहे। तभी से मेरा मन चोरी हो गया है। सूरदास कहते हैं कि हे सखि ! (इस क्रिया-विदग्धता के लिए) मेरा कुछ भी दोष नहीं है, क्योंकि उधर तो गुरुजन थे और इधर मेरा नवीन प्रेम था। भाव यह है कि मैं अपने नवीन प्रेम के आवेग को न रोक सकी और मुझे क्रिया-चातुरी का सहारा लेना पड़ा।

विशेष—स्वयं सूरदास ने अपने इन संकेतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

‘राधा भाव कियौ यह नीकौ, तुम बैदी उन पाग छुई ।
 ऐसे भेद कहा कोउ जानै, तुम ही जानौ गुप्त दुई ॥
 तुम जुहार उनकौ जब कीन्हौ, तुमकौं उनहुं जुहार कियौ ।
 एक प्रान देह द्वै कीन्है, तुम वे एकै नाहि बियौ ॥
 तुव पग परसि नैन पर राख्यौ, उनि कर कमलन हृदैं धर्यौ ।
 सूरदास हृदयें उनि राखे, तुम उनकौं लै कंठ भर्यौ ॥’

रस—शृङ्गार रस ।

नायिका—क्रिया-चातुरी से अपने मनोभावों को प्रकट करने के कारण क्रिया-विदग्धा नायिका ।

अलंकार—इंगितों से युक्तिपूर्वक रहस्य के व्यक्त होने से सूक्ष्म अलंकार ।

: २० :

राग नट नारायण

सखि, भिलि करौ कछुक उपाउ ।

मार मारन चढ्यौ बिरहिनि, निबरि पायौ बाउ ॥

हुतासन-धुज-जात उन्नत, चल्थौ हरि-विस बाउ ।

कुसुम-सर-रिपु-नंद-बाहन, हरषि हरषित गाउ ॥

बारि-भव-सुत-तासु-भाव री, अब न करिहौं काउ ।

बार अब की प्रान पीतम, बिजय-सखा मिलाउ ॥

रति बिचारि जु मान कीन्हौं, सोउ बहि किन जाउ ।

सूर सखी सुभाउ रहि हौं, संग सिरोमनि राउ ॥२७०४॥

शब्दार्थ—मार=स्मर, कामदेव । निदरि = निरादर करने का । दाउ=दाँव, अवसर । हुनासन-शृङ्ग-जाग=बादल (हुतासन अग्नि, उमकी ध्वजा से उत्पन्न अर्थात् बादल) । उन्नत=उठना । हरि-दिस=कामोत्तेजक । बाउ=वायु । कुमुम-सर-रिपु-नद-बाहन=मोर (कुमुम-सर कामदेव, उमका शत्रु शिव, उमका नन्द (मुत) कान्तिकेय, उसका वाहन मोर) । बारि-भव-सुत-तासु-भाव=मान (बारि-भव विप, उमका सुत मद, उसका भाव अभिमान अर्थात् मान) । बिजय-सखा=कृष्ण (विजय अर्जुन, उसका सखा कृष्ण) । रति=प्रेम । बहि किन जाउ=नष्ट क्यों नहीं हो जाती । सिरोमनि राउ=कृष्ण ।

प्रसंग—नायिका (राधा) अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! अब तो तुम सब मिलकर कोई-न-कोई उपाय करो (जिससे मेरा और कृष्ण का मिलन हो जाये) । अवसर पाकर (मुझ) विग्रहिणी का निरादर करने के लिए और मुझे मारने के लिये कामदेव चढ़ आया है । बादल ऊपर उठ रहे हैं । कामोत्तेजक वायु चल रहा है । मोर हर्षित होकर कूक रहे हैं । अब मैं किसी से भी (विशेष रूप से कृष्ण से) मान का भाव प्रकट नहीं करूँगी ; अर्थात् मैं अब कभी भी मान नहीं करूँगी । अब की बार मुझे मेरे प्राण-प्रिय प्रीतम कृष्ण से मिला दो । मैंने तो प्रेम के कारण ही मान किया था, वही मेरी दुर्बुद्धि नष्ट क्यों नहीं हो जाती । सूरदास कहते हैं कि हे सखि ! अब मैं श्रीकृष्ण के साथ स्वाभाविक ढंग से रहूँगी ; अर्थात् अब कभी मान नहीं करूँगी ।

रस—शृङ्गार रस ।

नायिका—कलह करके पछतावा करने के कारण कलहांतरिता नायिका ।

अलंकार—‘मार मारन चढ्यौ’ में ‘मार’ पद की सार्थक और निरर्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

: २१ .

राग नट

मिलवहु पार्थ-मित्रहिं आनि ।

जलज-सुत के सुत की रुचि करि, भई हित की हानि ॥

दधि-सुता-सुत अबलि उर पर, इन्द्र-आयुध जानि ।

गिरि-सुता-पति-तिलक करकस, हनत सायक तानि ॥

पिनाकी-सुत-तासु-बाहन, भषक-भष बिष खानि ।

साखामृग-रिपु बसन मलयज, हित हुतासन बानि ॥

धर्मसुत-के अरि-सुभार्वाहि, तजति धरि सिर पानि ।

सूरदास विचित्र विरहिनि, चूकि मन मन मानि ॥२७०५॥

शब्दार्थ—पार्थ-मित्रहि=अर्जुन के मित्र को, कृष्ण को । जलज-सुत के सुत की रुचि=कलह (जलज-सुत ब्रह्मा, उसका सुत नारद, उसकी रुचि कलह) । हित=भलाई । दधि-सुता-सुत=मोती (दधि-मुता सीपी, उसका सुत मोती) । अबलि=पवित, माला । इन्द्र-आयुध=वज्र । गिरि-सुता-पति-तिलक=चन्द्रमा । (गिरि-सुता पार्वती, उसका पति शंकर, उसका तिलक चन्द्रमा) । करकम=कर्कश, कठोर । सायक=बाण । पिनाकी-सुत-तासु-बाहन-भषक-भष=वायु (पिनाकी-सुत कार्तिकेय, उसका वाहन मोर उसका भक्ष्य सर्प उसका भक्ष्य वायु) । साखामृग-रिपु=बंदर का शत्रु अर्थात् चिरचिटा । बानि=वेश, रूप । धर्मसुत-के-अरि-सुभार्वाहि=अभिमान को (धर्मसुत युधिष्ठिर, उसका अरि दुर्योधन उसके सुभार्वाहि अभिमान को) । धरि सिर पानि=सिर पर हाथ रखकर, नमस्कार करके । चूकि=भूल ।

प्रसंग—नायिका (राधा) अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मुझे कृष्ण से मिला दो । (उनके साथ) कलह करके मेरी भलाई की ही हानि हुई है ; अर्थात् मुझे दुःख ही मिला है । (मेरे) हृदय पर पड़ी हुई मोतियों की माला वज्र (के समान दुखदाई) प्रतीत होती है । कठोर चन्द्रमा तान-तान कर अपने बाण मार रहा है । वायु विष के समूह की भाँति (दुःख दे रही है) । वस्त्र (उसी प्रकार मुझे दुःख दे रहा है जिस प्रकार) चिरचिटा बंदर (को देता है) । मलय-पवन ने अग्नि का रूप (धारण कर लिया है) ; अर्थात् मलय का शीतल पवन मुझे आग की भाँति जला रहा है । मैं (अपने) अभिमान को दूर से ही नमस्कार करके छोड़ती हूँ । सूरदास कहते हैं कि विचित्र विरहिणी अपनी भूल को मन-ही-मन मान रही है ।

रस—शृङ्गार रस ।

नायिका—कलह करके पछताने से कलहांतरिता नायिका ।

अलंकार—‘दधि-सुता’...‘हुतासन बानि’ में कारण के विरुद्ध कार्य होने का वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार ।

: २२ :

राग रामकली

सारंग, सारंगधरहि मिलावहु ।

सारंग बिनय करति सारंग सौ, सारंग दुख बिसरावहु ।

सारंग-समय बहत अति सारंग, सारंग तिनहि दिखावहु ।

सारंग-गति सारंग-घर जे हैं, सारंग जाइ मनावहु ॥

सारंग-चरन, सुभग कर सारंग, सारंग नाम बुलावहु ।

सूरदास सारंग उपकारनि, सारंग मरत जियावहु ॥२७१६॥

शब्दार्थ—सारंग=सखी । सारंगधरहि=कृष्ण को । सारंग दुःख=काम-पीड़ा । सारंग-समय=रात्रि के समय । सारंग=चंद्रमा । सारंग=कृष्ण । सारंग-गति=सर्प की गति सर्प के समान कुटिल गति वाले अथवा सर्प के समान शीघ्र क्रुद्ध होने वाले । सारंग-घर=कृष्ण के घर, कृष्ण के पाम । सारंग=प्रेमपूर्वक । सारंग-चरण=कमल-चरण । सुभग=सुन्दर । सारंग=भ्रमर । नाम बुलावहु=नाम से प्रसिद्ध है । सारंग उपकारिनि=मारंग कुरंग, कुरंग बिगड़ी हुई अर्थात् बिगड़ी हुई बात को बनाने वाली । सारंग मरत=मरती हुई सखी ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) अपनी सखी से प्रार्थना कर रही है कि वह उसे कृष्ण से मिला दे ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण को मुझ से मिला दो । सखी सखी से विनय करती है कि (वह कृष्ण को उससे मिलाकर उसकी) काम-पीड़ा को नष्ट कर दे । (विरह के कारण) रात्रि के समय चंद्रमा अत्यधिक जलाता है, इसलिए मुझे कृष्ण का दर्शन करा दो । कृष्ण सर्प के समान कुटिल गति वाले है अथवा सर्प के समान शीघ्र क्रुद्ध होने वाले है, अतः तुम कृष्ण के पास जाकर उन्हें प्रेमपूर्वक मनाओ । उनके चरण कमल के समान है, सुन्दर हाथ भी कमल के समान है । उनका भ्रमर नाम प्रसिद्ध ही है ; अर्थात् जिस प्रकार भ्रमर का स्वभाव अनेक पुष्पों के रस का पान करना है, उसी प्रकार वे भी अनेक रमणियों के साथ रमण करने वाले है । सूरदास कहने है कि हे सखि ! तुम तो बिगड़ी हुई बात को बनाने वाली हो, अतः अपनी मरती हुई सखी को जीवन-प्रदान करो ।

विशेष—१. 'सारंग विनय करति सारंग सौ' का यह अर्थ भी हो सकता है—सारंग=आकाश अर्थात् अनंत ; सारंग=विष्णु । मैं तुम्हें विष्णु की सौगंध देकर अनंत विनय कर रही हूं ।

२. 'सारंग-घर' का अर्थ 'दीप्ति के भंडार' भी है—सारंग=दीप अर्थात् दीप्ति, उसका घर ।

रस—शृङ्गार रस ।

नायिका—विरहिणी होने से प्रेषितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'सारंग नाम बुलावहु' में 'सारंग' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार ।

३. 'सारंग उपकारिनि' में 'उपकारिनि' विशेषण से नायिका का अभिप्राय यह है कि तेरा स्वभाव ही दूसरों की सहायता करना है, इसलिए तू अवश्य ही कृष्ण को मुझ से मिलाकर मेरा दुःख दूर करेगी । अतः परिकर अलंकार ।

: २३ :

राग सारंग

अद्भुत एक अनूपम बाग ।

जुगल कमल पर गजबर क्रीडत, तापर सिंह करत अनुराग ॥

हरि पर सरबर, सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज पराग ।

रुचिर कपोल बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ॥

फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक पिक मृगमद काग ।

खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग ।

अंग-अंग प्रति और-और छबि, उपमा ताकीं करत न त्याग ।

सूरदास प्रभु पियौ सुधा-रस, मानौ अधरनि के बड़ भाग ॥२७२६॥

शब्दार्थ—बाग=नायिका-रूपी बाग । जुगल कमल=दो कमल, दो चरण । गजबर=गजराज, गज-गति । सिंह=सिंह के समान क्षीण कटि । सर=सरोवर, नाभि-कुण्ड । गिरिवर=पहाड़, उन्नत कुच । कज=कमल, मेहदी लगे हाथ । कपोत=कबूतर, सुन्दर ग्रीवा । अमृतफल=आम, चिबुक । पुहुप=पुष्प, अधर । पल्लव=पत्ता, ओष्ठ, सुक=तोता, नासिका । पिक=कोयल, मधुर वाणी । मृगमद=कस्तूरी, बिंदी । खंजन=खंजन पक्षी, सुन्दर नेत्र । धनुष=भौह । चन्द्रमा=मस्तक । मनिधर नाग=मणिमुक्त नाग, सीसफूल-सहित वेणी ।

प्रसंग—सखी सखी से नायिका (राधा) के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मैंने एक अद्भुत बाग देखा । दो कमलों पर हाथी क्रीड़ा कर रहे थे । उन पर सिंह अनुराग प्रकट कर रहा है । सिंह पर सरोवर, सरोवर पर उन्नत पर्वत और पर्वत पर परागयुक्त कमल फूले हुए हैं । उसके ऊपर सुन्दर कपोत स्थित है । उसके ऊपर अमृत का फल लगा हुआ है । फल पर पुष्प, पुष्पों पर पल्लव और उसके ऊपर तोता, कोयल, कस्तूरी और कौवे हैं । उसके ऊपर खंजन, धनुष और चन्द्रमा हैं । उसके ऊपर एक मणिधर नाग है । उसके प्रत्येक अंग की शोभा निराली है, जिसका उपमा कभी त्याग नहीं करती, अर्थात् उसके अंग सौन्दर्य के सभी उपमानों से पूर्ण हैं । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभो ! यदि आप उसके अधरों के सुधारस का पान करें तो यह अधरों के लिए बड़ा भाग्य होगा ।

भाव यह है—जिस प्रकार कोई उद्यान विविध प्रकार की शोभाओं से युक्त होता है, उसी प्रकार उस नायिका का अंग-प्रत्यंग विविध शोभा से सम्पन्न है । उसके दोनों चरण कमल के समान सुन्दर हैं जिनमें गज-गति विद्यमान है । सिंह की कटि के समान उसकी क्षीण कटि के ऊपर नाभि-कुण्ड है । नाभि-कुण्ड के ऊपर पर्वत-जैसे उन्नत दो कुच हैं, जिन पर कमल-जैसे मेहदी के हाथ लगे हुए हैं । उसकी ग्रीवा तोते की ग्रीवा के समान सुन्दर है जिसमें आम के समान सुन्दर चिबुक है । पुष्प के समान रक्त एवं कोमल उसके अधर हैं । पत्तों के समान उसके सुन्दर ओष्ठ हैं । उसकी

नासिका तोते की चंचु के समान, वाणी कोयल की मधुर वाणी के समान है और मस्तक पर कस्तूरी की काली बिन्दी सुशोभित है। उसकी आँखें खंजन पक्षी की आँखों के समान हैं। उसकी भौहें धनुष के समान तिरछी है, भाल चंद्रमा के समान उज्ज्वल है और माल पर सीसफूल-सहित वेणी सुशोभित है। कहने का अभिप्राय यह है कि उसके प्रत्येक अंग की शोभा ही निराली है जो सौन्दर्य के सभी उपमानों से युक्त हैं। हे कृष्ण ! यदि आप उसके अधरों की सुधा के रस का पान करे अर्थात् उसका चुम्बन करे तो यह आपके अधरों का ही सौभाग्य होगा।

विशेष—‘गजवर क्रीड़त’ का यह अर्थ भी हो सकता है—हाथी की मुँह के समान पुष्ट जंघाएँ।

रस—शृंगार रस (नख-शिख वर्णन)।

नायिका—सौन्दर्य का भंडार होने से मुग्धा नायिका।

अलंकार—१. सम्पूर्ण पद में बाग, कमल, गजवर, सिंह, सरवर, गिरिवर आदि उपमानों का ही कथन है, अतः रूप कतिशयोक्ति अलंकार।

२. ‘अंग-अंग प्रति और-और छवि’ में भेदकातिशयोक्ति अलंकार।

३. ‘मानौ अधरनि के बड़ भाग’ में अफल में फल की कल्पना होने से फलोत्प्रेक्षा अलंकार।

४. इस पद में नायिका के अंगों के अनिरिक्त पशु-पक्षियों के नाम भी निकलते हैं, अतः मुद्रा अलंकार।

: २४ :

राग रामकली

पदमिनी सारंग एक भँभारि।

आपुहि सारंग नाम कहावे, सारंग बरनी बारि ॥

तामें एक छबीली सारंग, अध सारंग उनहारि।

अध सारंग पर सकलइ सारंग, अध सारंग बिचारि ॥

तामें सारंग-सुत सोभित है, ठाढ़ी सारंग भारि।

सूरवास प्रभु तुमहं सारंग, बनी छबीली नारि ॥२७३०॥

शब्दार्थ—पदमिनी=१. कमलिनी, २. पद्मिनी नायिका। सारंग=सरोवर। सारंग=१. सरोवर, २. नारी। सारंग=१. मेघ, २. स्वर्ण। बारि=१. जल, १. न्योछावर करना। छबीली=सुन्दर। सारंग=१. हंस, २. हंस-गति वाली। अध सारंग=१. आधा हाथी अर्थात् सूँड, २. हाथी के सूँड जैसी जंघा। उनहारि=समान। सकलइ=सभी। अध सारंग=१. आधा चंद्रमा, २. आधा दिखाई देने वाला मुख-चंद्र। सारंग-सुत=१. भ्रमर, २. तिल। सारंग भारि=१. कमल-भार, २. शोभा भार।

प्रसंग—नायिका (राधा) की सखी कृष्ण से राधा के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है ।

प्रथम अर्थ—(सरोवर-पक्ष) : उस सरोवर में एक कमलिनी है । उसका नाम सरोवर है अर्थात् वह सरोवर के सभी गुणों से युक्त है । उसका जल मेघ के समान श्याम है । उसमें एक सुन्दर हंस (क्रीड़ा कर रहा है) जो हाथी के सूँड के समान तिर्यक् है । अथवा उसमें एक सुन्दर हंस और केवल सूँड ही दिखाई पड़ने वाला हाथी क्रीड़ा कर रहा है । उस सूँड में सिंह, कमल, चक्रवाक, शङ्ख, चंद्रमा आदि सभी के गुण निहित हैं । उस पर आधा चन्द्रमा ही चमक रहा है । उममें भौरा मुशोभित है । उसकी शोभा कमल आदि के भार से युक्त है ।

द्वितीय अर्थ—(नायिका-पक्ष) : रूप-सरोवर में पद्मिनी नायिका (स्नान कर रही) है । उसका नाम नारी है, अर्थात् वह नारी के सभी गुणों से युक्त है । (उसके शरीर की कांति पर) स्वर्ण भी न्यूछावर है । उसकी सुन्दर गति हंस-गति के समान है । हाथी के सूँड जैसी पुष्ट उसकी जंघाएँ हैं । उस अध-सारंग पर फिर सारंग ही सारंग है; अर्थात् सिंह जैसी कटि, कमल जैसा हृदय, चक्रवाक जैसे कुच, कमल जैसे हाथ, शङ्ख जैसी ग्रीवा और चंद्र जैसा मुख है । उसका आधा मुख ही दिखाई देता है, (क्योंकि आधा घूँघट से ढँका हुआ है ।) उम पर तिल मुशोभित है । (वह इतनी सुकोमल है कि) शोभा भी उसके लिए भार बनी हुई है । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभो ! तुम भी सारंग (घनश्याम) हो, और वह सुन्दर नारी भी सारंग है (अतः तुम दोनों की जोड़ी बहुत ही उपयुक्त है ।)

रस—शृंगार रस (नखशिख-वर्णन) ।

नायिका—मुग्धा नायिका ।

अलंकार—१. 'सारंग' शब्द का द्व्यर्थक प्रयोग होने से श्लेष अलंकार और इस शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. नायिका पर सांग सरोवर का आरोप होने से सांग रूपक अलंकार

३. 'प्रभु तुम हूँ सारंग' में नायक नायिका की समानता का वर्णन होने से सम अलंकार ।

: २५ :

राग रामकली

बिराजति एक अंग इति बात ।

अपन कर करि धरे बिधाता, षट खग, नव जलजात ॥

द्वं पतंग, ससि बीस, एक फनि, चारि बिबिध रंग धात ।

द्वं पक बिम्ब, बतीस बज्रकन, एक जलज पर थात ॥

इक सायक, इक चाप चपल अति, चितवत चित्त बिकात ।

द्वं मृनाल, मालूर उभै, द्वं कदलि-खम्भ बिनु पात ॥

इक केहरि, इक हंस गुप्त रहै, तिनहीं लग्यो यह गात ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, अति आतुर अकुलात ॥२७३१॥

शब्दार्थ—इति बात = इतनी बात, इतनी वस्तुएँ । पट खग = छः पञ्ची—भौरा (केश), खंजन (नेत्र), शुक (नासिका), पिक (मधुर वाणी), कपोत (सुन्दर ग्रीवा) और हंस (गति) । नव जलजात = नौ कमल—(दो चरण, दो कर, एक हृदय, एक नाभि, दो नेत्र और एक मुख) । द्वै पतंग = दो सूर्य (दो कर्णफूल) । ससि वीस = बीस चंद्रमा (बीस नख) । एक फनि = एक सर्प (वेणी) । चारि विविध रंग धात = चार विभिन्न रंगों की धातुएँ—कचन (शरीर), रजत (हास्य), ताम्र (कर) और लौह (केश) । द्वै पक बिम्ब = दो पके बिम्बाफल (दो अग्र) । वनीस बज्रकन = बत्तीस हीरे (बत्तीस दाँत) । एक जलज = एक कमल (एक मुख) । थान = स्थापित । इक सायक = एक बाण (कटाक्ष) । इक चाप = एक धनुष (भौह) । द्वै मृनाल = दो कमलडंडी (दो भुजाएँ) । मालूर उभै = दो बिल्वफल (दो कुन) । द्वै कदलि-खम्भ = दो केले के स्तम्भ (दो जघाएँ) । एक केहरि = एक मिह (कटि) । इक हंस = एक हंस (गति) । लग्यो यह गात = यह शरीर बना हुआ है ।

प्रसंग—नायिका (राधा) की सखी नायक (कृष्ण) से नायिका के मौंदर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—उम नायिका के एक ही शरीर में इतनी बातें एकत्र हो गई हैं । विधाता ने अपने ही हाथों से उसके शरीर में छः पक्षियों को—केश-रूपी भौरा, नेत्र-रूपी खंजन, नासिका-रूपी शुक, मधुर वाणी-रूपी पिक, सुन्दर ग्रीवा-रूपी कपोत और गति-रूपी हंस तथा दो चरण, दो कर, एक हृदय, एक नाभि, दो नेत्र और एक मुख के रूप में नौ कमलों की रचना की है । उसके एक ही मुख-रूपी कमल पर दो कर्णफूल-रूपी सूर्य, नख-रूपी बीस चंद्रमा, फणि-रूपी एक वेणी, शरीर-रूपी कचन, हास्य-रूपी रजत, ताम्र-रूपी कर, लौह-रूपी केश, अग्र-रूपी दो बिम्बाफल, दाँत-रूपी बत्तीस हीरे स्थापित हैं । कटाक्ष-रूपी बाण, भौह-रूपी धनुष हैं जिनको देखते ही चित्त उमके वश में हो जाता है । भुजाएँ-रूपी दो कमलडंडी, कुच-रूपी दो बिल्वफल, जघाएँ-रूपी दो पत्रहीन केले के स्तम्भ, कटि-रूपी मिह और अदृश्य गति-रूपी हंस हैं । इन वस्तुओं से ही उम नायिका के शरीर की रचना हुई है । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभो ! तुमसे मिलने के लिए (ऐसी अनुपम सुन्दरी नायिका) अत्यन्त आतुर होकर व्याकुल हो रही है ।

विशेष—बालकिशन के अनुसार दो चकोर (नेत्र), दो खंजन (नेत्र-चपलता), एक कोकिल (वाणी) और एक शुक (नासिका) ये 'षट खग' हैं ।

रस—शृंगार रस (नखशिख-वर्णन) ।

नायिका—मुग्धा नायिका सौन्दर्याधिक्य के कारण ।

अलंकार—खग, जलजात, पतंग, ससि, फणि, धातु, बिम्बाफल आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

: २६ :

राग धनाश्री

मनसिज माधवें मानिनिहि मारि है ।

त्रोटि पर लव अरत परमौ अर, निरखि निमुख को तारि है ॥

किसलय कुसुम कुंत सम सायक, पायक पवन बिचारि है ।

द्रुम बल्ली यह दीप जुग बनी, जनति अनल त्रिय जारि है ॥

भँवर जु एक चकृत चामरकर, भरि बंडुष खग डारि है ।

पुनि पुनि बाज साज सुनि सुन्दरि, त्रसित तिनिहि देखे मारि है ॥

बिरह बिभूति बढ़ी बनिता बपू, सीस जटा बनवारि है ।

मुख ससि सेस रह्यो सित मानो, भई तमो उनहारि है ॥

जो न इते पर चलहु कृपानिधि, तौ वह निज कर सारि है ।

सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, तुम तजि काहि पुकारि है ॥२७३५॥

शब्दार्थ—मनसिज=कामदेव । मानिनिहि=मानवती राधा को । त्रोटि=समय का अल्पांश । लव=कई त्रोटि का एक लव होता है । त्रोटि पर लव=त्रोटि का लव होते ही; अर्थात् कुछ ही क्षण बीतने पर । अरत=आर्त, विरक्त । परमौ अर=परम हठ । निमुख=नीचे की ओर मुख । को तारि है=कौन रक्षा करेगा । कुंत=माला । पायक=सहायक । द्रुम=वृक्ष । बल्ली=वल्ली, वेल । चकृत=गूँजता हुआ । चामरकर=मत्त । बंडुष=बंदूक । त्रसित=त्रस्त, भयभीत । तमो=अन्धकार । उनहारि=समान । निज कर सारि है=आत्महत्या कर लेगी ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) की दशा का वर्णन उसकी मखी कृष्ण से कर रही है ।

अर्थ—हे माधव ! इस वसंत ऋतु में कामदेव उस मानवती राधा को मार डालेगा । कुछ ही क्षण बीतने पर वह अपने परम हठ से विरक्त हो गई है; अर्थात् अपने मान पर प्रायश्चित्त करके वह दुखी हो रही है । नीचे की ओर मुख किये उस विरहिणी को देखकर उसकी कौन रक्षा करेगा; अर्थात् केवल आप ही उसकी रक्षा कर सकते हैं । वृक्षों के नवीन पत्ते उसे भाले के समान और कुसुम बाग के समान लगते हैं । वायु भी उन्हीं का सहायक बना हुआ है; अर्थात् वह भी उसे दुख दे रहा है । वृक्ष और वेलें दीपक बनकर उस बेचारी विरहिणी को जला रही हैं । मत्त होकर गूँजता हुआ भौरा बंदूक भरकर उसके खग-रूपी जीव को मार रहा है । बार-बार पक्षियों के कलरव-रूपी सुन्दर बाजों से कामदेव उस सुन्दरी को और भी अधिक भयभीत कर रहा है । उस रमणी के शरीर पर विरह की भस्म बढ़ गई है और उसके सुन्दर केश जटा बन गये हैं । उसके मुख-शशि की श्वेतता (आभा) नाममात्र के लिए ही रह गई है । विरह-दुख से उसका शरीर काला पड़कर अन्धकार के समान बन गया है । हे कृपानिधि ! यदि आप इतने पर भी उसे चलकर दर्शन नहीं देते तो वह

आत्महत्या कर लेगी । मूरदास कहते हैं कि हे रमिक गिरोमणि ! तुम्हें छोड़कर वह और किसको अपनी रक्षा के लिए पुकारे; अर्थात् तुम्ही एकमात्र उसके रक्षक और उसके दुःखों का हरण करने वाले हो ।

विशेष—प्रकृति का परम्परागत उद्दीपन रूप में चित्रण ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—विरहिणी होने से प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'मनमिज माधवै मानिनिहि मारि है' में 'म' वर्ण की अनेक बार रस-व्यंजक आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

२. 'निरखि निमुख को तारि है' में काकुवक्रोक्त अलंकार ।

३. 'किमलय कुसुम कुत सम मायक' में साधारण धर्म का लोप होने से धर्म-लुप्तोपमा अलंकार ।

४. 'विरह बिभूति बढ़ी बनिता बपु' में 'ब' वर्ण की अनेक बार रस-व्यंजक आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

५. 'विरह बिभूति बढ़ी बनिता बपु सीस जटा बनवारि है' में नायिका पर अंगो-सहित महादेव का आरोप होने में सागरूपक अलंकार ।

: २७ :

राग नट

रसना जुगल रसनिधि बोल ।

कनक-बेलि तमाल अरुभी, सुभुज बंध अखोल ।

भृंग-जूथ सुधाकरनि मनु, सघन आवत जात ।

सुरसरी पर तरनि-तनया, उमँगित न समात ॥

कोकनद पर तरनि ताँडव, मीन-खंजन-सँग ।

कीर तिल जल सिखर मिलि जुग, मनौ संगम रँग ॥

जलद तें तारा गिरत खसि, परत पयनिधि माँहि ।

जुग भुजंग प्रसन्न मुख ह्वै, कनक घट लपटाहि ॥

कनक सम्पुट कोकिला रव, बिबस ह्वै दै दान ।

बिकच कंज अनारंगी पर, लसि करत पय पान ॥

दाँमनी थिर, घन घटा चर, कबहुँ ह्वै इहि भाँति ।

कबहुँ तिन उद्योत कबहुँ, होत अति कुहु राति ॥

सिंह मध्य सनाद मनि गन, सरस सर कें तीर ।

कमल जुग बिनु नाल उलटे, कलुक तीच्छन नीर ॥

हंस सारस सिखर चढ़ि-चढ़ि, करत नाना नाद ।

मकर निज पद निकट बिहरत, मिलन अति अहलाद ॥

प्रेम-हित कै छीर सागर, भई मनसा एक ।

स्याम मनि के अंग चन्दन, अमी के अभिषेक ॥

सूरदास सखी सबें मिलि, करत बुद्धि बिचार ।

समय सोभा लागि रही मनु सूम कौ संसार ॥२७५१॥

शब्दार्थ—रसना = (१) वह जीभ जिसमें रस (रस + ना) नहीं है; (२) वह जीभ जिसमें रस है। जुगुल रसनिधि = दोनों रस-सागर अर्थात् कृष्ण और राधा। सुभुज बध = सुन्दर भुजाओं का बंधन। अखोल = पूरी तरह खोलकर। भृंग-जूथ = भौरो का समूह। सघन = काले बादल। सुरसरी = गंगा। तरनि-तनया = यमुना। कोकनद = नीला कमल। तरनि = सूर्य। कीर = शुक, तोता। संगम रंग = रंग-सहित। खसि = खिसक कर। पयनिधि = सागर, पयोधर। विकच कंज = खिला हुआ कमल। दामिनी = विजली, नायिका (राधा)। चर = चंचल। उद्योत = प्रकाश। कुटु = अन्धकार। सिंह मध्य = कटि के बीच। सनाद मनिगन = मणियों की करधनी शोर कर रही है। हंस = नूपुर से तात्पर्य है। सारम सिखर = नायक का कन्धा। मकर = मकराकृत कुडल। भई मनसा एक = एक रूप हो गये है। अमी = अमृत। सूम = कजूस।

प्रसंग—राधा और कृष्ण की रति-लीला के माध्यम से सूरदास उनकी महत्ता का वर्णन कर रहे हैं।

अर्थ—हे रमना ! तुझमें रस नहीं है (क्योंकि तेरा नाम ही रस + ना है) अतः तू (रस-प्राप्ति के लिए) रस के सागर राधा और कृष्ण की वंदना कर। अथवा तू रसवती है, अतः रस के सागर राधा और कृष्ण की वंदना कर (क्योंकि इन्हीं से तेरा समभाव है)। (राधा ने कृष्ण का आलिंगन कर रक्खा है, उनकी यह स्थिति ऐसी है मानो) अपनी सुन्दर भुजाओं को पूरी तरह खोलकर सोने की बेल (राधा की भुजाएँ) तमाल वृक्ष (कृष्ण) से उलझी हुई हों। (राधा की बेणी खुल जाने पर उसके केश उसके मुख पर लटक गये हैं, वे ऐसे लगते हैं, मानो काले बादल में आते-जाते चन्द्रमा को भौरो के समूह ने ढँक लिया हो। अथवा गंगा पर यमुना छा गई हो और उसकी उमगे तटों की सीमा में न ममा पा रही हों। कृष्ण के मुख-रूपी नील कमल पर कर्णफूल-रूपी सूर्य नृत्य कर रहे हैं। नेत्र-रूपी मीन चंचलता-रूपी खंजन से युक्त है। नासिका-रूपी शुक तिल-रूपी जल की चोटी पर चढ़कर मानो दोनों रंग-सहित मिल गये हैं। केश-रूपी मेघों से मितारे-रूपी तारे खिसक कर पयोधर-रूपी सागर पर गिर रहे हैं। कृष्ण के भुजा-रूपी दो सर्प प्रसन्न होकर (राधा के) कुच-रूपी स्वर्ण घटों से लिपटे हुए हैं। अधर-रूपी स्वर्ण के सम्पुट से राधा-रूपी कोकिला के शब्द बलात् निकल रहे हैं। खिला हुआ कमल अनार से लगकर उसका पय पान कर रहा है; अर्थात् राधा और कृष्ण एक-दूसरे का चुम्बन कर रहे हैं। नायिका (राधा) रूपी विजली कभी तो कृष्ण-रूपी बादल में स्थिर हो जाती है, कभी चंचल हो जाती है और कभी इसी तरह (पूर्ण शिथिल) हो जाती है। कभी दिन के समान प्रकाश

हो जाता है और कभी अमावस्या के समान गहन अंधकार हो जाता है; अर्थात् कभी तो राधा के केश उसके मुख को ढक लेते हैं और कभी मुख पर से हट जाते हैं। सरस गगोवर के समीप कटि-रूपी सिंह के चारों ओर (राधा की) मणियों की कण्ठनी शोर कर रही है। दो चरण-रूपी मृणाल-रहित कमल उलटे हुए हैं और कुछ तीक्ष्ण नीर बह रहा है। नूपुर-रूपी हंस नायक (कृष्ण) के कंधे-रूपी मायों के शिखर पर चढ़कर अनेक प्रकार के शब्द कर रहे हैं। कृष्ण के मकराकृत कुंडल राधा के चरणों के निकट बिहार करते हुए मिलन के आल्लाह से परिपूर्ण है। प्रेम-रूपा धीन-मागर में डूबकर राधा और कृष्ण दोनों एक-रूप हो गये हैं। कृष्ण के अंगों पर लगा हुआ चन्दन अमृत का अभिषेक-गा जान पड़ता है। (राधा की) मारी मखियाँ मिलकर (राधा और कृष्ण की रति-लीला पर) बुद्धिपूर्वक विचार करती हैं। उन्हें उनकी उस समय की शोभा ऐसी लग रही है मानो कजूस का सगर हो; अर्थात् जिस प्रकार कजूस व्यक्ति धन-संचय के अलावा और कुछ नहीं सोचता है, उसी प्रकार राधा की सखियाँ राधा और कृष्ण के मिलन की शोभा के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाती हैं।

रस—सम्भोग शृंगार रस (केलि-वर्णन)।

नायिका—रति-लीला में निर्भीक एवं निपुण होने से प्रौढा नायिका।

अलंकार—१. 'रसना जुगल रसनिधि बोल' में 'रसना' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार।

२. कनक बेलि, तमाल, भृंग-जूथ, सुधाकर, मुरसरी, तरनि-तनया, कोकनद, कीर, मीन, खंजन, जलद, तारा आदि केवल उपमानों का कथन होने से सम्पूर्ण पद में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

३. 'कनक-बेलि.....आवत जात' में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की कल्पना होने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार।

४. 'स्याम मनि के अंग चंदन अमी के अभिषेक' में साधारण धर्म का लोप होने से गर्मनृत्तोगमा अलंकार।

५. 'समय सोभा लगी रही मनु सूम को संसार' में 'म' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार।

: २८ :

राग बैराठी

बसे री नैनन में षट इंद ।

नंदननंदन बृषभानु-नंदिनी, सखी सहित सोभित जग बंद ॥

द्वादस ही पतंग ससि सौ बिस, षट फनि, चौबिस चतुरंग छद ।

द्वादस बिम्ब, सौ बानवै बज्रकन, षट कमलनि मुसक्यात जु मंद ॥

द्वादस ही मृनाल, कदली खम्भ, लखि द्वादस मराल आनंद ।
 द्वादस ही सायक, द्वादस धनु, खग ब्यालीस माधुरी फंद ॥
 चौबीस चतुष्पदनि सोभा मनु, चलत चुबत करभा मकरंद ।
 पीत गौर दामिनि बिच राजत, अनुपम छबि श्री गोकुलचंद ॥
 साठि जलज अरु द्वादस सरबर, अंगहि अंग सरस रस कद ।

सूर स्याम पर तन मन वारति, ललिता देखि भयौ आनंद ॥२७६०॥

शब्दार्थ—षट इंद=छ चन्द्रमा—राधा उसकी सखी और कृष्ण के तीन मुख, इनके दुगुने छः । जगबद=जगवद्य, जगवंदनीय । द्वादस=बारह । पतंग=१. सूर्य, २. कर्णफूल । समि=१. चन्द्रमा, २. नख । सौ बिस=एक सौ बीस । फनि=१. सर्प, २. वेणी । चतुरंग=चार रंग वाली । छद=धातु । बिम्ब=१. बिम्बाफल, २. अधर । सौ बानवै=एक सौ बानवै । बज्जकन=१. हीरा, २. दाँत । मृनाल=१. मृणाल, २. भुजा । कदली खम्भ=१. केले का खम्भा, २. जंघा । मराल=१. हंस, २. गति । सायक=१. बाण, २. कटाक्ष । धनु=धनुष, २. भौह । खग=१. पक्षी, २. सौंदर्यावयव । चतुष्पदनि=१. चौपाये, २. सौंदर्यावयव । करभा=करभ, हाथी । मकरंद=१. पुष्प-रस, २. मद ।

प्रसंग—राधा कृष्ण और अपनी एक अंतरंगिनी सखी के साथ यमुना के किनारे खड़ी थी । इन तीनों का प्रतिबिम्ब यमुना-जल में पड़ रहा था । ललिता नामक एक गोपी इनके सौंदर्य का वर्णन किसी अन्य गोपी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मेरे नेत्रों में उन छहों चंद्रमाओं की शोभा बसी हुई है । जगवद्य श्रीकृष्ण और राधा अपनी सखी-सहित (यमुना के तट पर) सुगोभित हो रहे थे । (वहाँ पर) बारह गीर्णकून-गी सूर्य, एक सौ बीस नख-रूपी चन्द्रमा, छ. वेणी-रूपी सर्प, चौबीस चार रंगों वाली धातुएँ, बारह अधर-रूपी बिम्बाफल, एक सौ बानवै दाँत-रूपी हीरे, छ मुख-रूपी महास्य कमल, बारह भुजा-रूपी मृणाल, बारह जंघा-रूपी केले के खम्भ और बारह गति-रूपी हंसों को देखकर (मुझे) आनंद मिला । बारह ही कटाक्ष-रूपी बाण, बारह भौह-रूपी धनुष, ब्यालीस सौंदर्यावयव-रूपी पक्षी मधुर फंद में बँधे हैं । चौबीस सौंदर्यावयव-रूपी चौपायों की शोभा मानों हाथी मद-रूपी पुष्परस को बहाता चल रहा हो । पीतवर्णी सखी और दामिनी के समान काँति वाली राधा के बीच में श्रीकृष्ण की अनुपम शोभा सुशोभित हो रही थी । वहाँ साठ कमल (सौंदर्यावयव) और बारह सरोवर थे । उनके प्रत्येक अंग सरस रस से परिपूर्ण थे । मूरदास कहते हैं कि उनकी इस शोभा को देखकर ललिता को बहुत आनन्द हुआ और उसने अपना तन-मन कृष्ण के सौंदर्य पर न्योछावर कर दिया ।

विशेष—१. खग ब्यालीस—दो खजन नेत्र, एक कोकिला वाणी, एक भ्रमर केश, एक कपोत ग्रीवा, एक शुक नासिका और एक हंस गति; कुल सात पक्षी हुए । कृष्ण, राधा और सखी के अवयव जोड़ने से तिगुने अर्थात् इक्कीस हुए और प्रतिबिम्ब से दूने होकर ब्यालीस हुए ।

२. चौवीस चतुष्पदनि—दो मृग नेत्र, एक सिंह कटि, एक गज-गति; कुल चार हुए। इनके तिगुने और प्रतिबिम्ब से उनके दुगुने होकर चौबीस हुए।

रस—शृंगार रस।

अलंकार—१. पतंग, ससि, फनि, बिम्ब आदि केवल उपमानों का कथन होने से सम्पूर्ण पद में रूपकानिधयोक्ति अलंकार।

२. 'मनु चलत चुबन करभा मकरद' में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की कल्पना होने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार।

: २६ :

राग बिलावल

संग सोभित वृषभानु-किसोरी।

सारंग नैन, बन बर सारंग, सारंग बदन कहै छबि को री ॥

सारंग अघर, सुघर कर सारंग, सारंग जाति, सारंग मति भोरी।

सारंग दसन, हसन पुनि सारंग, सारंग बसन पीत पर डोरी ॥

सारंग चरन, पीठ पर सारंग, कनक खम्भ मनौ अहि लसो री।

सारंग बरन, दीठि पुनि सारंग, सारंग गति, सारंग कटि थोरी ॥

सारंग पुलिन, रजनि रुचि सारंग, सारंग अंग सुभग भुज जोरी।

बिहरति मघन कुंज सखि निरखति, सूर स्याम घन, दामिनि गोरी। २७६२।

शब्दार्थ—सारंग नैन = खजन-नेत्र। सारंग = कोकिला। सारंग बदन = चन्द्र-मुख। सारंग अघर = कमल-अघर। सुघर = सुन्दर। कर सारंग = कमल-कर। सारंग जाति = पद्मिनी जाति। सारंग दसन = हीरा जैसे दाँत। सारंग = विद्युत्। सारंग बसन = श्याम साड़ी। सारंग चरन = कमल-चरण। सारंग = वेणी। अहि = सर्प। सारंग बरन = स्वर्ण-वर्ण। सारंग = बाण। सारंग गति = गज-गति। सारंग कटि = सिंह-कटि। सारंग पुलिन = नदी-तट। सारंग = मधुर। सारंग = कामदेव। सुभग = सुन्दर। घन = घनश्याम, कृष्ण। दामिनि = विद्युत्, राधा।

प्रसंग—राधा और कृष्ण दोनों कुंजों में विहार कर रहे हैं। उनकी इस शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! (कृष्ण के) साथ राधा सुशोभित हो रही है। उसके (राधा के) नेत्र खजन के समान हैं, बाणी कोकिला की कूक की भाँति मधुर है। उसके मुख-चन्द्र की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? उसके अघर कमल के समान (कोमल) है, सुन्दर कर भी कमल के समान है, वह पद्मिनी जाति की है और निश्छल मति की नायिका है। उसके दाँत हीरों के समान हैं, उसके हास्य में विद्युत् की छटा है, वह काली साड़ी पर डोरी से पीला वस्त्र बाँधे हुए है। उसके चरण कमल के समान हैं, पीठ पर सर्प-जैसी वेणी है (जो ऐसी प्रतीत होती है) मानो सोने के खम्भ पर सर्प

सुशोभित हो रहा हो। उसका वर्ण स्वर्ण (के समान कांति वाला) है। उसकी दृष्टि (कटाक्ष) बाण के समान है, उसकी हंस-जैसी गति है, उसकी कटि सिंह (की कटि के समान) क्षीण है। सूरदाम कहते हैं कि हे सखि ! देखो, नदी (यमुना) के किनारे पर मधुर रात्रि में काम-भावना से युक्त अंगों वाले परस्पर सुंदर भुजाग्रो को मिलाये हुए घन जैसे कृष्ण और विद्युत् जैसी राधा सघन कुंज में बिहार कर रहे हैं।

विशेष—कुछ प्रतियों में निम्नलिखित पंक्तियाँ नहीं मिलती—

‘सारंग दमन, हमन पुनि सारंग, सारंग बसन पीत पर डोरी।

मारँम चरन, पीठि पर सारंग, कनक खम्भ मनौ अहि लसो री॥’

रस—सम्भोग शृंगार रस।

अलंकार—१. ‘सारंग’ शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

२. नायिका के अंगों पर ‘सारंग’ का अभेद आरोप होने से रूपक अलंकार।

३. ‘सारंग चरन, पीठि पर सारंग कनक खम्भ मनौ अहि लसो री’ में देह पर कनक-खम्भ और वेणी पर अहि का आरोप होने से अर्थात् एक वस्तु को दूसरी वस्तु कल्पित किये जाने से वस्तुतत्प्रेक्षा अलंकार।

: ३० :

राग बिहागरी

देखे सात कमल इक ठौर।

तिनकों अति आदर देवे कौं, धाड़ मिले द्वँ और॥

मिलत मिले फिर चलत न बिछुरत अबलोकत यह चाल।

न्यारे भए बिराजत हैं सब, अपने सहज सनाल॥

हरि तिनि स्याम निसा निसिनायक, प्रगट होत हँसि बोले।

चिबुक उठाय कहाँ अब देखौ, अजहूँ रहति अबोले॥

इतने जतन किए नंदनंदन, तब वह निठुर मनाई।

भरिकं अक सूर के स्वामी, परयँक पर ह्वँ आई॥३०७७॥

शब्दार्थ—सात कमल=दो नेत्र, दो कर, दो चरण, एक मुख। द्वँ और=दो और, नायक के दो कर और। चाल=रीति। निसि-नायक=चन्द्रमा। परयँक=पर्यंक, शैया।

प्रसंग—सखी सखी से नायिका (राधा) के मान-भंग का वर्णन कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! मैंने एक ही स्थान पर सात कमल (नायिका के दो नेत्र, दो कर, दो चरण, एक मुख) देखे। उन कमलों को अत्यन्त आदर देने के लिए दो और कमल (नायक के दो कर) दौड़कर मिल गये। कहने का भाव यह है कि नायक ने उसे अपनी दोनों भुजाग्रो के आलिंगन में बाँध लिया। (इस व्यवहार में) यह रीति

देखी जाती है कि वे मिलने को तो मिन जाने हैं, पर फिर मिलकर बिछुड़ते नहीं है । भाव यह है कि भुजाएँ आलिंगनबद्ध होकर फिर छूटना नहीं चाहती । (इस समय वे कमल) अपने सहज मृणाल में स्थित होकर न्यारे होकर भी सुशोभित हो रहे हैं; अर्थात् नायिका मान किये हुए है । अन्धकारपूर्ण रात्रि में चन्द्रमा के प्रकट होते ही कृष्ण राधा की चित्रुक उठाकर हँसकर बोले कि अब देखो (चन्द्रोदय भी हो गया है, फिर भी) अब भी तुम मान किए हुए हो । (कहने का भाव यह है कि रात्रि ने भी, जो अब तक मान के कारण चन्द्रमा से न मिलने पर अंधेरी बनो गई थी, चन्द्रमा को अपने अंक में भरकर अपना मान छोड़ दिया है, किन्तु तुम इतनी निष्ठुर हो कि अभी भी मान किए हुए हो । तुम्हारा यह व्यवहार नितात अनुचित है ।) कृष्ण ने इस प्रकार के अनेक यत्न करके उस निष्ठुर (मानवती राधा) को मनाया । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण उन्हें अंक में भर के शैया पर ले आये ।

रस—शृंगार रस (मान-मोचन का वर्णन) ।

अलंकार—१. 'देखे सात कमल द्रौ और' में केवल 'कमल' उपमाओं का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'हरि तिनि.....अबोले' में कारण होते हुए भी कार्य के न होने का वर्णन होने से विभावना (प्रथम) अलंकार ।

: ३१ :

राग बिलावल

देखौ सोभा सिंधु समात ।

स्यामा स्याम सकल निसि रस-बस, जागे होत प्रभात ॥

ले पाहन-सुत कर सनमुख दे, निरखि निरखि मुसुकात ।

अचरज सुभग बेद जल-जातक, कनक नील मनि गात ॥

उदित जराउ पंच तिय रबि-ससि, किरन तहाँ सु दुरात ।

चंचल खग बसु अष्ट कंज-दल, सोभा बरनि न जात ॥

चारि कीर पर पारस बिद्रुम, आनि अलीगन खात ।

मुख की रासि जुगल मुख ऊपर, सूरदास बलि जात ॥३०८॥

शब्दार्थ—स्यामा=श्यामा नायिका, राधा । रस-बस=केलि के आनन्द के वशीभूत होकर । पाहन-सुत=दर्पण । बेद=चार । जल-जातक=जल में उत्पन्न होने वाला अर्थात् कमल । कनक=स्वर्ण, स्वर्ण-कांति से युक्त । दुरात=छिपना । वसु=अष्ट बसु अर्थात् आठ । कंज-दल=कमलों की पाँखें । पारस=पास, समीप । बिद्रुम=मूँगा । अलीगन=भौरों के समूह ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा और कृष्ण की रत्यंत-अवस्था का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! देखो, शोभा का सागर समा रहा है; अर्थात् राधा और कृष्ण का सौन्दर्य अपार है। श्यामा नायिका राधा और कृष्ण दोनों सारी रात की केलि के आनन्द के वशीभूत होकर प्रभात होने पर जगे है। वे हाथ में दर्पण लेकर और एक दूसरे के सम्मुख करके (रति-चिन्हों को दिखा-दिखाकर) तथा एक-दूसरे को देख-देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे हैं। स्वर्ण-कांति से युक्त राधा के तथा नीलमणि जैसे कृष्ण के शरीर पर चार आश्चर्यजनक सुन्दर कमल (दो मुख और उनके प्रतिबिम्ब) शोभा दे रहे हैं। उनके मुखों पर पान की लीक लगी हुई है, जिसके समक्ष उगते हुए सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें भी छिप जाती हैं; अर्थात् उनकी शोभा के सामने सूर्य और चन्द्रमा की शोभा भी फीकी पड़ जाती है। उनके खंजन के समान आठ नेत्र आठ कमलों की पंखुरियों की भाँति दिखाई देते हैं, जिनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। चार नायिका रूपी शुकों के समीप अधर रूपी मूँगों को आकर भौरों का समूह खा रहा है; अर्थात् उनके अधरों पर (परस्पर चुम्बन के कारण) नेत्रों की कालिमा लग गई है। सूरदास कहते हैं कि सुख की राशि राधा और कृष्ण दोनों के मुखों पर मैं न्यूछावर होता हूँ।

रस—सम्भोग शृंगार रस (रत्यन्त वर्णन)।

अलंकार—१. जल-जातक, खग, कंज-दल, कीट-विद्रुम आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'कनक नील मनि गात' में वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप होने से वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार।

: ३२ :

राग रामकली

देखि सखि, पाँच कमल द्वै सम्भु।

एक कमल ब्रज ऊपर राजति, निरखत नैन अचम्भु ॥

एक कमल प्यारी कर लीन्हैं, कमल सुकोमल अँग।

जुगल कमल सुत-कमल बिचारत, प्रीत न कबहूँ भग ॥

षट जु कमल मुख सनमुख चितवत, बहु विधि रँग-तरंग।

तिन मैं तोनि सोम-बंसी-बस, तीन सु कस्यप-अंग ॥

जेइ कमल सनकादिक दुरलभ, जिनहीं निकसी गंग।

तेई कमल सूर नित चितवत, निपट निरंतर संग ॥३०८५॥

शब्दार्थ—पाँच कमल=एक मुख, दो नेत्र, एक हृदय और एक नाभि। द्वै सम्भु=दो कुच-रूपी शिव। एक कमल=राधा का मुख-कमल। ब्रज ऊपर=कृष्ण के ऊपर। एक कमल=कृष्ण का एक हाथ। सुत-कमल=कमल-सुत, ब्रह्मा। षट जु कमल=छः कमल (दो मुख तथा चार नेत्र राधा और कृष्ण के)। बहु विधि=अनेक प्रकार से। रँग-तरंग=आनन्द-विभोर होकर। तीन=राधा का एक मुख और

दो नेत्र । तीन सु = कृष्ण का एक मुख और दो नेत्र । कम्प्यप-अंग = कछुआ के समान । जेइ कमल = जो चरण-कमल ।

प्रसंग—कृष्ण राधा के हृदय पर अपना मुख रखे हुए हैं । उनकी इस लीला का वर्णन सखी सखी से रह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! देख, पाँच कमल दो शिवों पर (विराज रहे हैं) ; अर्थात् कृष्ण अपना मुख, अपने नेत्र, अपना हृदय और अपनी नाभि राधा के कूचों से लगाये हुए हैं । एक कमल (राधा का मुख) कृष्ण के ऊपर मुशोभित है, जिसको देखकर आश्चर्य होता है । एक कमल (कृष्ण का हाथ) कमल जैसे सुकोमल अंगों वाली राधा अपने हाथ से पकड़े हुए है । ब्रह्मा इन दोनों कमलों को (राधा और कृष्ण को) देखकर विचारते हैं कि इनकी प्रीति कभी भग्न न हो । छः कमल (राधा और कृष्ण के दो मुख, चार नेत्र) अनेक प्रकार से आनन्द-विभोर होकर एक-दूसरे की ओर देख रहे हैं । इनमें से तीन कमल (राधा का मुख और दो नेत्र) कृष्ण के वश में हैं और तीन (कृष्ण का मुख तथा दो नेत्र) कछुव के समान हैं ; अर्थात् वे कभी राधा की ओर देख लेते हैं छूट । राधा और कृष्ण के जो चरण-कमल सनक आदि मर्हपियों के लिए भी दुर्लभ हैं और जिनसे गंगा निकली है, उन्हीं चरणों का सूरदास नित्य दर्शन करते हैं और पूर्ण रूप से उनके साथ लगे रहते हैं ।

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

अलंकार—१. केवल उपमानों (कमलों) का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'कमल सु कोमल अंग' में पूर्णोपमा अलंकार ।

: ३३ :

देखि सखि, चारि चन्द्र इक जोर ।

निरखति बंठि नितम्बनि पिय सँग, सार-सुता की ओर ॥

द्वै ससि स्याम नवल घन सुन्दर, द्वै बिधु की छबि गोर ।

तिनकें मध्य चारि सुक राजत, द्वै फल आठ चकोर ॥

ससि ससि सँग प्रवाल कुन्द कलि, अरुभि रह्यौ मन मोर ।

सूरदास प्रभु अति रति-नागर, बलि बलि जुगल किसोर ॥३०८६॥

शब्दार्थ—इक जोर = एक ही स्थान पर । नितम्बनि = राधा । सार-सुता = यमुना । द्वै ससि = दो चन्द्रमा (कृष्ण का मुख और यमुना में पड़ना हुआ उसका प्रतिबिम्ब) । द्वै बिधु = दो चन्द्रमा, राधा का मुख और यमुना में पड़ना हुआ उसका प्रतिबिम्ब । चारिसुक = राधा और कृष्ण की नासिकाएँ तथा उनके प्रतिबिम्ब । द्वै फल = दो बिम्बा-फल, दो अधर । आठ चकोर = राधा और कृष्ण के चार नेत्र और चार उनके प्रतिबिम्ब । प्रवाल = मूँगा, मूँगा-जैसे ममूड़े । कुन्दकलि = कुन्दकलियों के समान दाँत ।

प्रसंग—यमुना के तट पर बैठे हुए राधा और कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! देखो, चार चन्द्रमा राधा और कृष्ण के मुख तथा यमुना में उनके प्रतिबिम्ब एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हैं । राधा प्रियतम कृष्ण के साथ यमुना की ओर देख रही है । दो शशि (कृष्ण के वास्तविक और प्रतिबिम्बित मुख) श्याम एवं नवीन घन की तरह सुन्दर हैं और दो शशियों की (राधा के वास्तविक और प्रतिबिम्बित मुख की) शोभा गौर वर्ण की है । उनके बीच से चार शुक (नासिकाएँ) सुशोभित हैं, दो बिम्बाफल (अधर) और आठ चकोर (नेत्र) शोभायमान हो रहे हैं । प्रत्येक शशि (मुख) में प्रवालों के (मसूँड़े के) साथ कुंदकलियाँ दाँत हैं । कहने का भाव यह है कि राधा और कृष्ण के मुख चन्द्रमा, मसूँड़े प्रवाल और दाँत कुंदकलियों की भाँति सुन्दर हैं जिनमें मेरा मन उलझ कर रह गया है । मूरदाग कहने हैं कि ऐसे रति निपुण युगल-किशोर पर मैं बलिहारी जाती हूँ ।

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

अलंकार—१ सुक, फल, चकोर, प्रवाल, कुंदकली आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'बलि बलि जुगल किशोर' में 'बलि' पद की आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार ।

: ३४ :

राग नट

देखि री, प्रगट द्वादस मीन ।

षट इन्दु, द्वादस तरनि सोभित, बिमल उडुगन तीन ॥

षट अष्ट अम्बुज, कीर षट, मुख कोकिला सुर एक ।

दस दोइ बिद्रुम, दामिनि षट, तीन व्याल बिसेष ॥

षट त्रिबलि, श्रीफल षट, बिराजत परसपर बर नारि ।

ब्रज कुँवरि, गिरधर कुँवर पर, है सूर जन बलिहारि ॥३०८७॥

शब्दार्थ—द्वादस मीन = बारह मीन रूपी नेत्र (चार राधा और कृष्ण के नेत्र, चार उनके दर्पण में प्रतिबिम्ब और चार यमुना के जल में प्रतिबिम्ब) षट इन्दु = छः चन्द्र-मुख । द्वादस तरनि = बारह कर्णफूल-रूपी सूर्य । उडुगन तीन = तीन बेदी-रूपी तारे । षट अष्ट = अड़तालीस । अम्बुज = कमल । कीर षट = छः नासिका-रूपी शुक । कोकिला सुर एक = एक (राधा का) मधुर कंठ-रूपी कोमल । दस दोइ बिद्रुम = बारह अधर-रूपी मूँगे । दामिनी षट = छः दंत पंक्ति-रूपी बिजली-छवि । तीन व्याल = तीन वेणी-रूपी नाग । श्रीफल = कुच । ब्रज कुँवरि = राधा ।

प्रसंग—राधा और कृष्ण यमुना के किनारे बैठे हुए दर्पण देख रहे हैं । उनका

एक प्रतिबिम्ब दर्पण में और दूसरा यमुना जल में पड़ रहा है। उनकी इसी शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! देख बारह मीन-रूपी नेत्र प्रकट हो गये हैं। छः मुख-रूपी चन्द्रमा, बारह कर्णफूल-रूपी सूर्य और तीन सुन्दर राधा की वेदी-रूपी ताजे सुशोभित हो रहे हैं। अड़तालीस कमल (मुख एक, नेत्र दो, हृदय एक, कर दो, चरण दो = आठ, राधा और कृष्ण के मिलाकर = सोलह। इनका दर्पण और यमुना-जल में प्रतिबिम्ब = 16×2 अड़तालीस) छः नामिका-रूपी शुक और एक राधा का कठ रूपी कोयल का स्वर (सुशोभित है)। बारह अधर रूपी मूँगे, छ दंत-पक्ति-रूपी विजली की छवि, तीन, (राधा की) वेणी-रूपी नाग, छः त्रिवली, छः कुच-रूपी श्रीफल है जिनसे कृष्ण और राधा शोभायमान हो रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि मैं राधा और कृष्ण की इस शोभा पर न्यौछावर होता हूँ।

रस—सयोग शृंगार रस।

अलंकार—मीन, इन्दु, तरणि, उगुन, आम्बुज, कीर आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

: ३५ :

राग देवगंधार

देखि सखि, तीस भानु इक ठौर।

ता ऊपर चालीस बिराजत रुचि न रही कछु और ॥

धर तें गगन, गगन तें धरती, ता बिच कियौ बिस्तार।

गुन-निरगुन सागर को सोभा, बिन रवि भयौ भिनुसार ॥

कोटिनि कोटि तरंगिनि उपजति, जोग जुगति चित लाउँ।

सूरदास प्रभु अकथ कथा को, पंडित भेद बताउँ ॥३०८८॥

शब्दार्थ—तीस भानु = राधा की हंस गति वाले दो चरण, दस नूपुर, एक हाथ की आरसी, दो कर्णफूल, एक शीशफूल, कृष्ण के चरण दो, नूपुर दस, कुंडल दो = तीस। चालीस = मन अर्थात् चित्त, अथवा बीस नखों के प्रतिबिम्ब। गुन-निरगुन = गुणात्मक और निगुणात्मक। भिनुसार = प्रकाश। तरंगिनि = लहरें। जोग जुगति = योग-युक्ति।

प्रसंग—राधा और कृष्ण की सयोगावस्था की छवि का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! तीस सूर्यों को एक स्थान पर देखो (राधा के चरण दो, नूपुर दस, कर की आरसी एक, कर्णफूल दो, शीशफूल एक, कृष्ण के चरण दो, नूपुर दस, कुंडल दो = तीस)। इस (युगल छवि) के ऊपर मेरा मन मुग्ध हो गया है, अथवा इनके ऊपर प्रतिबिम्बित चालीस नख सुशोभित हो रहे हैं। (इनकी शोभा देखकर)

मेरी अब कोई भा इच्छा शेष नहीं रह गई, अर्थात् यह छवि पूर्ण संतोष प्रदान करने वाली है। इन सूर्यों का विस्तार पृथ्वी से आकाश तक और आकाश से पृथ्वी तक है (कृष्ण के नख-शिख का सौंदर्य नख से शिख तक और राधा का सौंदर्य शिख से नख तक व्याप्त है)। इस सागर की शोभा गुणात्मक और निर्गुणात्मक दोनों है (कृष्ण अवतार लेकर सगुण लीला भी करते हैं और वे ब्रह्म तथा माया अथवा पुरुष एवं प्रकृति-रूप से निर्गुण भी हैं) जिसके कारण बिना सूर्य के ही प्रकाश हो रहा है (ब्रह्म की ज्योति से ही यह समस्त ब्रह्मांड उद्भामित है)। इस सागर में करोड़ों लहरें उत्पन्न हो रही हैं जिनको समझने के लिए मन में योग-युक्ति धारण करो; अर्थात् पूर्ण ध्यानावस्था के द्वारा ही इस समार की स्थिति को—जो त्रिगुणात्मक माया और ब्रह्म के सम्मिलन से उत्पन्न होती है—समझा जा सकता है। सूरदास कहते हैं कि हे पंडितजन ! ब्रह्म की इस अकथ्य कथा का भेद बताओ।

रस—शृंगार रस (नख शिख-वर्णन)।

अलंकार—१. भानु, धरती गगन, सागर आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'बिन रवि भयौ भिनुमार' में कारण के अभाव में भी कार्य का वर्णन होने से विभावना (प्रथम) अलंकार।

: ३६।

राग रामकली

सुता-दधि पति सौं क्रोध भरी।

अम्बर लेत भई खिन्न बालाहि, सारंग-संग लरी॥

तब श्रीपति अति बुद्धि बिचारी, मन लै हाथ धरी।

वै अति चतुर नागरी नागरि, लै मुख माँझ करी॥

चापत चरन सेस चलि आयौ, उदयाचलहि उरी।

सूरदास स्वामी लीला उरि, अंकम लगि उबरी॥३२४२॥

शब्दार्थ—सुता-दधि=उदधि-सुता, लक्ष्मी अर्थात् राधा। अम्बर=वस्त्र। खिन्न=भुँझलाना। सारंग-संग=दीपक के साथ। श्रीपति=कृष्ण। वै=वह भी। चापत=दबाते ही। सेस=शेषनाग। उबरी=छुटकारा पाया।

प्रसंग—राधा और कृष्ण की रति-लीला का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! (रति-लीला के लिए) कृष्ण द्वारा (अपना) वस्त्र उतारते ही राधा उनमें बहुत क्रुद्ध हुई और भुँझला उठी तथा उसने दीपक को बुझा दिया। (राधा के क्रोध और भुँझलाहट का कारण यह था कि कृष्ण ने उसे दीपक के प्रकाश में ही विवस्त्र कर दिया, अतः लज्जित होकर उसने दीपक बुझा दिया)। (राधा के द्वारा दीपक बुझाये जाने पर) तब कृष्ण ने अपनी बुद्धि से बहुत-कुछ सोचकर मणि लेकर अपने हाथ पर रख ली (और वहाँ फिर मणि का प्रकाश हो गया)। वह राधा

भी बहुत चतुर स्त्री थी (मणि के प्रकाश को नष्ट करने के लिए) उसने मणि को लेकर अपने मुख में रख लिया । (तब कृष्ण ने जोर से पृथ्वी का दवा दिया) चरण से (पृथ्वी को) दवाते ही शेषनाग (अपनी मणियाँ लेकर) तुरन्त वहाँ आ गया जिसके कारण उदयाचल भी डर गया । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण की लीला से (तथा शेषनाग के आगमन से) डरकर राधा ने उनके हृदय में लगकर ही (भय से) छुटकारा पाया ।

विशेष—‘चापत चरन सेम चलि आयौ, उदयाचलहि डरी’ से कृष्ण के ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया गया है ।

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

नायिका—लाज और काम की भावना समान होने से मध्या नायिका ।

अलंकार—१. ‘अम्बर लेत भई खिभ बालहि सारंग-सँग लरी’ में अम्बर तो कृष्ण ने अलग किया और भगड़ा दीपक के साथ हुआ; अर्थात् कारण कहीं और कार्य कहीं का वर्णन होने से असंगति अलंकार ।

२. ‘सूरदास स्वामी लीला डरि, अंकम लगी उदरी’ में अकस्मात् कर्ता के कार्य की सिद्धि का वर्णन होने से समाधि अलंकार ।

: ३७ :

राग कान्हरी

बिधु-बदनी अरु कमल निहारै ।

सुमना-सुत लै कमलनि मज्जनि, धनपति-धाम कौ नाम सँवारै ॥

तरनि-तात-बनिता-सुत ता छबि, कमलनि रचि-रचि ग्रंथित चारै ।

कमल कमल पर रेख बनावति, सारंग-रिपु पाहन गति डारै ॥

उर हारावलि मेलति कमलनि, मनहुँ इंदु पारस ढिग पारै ।

सूर स्याम के नामहि जीतन, कमल-पति के पदहि बिचारै ॥३३२६॥

शब्दार्थ—बिधु-बदनी=चंद्रमुखी । सुमना-सुत=चमेली का तेल (सुमना चमेली, उसका सुत तेल) । कमलनि मज्जनि=हाथों में लगाकर । धनपति-धाम कौ नाम=अलक (धनपति कुबेर, उसका धाम अलका, उसका नाम अलक अर्थात् केश) । तरनि-तात-बनिता-सुत=केश (तरनि सूर्य, उसका तात कश्यप, उसकी बनिता कद्रू, उसका सुत सर्प; अर्थात् केश) । कमल कमल पर=हाथ से नेत्रों में । रेख बनावति=काजल डालती है । सारंग-रिपु=वस्त्र (सारंग वायु, उसका रिपु वस्त्र) । पाहन=पत्थर, मणि । इंदु=चंद्रमा । पारस=घेरा, चंद्रमा के चारों ओर का वह प्रकाशमय घेरा जो प्रायः वर्षा ऋतु बीतने पर दिखाई देता है । कमल-पति=विष्णु अर्थात् कृष्ण । पदहि बिचारै=चरणों में ध्यान लगा रही है ।

प्रसंग—नायिका (राधा) शृंगार कर रही है । उसकी शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! वह चंद्रमुखी होते हुए भी कमल को देख रही है; अर्थात् चंद्रमुखी राधा (शृंगार करती हुई) कृष्ण की ओर देख रही है। चमेली का तेल अपने हाथों में लगाकर वह अपनी अलकों को सँवार रही है। अपने केशों की शोभा (बढ़ाने के लिए) वह कर-कमलों से अपनी वेणी गूँथ रही है; अथवा अपनी वेणी में सँवार-सँवारकर कमलों को गूँथ रही है। हाथ से आँखों में काजल डाल रही है और मणियों से युक्त वस्त्र पहन रही है। हाथों से अपने हृदय पर हारावलि पहनती वह ऐसी प्रतीत होती है मानो चंद्रमा को पारस (प्रकाशमय घेरा) ने घेर लिया हो। सूरदास कहते हैं कि श्याम के नाम पर विजय पाने के लिए वह कृष्ण के चरणों में ध्यान लगा रही है। कहने का भाव यह है कि श्याम रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता, पर वह श्याम पर (कृष्ण पर) भी अपना रंग (प्रेम) चढ़ाने का प्रयत्न कर रही है। अर्थात् उसमें कृष्ण को अपने अधीन करने की शक्ति है।

रस—शृंगार रस (आलम्बन वर्णन)।

नायिका—लज्जा एवं नव सौंदर्य होने से मुग्धा नायिका।

अलंकार—१. 'बिधु-बदनी' में वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप होने से वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार।

२. 'बिधु-बदनी अरु कमल निहारै' में चंद्रमा और कमल का विरोध प्रतीत होने से विरोधाभास अलंकार।

३. कमलनि, कमल आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

४. 'उर हारावलि मेलति कमलनि मनहुँ इदु पारस ढिग पारै' में नायिका के हृदय को इदु और हारावलि को पारस सम्भावित किये जाने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार।

५. 'सूर स्याम के नामहि जीतन' में 'स्याम' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से पङ्क्तिगकुर अलंकार।

: ३८ :

राग रामकली

सकुचि तन उदधि-सुता मुसुकानी ।

रबि-सारथी-सहोदर-ता-पति, अम्बर लेत लजानी ॥

सारंग पानि मूँदि मुगननी, मनि मुख माँझ समानी ।

छरन चाप महि प्रगट करो पिय, सेस सीस सहिदानी ॥

सूरदास तब कहा करै अबला, जब हरि यह मति ठानी ।

भुज अंकम भरि, चाप कठिन कुच, स्याम अंक लपटानी ॥३२४३॥

शब्दार्थ—उदधि-सुता=राधा। रबि-सारथी-सहोदर-ता-पति=कृष्ण (रवि-

सारथी अरुण, उसका सहोदर गरुड़, उमका पनि विष्णु अर्थात् कृष्ण) । सारंग — दीपक । सहिदानी—चिन्ह अर्थात् मणि । चाप=दबाकर ।

प्रसंग—राधा और कृष्ण की रति-लीला का वर्णन सखी गंधी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! (रति-लीला के लिए उद्यत कृष्ण को देखकर) राधा सकोच से भरकर मुस्कराने लगी और कृष्ण द्वारा (विस्त्र करने की इच्छा में) वस्त्र को पकड़ते ही वह लज्जित हो गई । उम मृगनयनी ने अपने करो से दीपक को बुझाकर (प्रकाश करने के लिए कृष्ण द्वारा रक्खी गई) मणि को भी अपने मुख में रग्न लिया । तब पृथ्वी को अपने चरण से दबाकर कृष्ण ने सिर पर मणि धारण किये हुए शेषनाग को प्रकट किया । सूरदास कहते हैं कि जब कृष्ण ने अपने मन में यह हठ कर ही ली तो वह अबला राधा कर भी क्या सकती थी ? तब वह अपनी भुजाओं में कृष्ण को भरकर, अपने कठोर कुक्षो से उसे दबाकर उमके गले से लिपट गई ।

विशेष—१. इस छंद का भाव ३६वें छंद के भाव की आवृत्ति है ।

२. **रवि-सारथी-सहोदर**—महाभारत के आदिपर्व में यह आख्यान आया है : कश्यप की कद्रू और विनता नाम की दो स्त्रियां थी । एक बार वे उन पर प्रसन्न हुए और उन्हें वर मांगने को कहा । कद्रू ने अपने समान बलशाली महस्र सर्प-पुत्रों का और विनता ने उनसे भी बलशाली दो पुत्रों का वर मांगा । कद्रू के सहस्र अंडों से सहस्र सर्प उत्पन्न हुए । जब बहुत दिनों तक विनता के दो अंडों से कोई पुत्र नहीं निकला तो पुत्रेच्छा से आतुर होकर उसने समय से पहिले ही अंडों को तोड़ डाला जिसमें से अर्ध शरीर वाला एक पुरुष निकाला । यही अरुण था । अरुण ने क्रुद्ध होकर अपनी माँ को शाप दिया कि वह असमय ही अंडा तोड़ने के दोष से पांच सौ वर्षों तक अपनी सौत कद्रू की दासी बनकर रहेगी और दूसरे अंडे से जो पुत्र होगा, वही उस दासता से मुक्त करेगा । यह कहकर अरुण आकाश में उड़ गया और सूर्य का सारथी बन गया । ठीक समय पर दूसरे अंडे से गरुड़ का जन्म हुआ । इस प्रकार अरुण और गरुड़ सहोदर हैं ।

रस—सम्भोग शृंगार रस ।

नायिका—काम और लज्जा की भावना समान होने से मध्या नायिका ।

अलंकार—इस छंद में सकुचि, मुसुकानी, लज्जानी, लपटानी आदि क्रियाओं का भाव एक ही नायिका में वर्णित है । अतः कारकदीपक अलंकार ।

: ३६ :

राग नट

राधे, तेरे नैनू किधौं रो बान ।

यौं मारे ज्यौं मुरछि परं धर, क्यों करि राखै प्रान ॥

खग पर कमल, कमल पर कदली, कदली पर हरि ठान ।

हरि पर सरबर, सर पर कलसा, कलसा पर ससि भान ॥

ससि पर बिम्ब, कोकिला ता बिच, कीर करत अनुमान ।

बीच बीच दामिनि दुति उपजति, मधुप-जूथ असमान ॥

तू नागरि सब गुनन उजागरि, पूरन कला निधान ।

सूर स्याम तब दरसन कारन, व्याकुल परे अजान ॥३३६१॥

शब्दार्थ—किधौ=अथवा । धर=पृथ्वी । खग=पक्षी, हंस । कमल=चरण । कदली=केला-स्तम्भ, जघा । हरि=सिंह, कटि । सरबर=सरोवर, नाभि । कलसा=कलश, कुच । ससि=शशि, मुख । बिम्ब=बिम्बफल, अधर । कोकिला=कोयल, मधुर वाणी । कीर=तोता, नासिका । अनुमान=विचार-मग्न । उजागरि=उजागर करने वाली, प्रकाशित करने वाली । मधुप-जूथ=भौरों का समूह, केश-राशि । निधान=भंडार । तब=तेरे ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती अथवा राधा की सखी राधा से कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तेरे ये नेत्र है अथवा बाण है ? क्योंकि ये नायक (कृष्ण) को इस तरह मारते हैं कि वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । (तुम्हारी चोट के कारण) वह अपने प्राणों की किस प्रकार रक्षा कर सकता है ? भाव यह है कि तुम्हारे कटाक्ष-बाणों ने कृष्ण को ऐसा आहत किया है कि उसका वचना ही कठिन है । तेरी हम-गति पर कमल-चरण, कमल-चरण पर कदली-स्तम्भ-जघाएँ, जघाओं पर सिंह-कटि, कटि पर सरोवर-नाभि, नाभि पर कलश-कुच, कुचों पर शशि-मुख, मुख पर बिम्बाधर है । उनके बीच कोकिल-माधुरी और विचार-मग्न शुक-नासिका है । बीच-बीच में (हंसी के कारण) बिजली-जैसी द्युति उत्पन्न होती है । आकाश-मस्तक पर मधुप-समूह-केश-राशि है । तू चतुर है, सब गृणों को प्रकाशित करने वाली है, पूर्ण कला का भंडार है । सूरदास कहते हैं कि तेरे देखने से कृष्ण व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गये हैं ।

रस—शृ गार रस (आलम्बन तथा दर्शनजन्य वर्णन) ।

अलंकार—१. 'राधे' तेरे नैन किधौ री बान' में नैन और बाण में सदेह होने के कारण सदेह अलंकार ।

२. खग, कमल, कदली, हरि, सरवर, कलसा आदि केवल उपमानों का कथन होने से 'उपमान' अलंकार ।

: ४० :

राग बिलावल

दधि-सुत-बदनी, दर्धिहि निबारौ ।

दधि-सुत दृष्टि मेलि दधि-सुत मैं, दधि-सुत-पति सौं क्यों न बिचारौ ॥

धरहिं छाँड़िकें, धरहिं पकरि लै, धरहु लता धन स्याम सँवारौ ।
 हार पहिरि करि, हार पकरि करि, हार गोबर्धन-नाथ निहारौ ॥
 समुझि चली बृषभानु-नन्दिनी, आलिंगन गोपाल पियारौ ।
 बिद्यमान कलहंस जात गलि, सूरदास अपनों तनु वारौ ॥३३६५॥

शब्दार्थ—दधि-सुत=उदधि-सुत अर्थात् चन्द्रमा । बदनी=मुख वाली । दधि-सुत-बदनी=चन्द्रमुखी । दधिहि=उदधि को, सागर के ज्वार जैसे विचारो को अर्थात् क्रोध को । निवारौ=दूर करो । दधि-सुत=उदधि सुत अर्थात् जगन्नाथ राक्षस । दधि-सुत मै=चन्द्रमा मे । दधि-सुत-पति=कृष्ण । धरहिं छाँड़िकै=पृथ्वी को छोड़कर मान का त्याग करके । धरहिं पकरि लै=धरन करके, प्रतिज्ञा करके । लता=बेल ; यहाँ वस्त्रों से तात्पर्य है । धनस्याम=काले केश । हार=हार नामक आभूषण । हार=पराजय । हार=कुंज-समूह । गोबर्धन-नाथ=कृष्ण । कलहंस=हंस-गति ।

प्रसंग—सखी के समझाने पर राधा मान छोड़कर कृष्ण से मिलने के लिए कुंजों में चल दी है । इसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(राधा का मान छुड़ाने के लिए उसकी सखी उसे समझा रही है कि) हे चन्द्रमुखी । तुम अपने मानजन्य क्रोध को दूर करो । अपनी राक्षसी दृष्टि को चन्द्रमा में मिलाकर अर्थात् अपना क्रोध छोड़कर तुम कृष्ण का ध्यान क्यों नहीं करती ? मान छोड़कर और (भविष्य में मान न करने की) प्रतिज्ञा करके तुम (कृष्ण से मिलने के लिए) वस्त्र धारण करो और अपने केशों को सँवारो । (गले में) हार पहनकर (तथा मान त्यागने की) अपनी पराजय स्वीकार करके कुंज-समूह में जाकर कृष्ण से मिलो । (यह बात समझकर और अपना मान त्यागकर) राधा प्रिय कृष्ण से प्रेमपूर्वक मिलने के लिए चल दी । सूरदास कहते हैं कि हम-गति से गली में जाती हुई राधा को देखकर मैं उस पर अपना तन न्यूँछावर करता हूँ ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—अभिसारिका नायिका ।

अलंकार—१. 'दधि-सुत.....निहारौ' में 'दधि', 'भर' और 'हार' शब्दों की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'विद्यमान कलहंस जात गलि' केवल उपमान (कलहंस) का कथन होने से रूपकानिश्चयोक्ति अलंकार ।

: ४१ :

राग सौरा

राधे, हरि-रिपु क्यों न छिपावति ।

मेरु-सुता-पति ताकें पति-सुत ताकौं क्यों न मनावति ॥

हरि-बाहन-ता बाहन उपमा, सो तैं धरें दृढ़ावति ।

नव अरु सात बीस तोहि सोभित, काहे गहर लगावति ॥

सारंग वचन कह्यौ करि हरि सौं, सारंग वचन न भावति ।

सूरदास प्रभु दरस बिना तुव, लोचन नीर बहावति ॥३३६६॥

शब्दार्थ—हरि-रिपु - क्रोध (हरि सूर्य, उसका रिपु अंधकार अर्थात् क्रोध) । मेरु-सुतापति ताकै पति-सुत=कामदेव (मेरु-सुता पार्वती, उसका पति शिव, उनके पति कृष्ण, उनका सुत अनिरुद्ध अर्थात् कामदेव) । हरि-बाहन-ता-बाहन=जड़ता (हरि बन्दर, उसका बाहन वृध, उसका बाहन पृथ्वी अर्थात् जड़ता) । नव अरु सान=सौलह, सौलह शृंगार । वीम=विष, विष । गहर=देर । सारंग वचन=अमृत-वचन । हरि=कृष्ण । सारंग वचन=बाण-वचन, बाण के समान पीड़ा देने वाले कठोर वचन । न भावति=शोभा नहीं देते हैं । तुव=तब, तुम्हारे ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तू अपना क्रोध क्यों नहीं छिपाती और कामदेव की आराधना क्यों नहीं करती; अर्थात् तू अपना क्रोध छोड़कर कृष्ण के साथ गहर्ष रति-लीला कर । तू दृढ़तापूर्वक जड़ता को क्यों धारण किये हुए है ? सौलह शृंगार तुझे विष के समान लग रहे हैं; अर्थात् तुमने शृंगार करना भी छोड़ दिया है । (यह उचित नहीं है, अतः तू शीघ्र ही शृंगार करके अपने प्रियतम से मिल । उससे मिलने में) तू क्यों देर कर रही है । (कृष्ण के पास जाकर) कृष्ण से अमृत के समान सुख देने वाले वचन कहो, बाण के समान पीड़ा देने वाले कठोर वचन तुम्हें शोभा नहीं देते हैं । हे सुन्दरि ! तुम्हारे दर्शन के बिना कृष्ण (वियोग-दुख से दुखी होकर अपनी) आँखों से आँसू बहा रहे हैं ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'नव अरु सान वीग तोहि सोभित' में वाचक और उपमेय शब्दों का लोप होने से वाचकोपमेयलुप्तोपमा अलंकार ।

२. 'सारंग वचन कह्यौ करि हरि सौं सारंग वचन न भावति' में 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक प्रावृत्ति होने से यमक अलंकार ।

: ४० :

राग नट

राधे, हरि-रिपु क्यों न दुरावति ।

सैल-सुता-पति-तासु-सुता-पति-ताकै-सुताहि मनावति ॥

हरि-बाहन-सोभा यह ताकी, कैसे धरै सुहावति ।

द्वे अरु चार छहौं वै बीते, काहें गहर लगावति ॥

नव अरु सात ए जु तोहि सोभित, ते तू कहा दुरावति ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, सारंग भरि-भरि आवति ॥३३६७॥

शब्दार्थ—हरि-रिपु=क्रोध । दुरावति=छिपाती है, दूर करती है । सैल-सुता-पति-तासु-सुता-पति-ताकै-सुतहि=कामदेव को (सैल-सुता नदी, उमका पति समुद्र, उमकी सुता लक्ष्मी, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण, उमके सुत को अनिरुद्ध को अर्थात् कामदेव को) । हरि-बाहन-सोभा=(घूँघट हरि सूर्य, उमका बाहन घोड़ा, उसकी सोभा घूँघट) । द्वै अरु चार छहौं=बारहों, बारह घड़ी । गहर देर । नय अरु सात=सोलह, सोलह शृंगार । सारँग=नेत्र, आँखें ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—हे राधे । तू अपना क्रोध दूर क्यों नहीं करती है और कामदेव की आराधना क्यों नहीं करती है ? तुझे यह घूँघट (कृष्ण के प्रति प्रीति) सोभा नहीं देता । बारह घटियाँ बीत चुकी हैं, (फिर भी तू प्रियतम से मिलने में) क्यों देर लगा रही है ? प्रीति प्राना मान छोड़कर शीघ्र अपने प्रियतम से मिल । जो सोलह शृंगार तेरी योग्य बढ़ाने वाले हैं, उन्हें तू क्यों छिपा रही है ? प्रीति तू शृंगार क्यों नहीं कर रही है ? तुम्हारे मिलने के लिए कृष्ण की आँखें (आँसुओं से) भर-भर आ रही हैं ? अर्थात् तुम्हारे वियोग में कृष्ण अत्यंत व्याकुल होकर निरंतर रो रहे हैं ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'सैल-सुता-पति-तासु-सुता-पति' में 'सुता-पति' की आवृत्ति और तात्पर्य से अर्थ की भिन्नता होने से लाटानुप्रास अलंकार ।

२. 'सारँग भरि-भरि आवति' में 'भरि' शब्द की आवृत्ति होने से पुनरुक्ति अलंकार ।

४३ :

राग सारँग

राधे, हरि-रिपु क्यों न दुरावत ।

सारँग-सुत-बाहन की सोभा, सारँग-सुत न बनावत ॥

नैन नना पति न तासु पति-ताकै-सुतहि मनावत ।

हरि-बाहन-के भीत-तासु-पति-ता-पति तोहि बुलावत ॥

राका-पति नहिं कियौ उदौ सुनि, या समये नहि आवत ।

विबिध बिलास आनन्द रसिक सुख, सूर स्याम गुन गावत ॥३३६॥

शब्दार्थ—हरि-रिपु=क्रोध । सारँग-सुत-बाहन=नेत्र (सारँग समुद्र, उमका सुत चन्द्रमा, उसका बाहन मृग अर्थात् नेत्र) । सारँग-सुत काजल (सारँग दीपक, उसका सुत काजल) । सैल-सुता-पति-ताकै-सुत-पति-ताकै-सुतहि=मदता को (सैल-सुता नदी, उसका पति समुद्र, उसका सुत चन्द्रमा, उसका पति सूर्य, उमका सुत अनिरुद्ध अर्थात् मदता) । हरि-बाहन-के-भीत-तासु-पति-ता-पति=कृष्ण (हरि इन्द्र, उसका

बाहुन मेघ, उसका मीत जल, उसका पति वरुण, उसका पति कृष्ण) । राका-पति = चन्द्रमा । गुन गावत गुणों का गान करते हैं, प्रशंसा करते हैं ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तू मानजन्य क्रोध को क्यों नहीं छोड़ रही है ? काजल को नेत्रों में क्यों नहीं लगा रही है ; अर्थात् प्रियतम से मिलने के लिए तू शृंगार क्यों नहीं कर रही है ? तू मंदता को मना रही है; अर्थात् मानजन्य दुख के कारण विषाद से भरी हुई है । कृष्ण (तुझसे मिलने के लिए आतुर हैं, इसलिए वे बार-बार) तुझे बुला रहे हैं । हे राधे ! सुनो, अभी चन्द्रमा उदित नहीं हुआ है (अतः अभिसार के लिए ऐसा उपयुक्त) समय फिर नहीं आयेगा । विविध विलासों का आनंद लेने वाले रसिक-शिरोमणि कृष्ण तेरी अत्यधिक प्रशंसा करते हैं; अर्थात् तेरे गुणों पर पूर्णतया अनुरक्त हैं ।

रस—शृंगार रस

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'सारंग-सुत-बाहुन की शोभा सारंग-सुत न बनावत' में 'सारंग-सुत' की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'रसिक मुख' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार ।

: ४४ :

राग सारंग

राधा, तै बहु लोभ कर्यौ ।

लावन-रथ-ता-पति-आभूषन, आनन ओप हर्यौ ॥

मृग, कोदंड, अवनिधर चपला, बिबस जु कीर अर्यौ ।

पिक, मृनाल-अरि-ता-अरि रूपहि, तै बपु आपु धर्यौ ॥

जलचर राज मृगराज सकुचि जिय, सोचनि जाइ पर्यौ ।

सूरवास प्रभु कौ मिलि भामिनि, निसि सब जाति टर्यौ ॥३३६॥

शब्दार्थ—लावन-रथ-ता-पति-आभूषण = चन्द्रमा (लावन-रथ वैल, उसका पति महादेव, उसका आभूषण चन्द्रमा) । ओप = कांति । कोदंड = धनुष । अवनिधर = शेषनाग अर्थात् सर्प के समान वेणी) । चपला = बिजली, बिजली के समान हास्य । कीर = शुक, शुक-चंचु के समान नायिका । मृनाल-अरि-ता-अरि = ग्रहण करना (मृनाल का शत्रु हाथी, उसका अरि ग्राह अर्थात् ग्रहण करना) । जलचर = मछली । मृगराज = सिंह ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तूने बहुत लोभ किया है; अर्थात् तुमने सौंदर्य का अर्जन तो खूब किया है, पर उसका उपयोग करके उसे व्यय नहीं कर रही हो । तुम्हारे मुख की

कांति ने चन्द्रमा की शोभा को, नेत्रों ने हरिण की शोभा को, भौंहों ने धनुष की शोभा को, वेणी ने सर्प की शोभा को और हास्य ने विजली की शोभा को हर लिया है। तुम्हारी नासिका की शोभा देखकर शुक विवश होकर अड गया है; अर्थात् लज्जित हो गया है। तुम्हारी वाणी ने कोयल का, भुजाओं ने मृणाल का और जंघाओं ने हाथी का रूप ग्रहण कर लिया है। तुम्हारे नेत्रों की चंचलता देखकर मकली, जंघाओं का सौंदर्य देखकर हाथी और कटि की क्षीणता देखकर सिंह अपने मन में संकुचित होकर दुखी हो रहे हैं। हे भामिनि ! शीघ्र कृष्ण से मिलो, क्योंकि सम्पूर्ण रात्रि समाप्त होने वाली है (फिर मिलन का अवसर नहीं मिल पायेगा) ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'लावन-रथ-ता-पति-आभूषण, आनन ओष हर्यौ' में प्रसिद्ध उपमान का अनादर होने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार ।

२. 'मृग कोदंड' 'धर्यौ' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

३. 'जलचर गज मृगराज सकुचि जिय सोचनि जाइ पर्यौ' में प्रसिद्ध उपमानों का अनादर होने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार ।

: ४५ :

राग नट

कहि पठई हरि बात सु चित द, सुनि राधिके सुजान ।
ते जु बदन भाँप्यौ भुकि अंचल, यहै न दुख मों मान ॥
इहि पै दुसह जु इतनेहि अन्तर, उपजि परे कलु आन ।
सरद सुधा-ससि की नव कीरति, सुनियत अपने कान ॥
खंजरीट, मृग, मोन, मधुप, पिक, कीर करत हं गान ।
बिद्रुम अरु बंधूक बिम्ब-मिलि, देत कविनि छबि दान ॥
दाड़िम, दामिनि, कुन्द-कली मिलि, बाह्यौ बहुत बखान ।

सूरदास उपमा नछत्र-गन, सब सोभित बिनु भान ॥३३८७॥

शब्दार्थ—भाँप्यौ = ढक लिया । दुसह = दुसह्य । खजरीट = खंजन । बिद्रुम = मूंगा । बंधूक = दुपहरिया का फूल, जिसका रंग लाल होता है । बखान = प्रशंसा । नछत्र-गन = तारागण । भान = भानु, सूर्य ।

प्रसंग - मानवती राधा को दूती कृष्ण का सदेश दे रही है ।

अर्थ—हे सुजान राधे ! कृष्ण ने जो सदेश देकर मुझे यहाँ भेजा है, उसे ध्यानपूर्वक सुनो । (उन्होंने कहा है कि उन्हें देखकर) तुमने भुक्कर अपने अंचल से जो मुख ढँक लिया था, इसका मैं दुख नहीं मानता । इतने ही अंतर से; अर्थात् इतनी छोटी-सी घटना से ही जो दुख मुझे असह्य हो उठा उसका कारण कुछ और ही है ।

(तुम्हारे मुख के अंचल में छिप जाने से) मैंने शरदकालीन चन्द्रमा की नवीन कीर्ति अपने ही कानों सुनी है। (अब) खजन, मृग, मीन, मधुप, पिक और शुक प्रसन्नता से गीत गाते हैं। भूंगे, दुपहरिया के फूल और बिम्बाफल कवियों को शोभा का दान दे रहे हैं। अतार, विजली और कमल-कली की बहुत प्रशंसा बढ़ गई है, क्योंकि सूर्य के अभाव में (सूर्य के छिप जाने पर) सभी तारागण शोभा-सम्पन्न हो जाते हैं।

कहने का भाव यह है कि पहले तो प्रकृति के ये सभी उपकरण तुम्हारे सौंदर्य के कारण गुणहीन बन गये थे, पर तुम्हारे मुख के छिप जाने पर इनके गुण फिर उदित हो गये हैं।

विशेष—परम्परागत उपमानों का नवीन शैली में बहुत ही प्रभावशाली प्रयोग हुआ है।

रस— शृंगार रस।

नायिका—मानवती नायिका।

अलंकार—प्रसिद्ध उपमानों का अनादर वर्णित होने से प्रतीप (तृतीय) अलंकार।

: ४६ :

राग सारंग

रही बं घूँघट पट की ओट।

मनौ कियो फिर मान मवासौ मनमथ बंकट कोट ॥

नह-सुत कील, कपाट सुलच्छन, बं दृग-द्वार अगोट।

भीतर भाग कृष्ण भूपति कौ, राखि मधुर मधु मोट ॥

अंजन, आड़, तिलक, आभूषण, सजि आयुध बड़ छोटे।

भृकुटी सूर गही करि सारंग, करत कटाच्छनि चोट ॥३३८८॥

शब्दार्थ—मवासौ=निवास। बंकट कोट=दुर्गम दुर्ग। नह-सुत=नख के पुत्र अर्थात् नख-चिन्ह। अगोट=रोककर, बंद करके। मोट=गठरी। आयुध=हथियार। सारंग=बाण। कटाच्छनि=कटाक्षों की।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी परिहास कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! तुमने घूँघट-पट से अपने मुख को (फिर) ढँक लिया है (जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है) मानो कामदेव के दुर्गम दुर्ग में मान ने फिर से निवास कर लिया है। यद्यपि तुमने दृग-रूपी द्वारों को पलक-रूपी किवाड़ों से बंद करके उन पर नख-चिन्ह-रूपी कीले गाड़ दी हैं, तथापि (मैं भली प्रकार समझ गई हूँ कि) उसके भीतर तुम मूल्यवान गठरी की भाँति राजा कृष्ण को संजोये हुए हो। कहने का भाव यह कि आँखें बंद करके मान करना तो दिखावा मात्र है, वस्तुतः तुम एकाग्र चित्त होकर कृष्ण की स्मृति में तन्मय हो। तुम काजल, आड़े तिलक, आभूषण तथा और छोटे-बड़े हथियारों से सुसज्जित होकर भृकुटी-रूपी धनुष पर कटाक्षों के

बाण चढ़ाकर चोट कर रही हो; अर्थात् कृष्ण को पराजित करने पर तुली हुई हो जिससे वे तुम्हारे पाम आकर अनुनय-दिनय करके तुम्हें मनावे ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. राधा पर दुर्ग का साग आगेप होने से गांगरूपक अलंकार ।

२. 'मनौ कियौ फिरि मान मयागौ मनमथ बकट कोट' में अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतुप्रेक्षा तथा 'म' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

: ४७ :

राग बिलावल

तें जु नील-पट श्रोत दियौ री ।

सुनि राधिका, स्याम सुन्दर सौ, बिनाहं काज अति रोष कियौ री ॥

जल-मुत-बिम्ब मनहुँ जल राजत, मनहुँ सरद-ससि राहु लियौ री ।

भूमि-धनन किधौ कदक खम्भ चढ़ि, मिलि रस हो रस अमृत पियौ री ॥

तुम अति चतुर सुजान राधिका, कत राख्यौ भरि मान हियौ री ।

सूरदास प्रभु अँग-अँग नागरि, मनहुँ काम ब्रियौ रूप दियौ री ॥३३८६॥

शब्दार्थ—नील-पट=नीला वस्त्र । जल-मुत-बिम्ब=कमल की छाया ।

भूमि-धनन=सर्प । काम=कामदेव । ब्रियौ=दूसरा ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—हे राधे ! सुनो, तुमने जो नीले वस्त्र से अपने मुँह को ढँक लिया है (यह उचित नहीं है, क्योंकि) तुमने बिना कारण ही कृष्ण से अव्यधिक क्रोध किया है । (नीले प्रचल में ढँक जाने के कारण तुम्हारा मुख इस प्रकार दिखाई देता है) मानो जल में कमल की छाया मुशोभित हो, अथवा मानो शरदकालीन चद्रमा को राहु ने ग्रस लिया हो । अथवा सर्प ने मोने के खम्भे पर चढ़कर मारा रसामृत ही पी लिया हो । हे राधे ! तुम तो अत्यन्त चतुर और गुणवती हो, फिर तुमने अपने हृदय में भारी मान क्यों धारण कर रक्खा है ? हे नागरि ! सुनो, कृष्ण का प्रत्येक अंग इतना सुन्दर है मानो कामदेव ने ही दूसरा रूप धारण कर लिया हो; अर्थात् कृष्ण तो कामदेव के अवतार हैं ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'जल-मुत-बिम्ब मनहुँ जल राजत, मनहुँ सरद-ससि राहु लियौ री' में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की कल्पना होने से वस्तुप्रेक्षा अलंकार ।

२. 'भूमि-धसन किधौ कनक खम्भ चढ़ि मिलि रस ही रस अमृत पियौ री' में सदेह अलंकार ।

३. 'मनहुँ काम बियौ रूप कियौ री' में वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

: ४८ :

राग बिलावल

सारंग-रिपु की ओट रहे डुरि, सुन्दर सारंग चारि ।

ससि,मृग,फनिग,ध्वनिग,द्वे अँग अँग सारंग की अनुहारि ॥

तामैं एक और सुत-सारंग, बोलत बहुरि बिचारि ।

परकृत एक नाम हैं दोऊ, किधौ पुरुष किधौ नारि ॥

ढाँकति कहा, प्रेम-हित सुन्दरि सारंग नैकु उधारि ।

सूरदास प्रभु मोहे रूपहि, सारंग-बदन निहारि ॥३३६०॥

शब्दार्थ—सारंग-रिपु = घूँघट (सारंग दीपक, उसका रिपु वस्त्र अर्थात् घूँघट) । सारंग चारि = चन्द्रमा, हरिण, सर्प और कोयल । फनिग = सर्प । ध्वनिग = कोयल । सारंग की अनुहारि = कमल के समान । सुत-सारंग = कोयल का पुत्र अर्थात् वाणी । परकृत = प्रकृति, स्वभाव । सारंग-बदन = चार सारंगों से युक्त मुख ।

प्रसंग—मानवती राधा से कृष्ण की दूती कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! (मानजन्य रोष के कारण तुमने जो घूँघट कर लिया है, उस) घूँघट की ओट में चार सुन्दर सारंग (मुख-चंद्र, नेत्र-मृग, वेणी-सर्प और वाणी-पिक) छिपे हुए हैं । वे चार सारंग हैं—चन्द्रमा, मृग, सर्प और पिक । (इन चार सारंगों में से) दो सारंग (मुख और नेत्र) के रूप कमल के समान हैं । (घूँघट की ओट के कारण) उसमें एक और सारंग-सुत (वाणी) छिपा हुआ है तो बहुत ही मधुर बोलता है । वेणी और सर्प का स्वभाव एक है, यद्यपि इनके नाम दो हैं और (यह निश्चय नहीं हो पाता कि) ये पुरुष हैं अथवा नारी । हे सुन्दरि ! तुम अपना मुख क्यों ढँक रही हो । प्रेम के लिए अपना घूँघट तनिक तो उधारो । कृष्ण तुम्हारे सारंग-मुख (चार सारंगों से युक्त मुख) को देखकर तुम्हारे रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो गये हैं । (अतः तुम मान छोड़कर शीघ्र ही उनसे मिलो) ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'परकृत एक नाम है दोऊ, किधौ पुरुष किधौ नारि' में सदेह अलंकार ।

: ४६ :

राग बिलावल

इहि तेर वृन्दावन बाग ।

सुनि राधिके कदम्ब बिटप की, साखा एक अमी-फल लाग ॥

स्याम पीत कछु अरुन अमित छबि, बरनि जाइ नहि अंग बिभाग ।

अति सुपक्व मुरली के परसत, चुड़-चुड़ परत अमी रस राग ॥

ब्रज-बानता बर बारि कनकमय, रोकै रहति सुरासुर नाग ।

तुव प्रताप छुड़ सकत न सुन्दरि, सुक मुनि, मरकट, कोकिल, काग ॥

मैं मालिनि जतननि करि जुगयौ, सौंचत हाथ परे हैं दाग ।

सूर स्याम उठि परसि भामिनी, पिय पियूष पाएँ बड़ भाग ॥३३६१॥

शब्दार्थ—इहि तेर=यह तेरा । अमी-फल=अमृत का फल अर्थात् कृष्ण । अमित=अपार । बरनि जाइ नहि=वर्णन नहीं किया जा सकता । सुपक्व=अच्छी प्रकार से पका हुआ । बारि=मेड़, घेरा । सुक=(१) तोता, (२) शुकदेव । मरकट=(१) बन्दर, (२) हनुमान । कोकिल=(१) कोयल, (२) कोकिल ऋषि । काग=(१) कौआ, (२) काग भुमुंडी । पिय पियूष=(१) प्रियतम और अमृत, (२) प्रियतम के सुधाधर । बड़ भाग=बड़े भाग्य से ।

प्रसंग—मानवती राधा को मान तोड़ने के लिए दूती प्रेरित कर रही है ।

अर्थ—हे राधे ! यह वृन्दावन तेरा ही बाग ही है; अर्थात् तेरी ही केलि-भूमि है । इस बाग के कदम्ब के एक वृक्ष की शाखा पर अमृत-फल लगा हुआ है । यह कदम्ब का वृक्ष कुछ श्याम, कुछ पीला और कुछ लाल रंग का है । (वास्तविकता तो यह है कि इस वृक्ष के) अंगों की अपार शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता । वह अमृत-फल इतनी अच्छी प्रकार से पका हुआ है कि मुरली के स्पर्शमात्र से ही उभमें से अमृत-रस से पूर्ण राग चू-चूकर टपकने लगता है । ब्रज की सुन्दर गोपियाँ इस बाग की मेड़ हैं जो इसमें प्रवेश करने से सुर, असुर और नागों को रोके रहती हैं । हे सुन्दरि ! तुम्हारे प्रताप से तोता, मुनि, बन्दर, कोयल और कौवे भी इसमें नहीं घुस पाते । अथवा, इस केलि-स्थल का आनन्द आजन्म ब्रह्मचारी होने से शुकदेव, मुनि, हनुमान, कोकिल ऋषि और काग भुमुंडी भी नहीं जान पाए हैं । मैं इस बाग की मालिनी हूँ और मैंने बड़े ही यत्न से इसे सीचा है, इसे पुष्पित और पल्लवित किया है । इस कार्य को करते हुए मेरे हाथों में दाग भी पड़ गए हैं । हे सुन्दरि ! तू उठ और चलकर प्रियतम कृष्ण से मिल, क्योंकि प्रिय और पीयूष अथवा प्रियतम के सुधाधर बड़े ही भाग्य से मिलते हैं ।

दूती का कहने का भाव यह है कि हे राधे ! निकुंज में बैठे हुए कृष्ण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अतः तुम मान छोड़कर शीघ्र ही उनसे मिलो, क्योंकि प्रियतम का समागम बड़े सौभाग्य से मिलता है ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'सुन राधिके कदम्ब विपट की साखा एक अमी फल लाग' में केवल उपमान (वृक्ष) का कथन तथा उपमेय (कृष्ण) का निर्गहण होने से रूपकाति-शयोक्ति अलंकार ।

२. 'ब्रज-बनिता बर बारि कनकमय' में 'ब' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

३. 'ब्रज-बनिता बर बारि कनकमय रोकै रहति सुरामुर नाग' में वाचक शब्द का लोप होने से वाचकलुप्तोपमा अलंकार ।

४. 'तुव प्रताप छुइ सकत न सुन्दरि सुक मुनि मरकट कोकिल काग' में सुक, मुनि, मरकट, कोकिल और काग का एक ही 'छुइ सकत न' साधारण धर्म होने से मुनि; गेहि ग (प्रथम) तथा सुक, मरकट, कोकिल और काग का द्व्यर्थक होने से श्लेष अलंकार ।

५. बाग का कृष्ण पर सावयव आरोप होने से सागरूपक अलंकार ।

: ५० :

राग सारंग

राधे, यह छबि उलटि भई ।

सारंग ऊपर सुन्दर कदली, ता पर सिंह ठई ॥

ता ऊपर द्वं हाटक बरनौं, मोहन कुम्भ मई ।

ता पर कमल, कमल बिच बिद्रुम, ता पर कीर लई ॥

ता ऊपर द्वं मीन चरल है, सौतिनि साध रही ।

सूरदास प्रभु देखि अचम्भौं, कहत न परत कही ॥३३६७॥

शब्दार्थ—उलटि भई = विपरीत हो गई है । सारंग = कमल, चरण-कमल । कदली = केला । सिंह = कटि । हाटक = स्वर्ण । मोहन = मोहने वाले । कुम्भ = कलश । कमल = मुख कमल । बिद्रुम = मूँगा, अधर । कीर = शुक, नासिका । मीन = नेत्र । साध = इच्छा ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी अथवा कृष्ण की दूती कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! (कृष्ण के बिना तो) तेरी यह शोभा ही विपरीत हो गई है । अर्थात् व्यर्थ हो गई है । (उसकी शोभा का वर्णन करती हुई सभी या दूती कहती है कि) तुम्हारे कमल जैसे कोमल चरणों पर केले के गमान (दो) जंघाएं हैं । जघाओं पर सिंह की कटि के समान क्षीण कटि है । कटि पर स्वर्ण-कलशों के समान मन को मोहने वाले दो कुच हैं । कुचों के ऊपर कमल के समान सुन्दर मुख है । मुख के बीच मूँगे के समान लाल अधर है । अधर के ऊपर होने की चोच के समान नासिका है ।

नासिका के ऊपर मछलियों के समान दो चंचल नेत्र हैं, जिनके मौन्दर्य को देखने की इच्छा सौतों के मन में भी बनी रहती है। तुम्हारे इस अनुपम मौन्दर्य को देखकर कृष्ण भी आश्चर्यचकित है। उनसे भी तुम्हारे इस मौन्दर्य का वर्णन नहीं हो रहा है।

कहने का भाव यह है कि राधा के चरण कमल के समान कोमल हैं, जैसा कदली-स्तम्भ की भाँति पुष्ट है, कटि मिह की कटि के समान क्षीण है, कुच मोने के कलशों के समान सुन्दर एवं कठोर है, मुख कमल के समान सुन्दर है, अधर मूँग के समान लाल है, नासिका तोते की चोंच की तरह नुकीली है और नेत्र मछली के नेत्रों के समान सुन्दर तथा चंचल है।

विशेष— राधा के मौन्दर्य का वर्णन करने के लिए परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया गया है।

रस—शृंगार रस।

नायिका—मानवती नायिका।

अलंकार—१. केवल सारंग, कदली, मिह, कुम्भ, कमल, कीर, विद्रुम और मीन उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

२. 'कहत न परत कही' में अतिशयोक्ति अलंकार।

: ५१ :

राग बिलावल

जल-सुत-प्रीतम-सुत-रिपु-बन्धव-आयुध आनन बिलख भयो री।

मेरु-सुता-पति-वसत-जु-माथे कोटि प्रकास नसाइ गयो री॥

मारुत-सुत-पति-अरि-पुर बासी-पितु-बाहन भोजन न सुहाई।

हर-सुत-बाहन-असन-सनेही, मानहुँ अगल देह दौ लाई॥

उदधि-सुता-पति-ताकर-बाहन-ता-बाहन कैसे समुझावै।

सूर स्याम मिलि धर्म-सुवन-रिपु-ता-अवतारहिं सलिल बहावै॥३३६८॥

शब्दार्थ—जल-सुत-प्रीतम-सुत-रिपु-बन्धव-आयुध = रोग (जल-सुत कमल, उसका प्रीतम सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका रिपु अर्जुन, उसका बाधक भीम, उसका आयुध गदा अर्थात् रोग)। मेरु-सुता-पति-वसत-जु-माथे = चन्द्रमा (मेरु-सुता पार्वती, उसका पति शिव, उसके माथे पर बसने वाला चद्रमा)। नसाइ गयो = नष्ट हो गया। मारुत-सुत-पति-अरि-पुर-बासी-पितु-बाहन = जल (मारुत-सुत हनुमान, उसका पति राम, उसका अरि रावण, उसका पुर-बासी अगस्त्य, उसका पिता कुम्भ, कुम्भ जिसे बाहन करता है अर्थात् जल)। हर-सुत-बाहन-असन-सनेही = चदन (हर-सुत = कार्तिकेय, उसका बाहन मोर, उसका अगन सर्प, सर्प है जिसका सनेही अर्थात् चन्दन)। दौ = दौड़ाना। उदधि-सुता-पति-ताकर-बाहन-ता-बाहन = पक्ष (उदधि-सुता लक्ष्मी, उसका

पति विष्णु, उसका बाहन गरुड़, उसका बाहन पंख अर्थात् पक्ष) । धर्म-सुवन-रिपु-ता-अवतारहि=मान के कारण (धर्म-सुवन धर्मराज, उसका रिपु दुर्योधन, उसका अवतारहि अभिमान अर्थात् मान के कारण) । सलिल=जल, आंसू ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी अथवा कृष्ण की दूती कह रही है ।

अर्थ—(हे मानिनि ! तुम्हारे वियोग-दुख के कारण कृष्ण का) मुख वियोग-जन्य रोग से बिलख-बिलखकर (पीला) हो गया है । (उसका पीलापन इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे) करोड़ों चन्द्रमाओं का प्रकाश नष्ट हो गया है । (विरह के कारण) उन्हें जल और भोजन भी अच्छे नहीं लगते; अर्थात् वे निराहार रहते हैं । उनके शरीर पर लगा चन्दन इस प्रकार दग्धता है मानो उसमें दावानल लगा दी हो । वे अपने पक्ष को (अपनी स्थिति को) तुम्हें किस प्रकार समझावें (क्योंकि उनकी बात तो तुम सुनती ही नहीं हो) । तेरे मान के कारण (दुखी होकर वे) आंसू बहा रहे हैं । अतः (तू शीघ्र) कृष्ण से मिल ।

विशेष—इस पद की प्रथम, तृतीय और पंचम पंक्तियों के अर्थ इस प्रकार भी हो सकते हैं—

(क) जल-सुत कमल, उसका प्रीतम मूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका रिपु अर्जुन, उसका बांधव कृष्ण, उसका आयुध सुदर्शन अर्थात् दर्शन ।

(ख) मारुत सुत हनुमान, उसका पति राम, उसका अरि रावण, उसका पुर-वासी अगस्त्य, उसका पिता ब्रह्मा, उसका वाहन हंस, उसका भोजन मोती ।

(ग) उदधि-सुता लक्ष्मी, उसका पति विष्णु, उसका वाहन गरुड़, उसका वाहन मन, उसका वाहन इन्द्रियाँ अर्थात् सर्वेन्द्रियाँ ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'जल सुत प्रियतम सुत रिपु बन्धव आयुध आनन बिलख भयौ री' में वाचक (समान) और धर्म (पीलापन) का लोप होने से वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

२. 'हर-सुत-बाहन-असन-सनेही मानहुं अनल देह दौ लाई' में चन्दन के स्थान पर दावानल का वर्णन होने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

: ५२ :

राग बिलावल

उठि राधे, कत रैन गँवावै ।

महि-सुत-गति तजि, जल-सुत-गति तजि, सिंधु-सुता-पति भवन न भावै ॥

अलि-बाहन-कौ-प्रीतम-बाला-ता-बाहन-रिपु ताहि सतावै ।

सो निवारि चलि प्रान पियारी, धर्म सु नहि मति भाव न पावै ॥

सैल-सुता-सुत-बाहन-सजनी-ता-रिपु-ता-मुख-सबद सुनावे ।

सूरदास प्रभु पंथ निहारत, तोहि ऐसी हठ क्यों बनि आवे ॥३४१॥

शब्दार्थ—महि-सुत-गति=जड़ता (महि-सुत वृक्ष, उसकी गति जड़ता) । जल-सुत-गति=धृष्टता (जल-सुत जोक, उसकी गति धृष्टता, क्योंकि वह धृष्ट बन कर ही दूसरों का खून पीती है) । सिन्धु-सुता-पति=कृष्ण (सिन्धु-सुता=लक्ष्मी, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण) । अलि-बाहन-कौ-प्रीतम-वाला-ता-बाहन-रिपु=काम-देव (अलि-बाहन कमल, उसका प्रीतम सिन्धु, उसकी वाला गंगा, उसका बाहन करने वाला शिव, उसका रिपु कामदेव) । धर्म सु नहि मनि = धर्म-रहित बुद्धि । सैल-सुता-सुत-बाहन-ता-रिपु-ता-मुख-सबद = फुंकार (सैल-सुता पार्वती, उसका सुत कार्तिकेय, उसका बाहन मोर, उसका रिपु सर्प, उसके मुख का सबद फुंकार) ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी अथवा कृष्ण की दूती कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! उठ (सकेत-स्थल पर प्रियतम से मिल), क्यों (व्यर्थ ही) रात गँवा रही है । तू अपनी जड़ता और धृष्टता छोड़कर (कृष्ण से मिल क्योंकि) कृष्ण को (तेरे बिना सब प्रकार की सुख-सामग्रियों से भरा हुआ) महल भी अच्छा नहीं लग रहा है । उन्हें कामदेव सता रहा है हे प्राणप्यारी ! तू अपना क्रोधजन्य मान छोड़कर (उनसे मिलने के लिए) चल । तुझे यह धर्म-रहित बुद्धि शोभा नहीं देती । हे सखि ! तू तो (क्रोध के कारण) फुंकार रही है और कृष्ण तेरा मार्ग देख रहे हैं । (समझ में नहीं आता कि) तू (अत्यन्त सहृदय होकर भी) क्यों ऐसी हठ पर अड़ी हुई है ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'महि-सुत-गति तजि, जल-सुत-गति तजि' में 'तजि' की आवृत्ति होने से आवृत्तिदीपक अलंकार ।

२. 'सैल-सुता-सुत' में 'स' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार ।

३. 'तोहि ऐसी हठ क्यों बनि आवे' में काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

: ५३ :

राग सारंग

जनि हठ करहु सारंग-नैनी ।

सारंग ससि सारंग पर सारंग, ता सारंग पर सारंग बेनी ॥

सारंग रसन दसन गुनि सारंग, सारंग-सुत वृग निरखनि पैनी ।

सारंग कहौ सु क्यों न बिचारौ, सारंग-पति सारंग रचि सैनी ॥

सारंग सदनिहि ले जु बरुनि गई, अजहुँ न मानति गत भई रेनी ।

सूरदास प्रभु तुब मग जोवे, अंधक-रिपु-ता-रिपु सुख बेनी ॥३४१॥

शब्दार्थ—जनि=मत । सारंग=नैनी=कमलनयनी । सारंग=कमल । ससि=नख-चन्द्र । सारंग=हाथी । सारंग=सिंह । सारंग=चक्रवाक । सारंग=कोयल । सारंग=अमृत । रसन=रसना । दसन=दाँत । सारंग=बिजली । सारंग-सुत = (१) मृग का वच्चा, (२) सारंग बाण, उसका सुत अनी । सारंग=(१) सरस, (२) सखी । सारंग-पति=कृष्ण । सारंग सैनी=कमल शैया । बरुनि=वारुणी, पश्चिम दिशा । अंधक-रिपु-ता-रिपु=वामदेव (अंधक एक राक्षस का नाम, उसका रिपु महादेव, उसका रिपु कामदेव) ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी अथवा दूती कह रही है ।

प्रार्थ—हे कमलनयनी राधे ! तुम हठ मत करो । तुम्हारे चरण कमल जैसे कोमल, नख चन्द्रमा की भाँति कांतियुक्त, जँघाएँ हाथी की सूँड की तरह पुष्ट है जिन पर सिंह की कटि के समान क्षीण कटि है । तुम्हारे चक्रवाक जैसे सुन्दर कुच और कोयल की वाणी के समान मधुर वाणी है । तुम्हारी रसना अमृतयुक्त है । तुम्हारे दाँत बिजली जैसी छवि वाले हैं । तुम्हारी आँखें मृग के बच्चे की आँखों की तरह सुन्दर अथवा बाण की अनी के समान पैनी हैं । मेरी सरस बात पर, जो मैं तुमसे कह रही हूँ, विचार क्यों नहीं करती ? अथवा हे मखि ! मैं जो कुछ कह रही हूँ तू उस पर ध्यान क्यों नहीं देती ? (तुमसे मिलने के लिए) कृष्ण ने कमलों की शैया रची हुई है । पश्चिम दिशा (रूपी नारी) चन्द्रमा (रूपी प्रियतम) को अपने घर में ले गई है, लेकिन तू अब भी नहीं मानती । (देख), रात बीती जा रही है । कृष्ण तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि काम के धर्मों में तू उन्हें सुख देने वाली है ।

रस—शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—१. 'सारंग ससि सारंग पर सारंग ता सारंग पर सारंग वैनी' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'सारंग रसन दसन गुनि सारंग' में रूपक अलंकार ।

३. 'सारंग-सुत मृग निरखनि पैनी' में वाक्क जड का लोप होने से वाचस्पत्योपमा अलंकार ।

४. 'सारंग' जड की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

: ५४ :

राग मलार

सखी रो हरि बिनु है बुख भारी ।

सिंहिका-सुत हर-भूषण ससि ज्यों, सोइ गति भई हमारी ॥

सिखर-बन्धु-अरि क्यों न निवारत, पुहुप-धनुष कं बिसेष ।

चक्षुस्त्रुवा उर हार ससी ज्यों, छिनु दुतिया बपु रेख ॥

घट-सुत-असन-समय-सुत आनन, अमी-गलित जैसे मेत ।
जलधर व्योम अम्बु-कन मुँचत, नैन होड़ बदि लेत ॥
जदुपति प्रभु मिलि आन मिलावहु, हरि-रिपु आरत जानि ।
जैसे हरि करि बंधु प्रगट भए, तैसिय आरत मानि ॥
पट-आनन-बाहन कानन में, घन रजनी तहँ बासी ।

सूरदास प्रभु चतुर सिरोमनि चातक पिक त्रासी ॥३८४२॥

शब्दार्थ—गहिका-सुत = राहु । हर-भूषण = चन्द्रमा । गिखर-बधु-अरि = कामदेव (मिखर पर्वत अर्थात् कैलाश, उमका बधु शिव, उसका अरि कामदेव) । चच्छुस्नुवा = चक्षुश्चुवा, सर्प । दुनिया = द्वितीया, तृतीया का चन्द्रमा । वपु = शरीर । घट-सुत-असन-सुत = चन्द्रमा (घट-सुत अगस्त्य, उमका असन सागर, उमका सुत चन्द्रमा) । अमी-गलित = अमृतहीन । मेत = मेद, चरबी । व्योम = आकाश । अम्बु-कन = पानी की बूँदें । मुँचत = छोड़ता है, वरमाता है । हरि-रिपु = कामदेव । आरत = आर्त, दुखी । करि = हाथी । पट-आनन-बाहन = मोर (पट-आनन कान्तिकेय, उमका बाहन मोर)

प्रसंग—विरहिणी नायिका प्रियतम से मिलने के लिए आतुर होकर अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण के बिना मुझे भारी दुख है । जिस प्रकार राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है, वैसी ही मेरी दशा हो गई है; अर्थात् वियोग-दुख के कारण मैं मृत-प्राय हो गई हूँ । तुम कामदेव को क्यों नहीं रोकते जो पुष्प-धनुष लेकर हम पर आक्रमण कर रहा है । (विरह के कारण) हार सर्प की भाँति दश कर रहा है और शरीर द्वितीया के चन्द्रमा की तरह कानिहीन हो गया है, मुख अमृतहीन चन्द्रमा के समान बनकर चरबी-जैसा श्वेत हो गया है; अर्थात् कांति एवं शोभा से रहित बन गया है । मेरे नेत्र आकाश से पानी वरमाते हुए बादलों से होड़ ले रहे हैं; अर्थात् वे निरंतर आँसू वरमा रहे हैं । (हे सखि !) काम से पीड़ित जानकर मुझे कृष्ण से मिला दो । (गज को दुखी जानकर) जैसे कृष्ण गज की रक्षा के लिए प्रकट हुए, हमें भी वैसे ही गज के समान दुखी समझो । हे चतुर शिरोमणि प्रभु ! बन में मोर कूक कर, रात में बादल छा कर और चातक तथा कोमल अपनी वाणी सुनाकर मुझे त्रास दे रहे हैं ।

विशेष—नायिका की वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपत्निका नायिका ।

अलंकार—१. 'सिंहिका-सुत हर-भूषण ग्रसि ज्यो, सोइ गति भई हमारी' में उदाहरण अलंकार ।

२. 'चच्छुष्रवा उर हार ग्रसी ज्यौ' मे पूर्णोपमा अलंकार ।

३. 'जैसे हरि करि बंधु प्रगट भए, तैसिय आरत मानि' मे दृष्टांत अलंकार ।

: ५५ :

राग सारंग

कहँ लौं राखिय मन बिरमाई ।

इक टक सिव-धर नैन न लागत, स्याम-मुना गुन अनि जलि आई ॥

हर-बाहन-दिबि-बास-सहोदर-तिहि-पति उदित मुरछि महि जाई ।

गिरजा-पति-रिपु नख-सिख ब्यापत, बसत सुधा-प्रिय कथा सुनाई ॥

बिरहिनि बिरह आप बस कीन्हों, लेहु कमल जिमि पाँइ छुवाई ।

बेगहि मिलौ सूर के स्वामी, उदधि गुना पनि मिलि है आई ॥३६०२॥

शब्दार्थ—कहँ लौं = कब तक । बिरमाई = धोखा देकर । सिव-धर = पहाड़ ।

स्याम-मुता-सुत-धनि = ऊषा (स्याम-मुता रति, उमका पुत्र अनिरुद्ध, उसकी स्त्री ऊषा) ।

हर-बाहन-दिबि-बास-सहोदर-तिहि-पति = सूर्य (हर महादेव, उमका वाहन बैल (गो)

अर्थात् पक्षी, दिबि-बासी पक्षी अर्थात् गरुड़, उसका सहोदर अरुण उमका पति सूर्य) ।

गिरजा-पति-रिपु = कामदेव । सुधा-प्रिय = पपीहा । उदधि-गुना-पनि = मेघ (उदधि-

मुता सीपी, उसका पति मेघ) ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) की सखी नायक (कृष्ण) से कह रही है ।

अर्थ—(हे कृष्ण ! वह विरहिणी राधा) कब तक अपने मन को धोखा देकर रखे ? वह एकटक (तुम्हारा मार्ग देखती रहती है और निनिमेष दृष्टि के कारण उसकी पलकें) पहाड़-जैसी (स्थिर) हो गई है । रात को उसकी आँखें भी नहीं लगतीं; अर्थात् विरह के कारण वह सारी रात जागती रहती है । (जागते-जागते ही आकाश में) ऊषा प्रकट हो जाती है । सूर्य के उदित होने ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है । उसके प्रत्येक अंग में कामदेव (की वेदना) व्याप्त है । वह पपीहा की कथा अर्थात् पपीहा की प्रेम-निष्ठता को गुनकर ही जीवित बची है । उस विरहिणी को विरह ने अपने वश में कर लिया है । (अतः प्रायः उमके पाग बनकर) कमल की भाँति उसे अपने चरणों में आश्रय दीजिए । हे कृष्ण ! (जिम प्रकार चातक और सीपी के लिए स्वाति का मेघ मिल जाता है, उम्मी प्रकार) मेघ बनकर आप उससे शीघ्र मिलिये ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'लेहु कमल जिमि पाँइ छुवाई' में पूर्णोपमा अलंकार ।

२. 'बेगहि मिलौ सूर के स्वामी उदधि-मुता-पति मिलि है आई' में दृष्टांत अलंकार ।

: ५६ :

राग सारंग

माधव बिलमि बिदेस रहे ।

अमरराज-सुत-नाम-रैन-दिन, चितवत नीर बहे ॥

मारुत-सुत-पति नन्द-नेह तजि, हरि-भख बचन कहे ।

जल-रितु-नाम जान अब लागी, काके नेह नहे ॥

कुंती-पति-पितु-तासु-नारि-धर-ता-अरि अंग दहे ।

घट-सुत-रिपु-तनया-पति सजनी, उर अति कपट गहे ॥

सैल-सुता-पति-ता-सुत-बाहन, बोल न जात सहे ।

सूरदास यह बिपति स्याम सौं, को समुझाइ कहे ॥३६०३॥

शब्दार्थ—बिलमि=रम जाना । अमरराज-सुत-नाम-रैन-दिन=काग (अमरराज इन्द्र, उसका सुत जयंत, उसका दिन-रात का नाम काग) । मारुत-सुत-पति=कृष्ण (मारुत-सुत हनुमान, उसका पति राम अर्थात् कृष्ण) । हरि-भख=मिह का भक्ष्य मांस अर्थात् मास । जल-रितु-नाम=वर्षा । काके नेह नहे=किमके स्नेह से जीवित रहूँ । कुंती-पति-पितु-तासु-नारि-धर-ता-अरि=कामदेव (कुंती-पति पांडु; उसका पिता शांतनु, उसकी नारी गंगा, उसको धारण करने वाला शिव, उसका शत्रु कामदेव) । घट-सुत-रिपु-तनया-पति=कृष्ण (घट-सुत=अग्रस्त्य, उसका रिपु सागर, उसकी तनया लक्ष्मी, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण) । सैल-सुता-पति-ता-सुत-बाहन=मोर (सैल-सुता पार्वती, उसका पति महादेव, उसका पुत्र कार्तिकेय, उसका वाहन मोर) ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका राधा अपनी मखी से अपनी विरह-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) कृष्ण तो विदेश में ही रम गये हैं (यहाँ आने का नाम ही नहीं लेते) । काग को देखते ही मेरी आँखों से आँसू बहने लगते हैं (काग किसी प्रियजन की आने की पूर्व-सूचना देता है अतः कौवा को देखकर राधा को कृष्ण की याद आ जाती है और वियोगजन्य दुख के कारण वह रोने लगती है) । कृष्ण ने नन्द का घर छोड़ते समय अर्थात् विदेश जाते समय एक मास की अवधि (लौटने के लिये) बताई थी और अब तो वर्षा ऋतु भी प्रारम्भ हो गई है । मैं किमके स्नेह से जीवित रहूँ ? (कृष्ण के बिना) कामदेव मेरे अंगों को जला रहा है । हे सखि ! कृष्ण तो अपने मन में बहुत ही कपट लिये हुए थे (जो झूठ बोलकर चले गये) । (मेरी तो विरह में यह स्थिति हो गई है कि) मोर की कूक भी नहीं सही जानी । कौन है जो मेरी इस विपत्ति को कृष्ण से समझाकर कह दे (जिससे वे तुरन्त ही आकर दर्शन दें) ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—‘सूरदास यह विपति स्याम सौ को समुझाइ कहे’ में भंग्यंतर से अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति होने से पर्यायोक्ति अलंकार ।

: ५७ :

राग सारंग

प्रीत करि काहू सुख न लह्यौ ।

प्रीत पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यौ ॥

अलि-सुत प्रीत करी जल-सुत सौं, सम्पुट माँझ गह्यौ ।

सारंग प्रीत करी जु नाद सौं, सनमुख बान सह्यौ ॥

हम जो प्रीत करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ ।

सूरदास प्रभु बिनु दुख पावत, नैननि नीर बह्यौ ॥३६०८॥

शब्दार्थ—पतंग = शलभ । पावक = आग अर्थात् दीपक । जल-सुत = कमल । सम्पुट = पखुडियों के बीच का स्थान, कोप । सारंग = हिरन । नाद = संगीत ।

प्रसंग—विरहिणी गोपियाँ उद्वेग से कह रही हैं ।

अर्थ—(हे उद्वेग ! इस ससार में) प्रेम करके किसी ने भी सुख प्राप्त नहीं किया । शलभ ने दीपक से प्रेम किया तो उसने (उसकी लौ में) अपने प्राण जला लिये । अमर-शिशु ने कमल से प्रेम किया तो वह उसकी पखुडियों में वन्दी बना । हिरन ने संगीत से प्रेम किया तो उसे अपने हृदय पर बाण सहना पड़ा । हमने कृष्ण से प्रीति की है तो उन्होंने भी विदेश जाते समय कुछ नहीं कहा, अर्थात् धोखा देकर चले गये । हम कृष्ण के वियोग में दुख पा रही हैं और हमारी आँखों से निरन्तर आँसू बहते रहते हैं ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—‘प्रीत करि.....बान सह्यौ’ में उदाहरण अलंकार ।

: ५८ :

राग मलार

हरि-सुत पावस प्रगट भयो री ।

मारुत-सुत-बन्धु-पितु-प्रोहित, ता प्रतिपालन छाँड़ि गयो री ॥

हरि-सुत बाहन-असन-सनेही, सो लागत अँग अनल भयो री ।

मृगमद स्वाद मोद नहि भावत, दधि-सुत भानु समान भयो री ॥

बारिज-सुत-पति क्रोध कियो सखि, मेटि सकार दकार दयो री ।

सूरदास बिनु सिंधु-सुता-पति, कोपि समर कर चाप लयो री ॥३६३६॥

शब्दार्थ—हरि-सुत = कामदेव । पावस = वर्षा ऋतु । मारुत-सुत-बंधु-पितु-प्रोहित = जीव (मारुत-सुत भीम, उसका बंधु अर्जुन, उसका पिता इन्द्र, उसका

पृगेहिता वृक्षपति अर्थात् जीव । प्रतिपालन=पालन-पोषण । हरि-गुता-वाहन-अमन-गनेही=चन्द्रन (हरि-गुन कान्तिकेय, उमका वाहन मार, उमका भक्ष्य गर्प, उमका गनेही चन्द्रन) । अनल=आग । मृगमद=कस्तूरी । मोर=आनन्द । दधि-मुन=चन्द्रमा । वारिज-सुन-पति=कृष्ण (वारिज-गुन व्रज्या, उमका पति कृष्ण) । मेदि सकार लकार दधी=गुन का साकार मिटाकर उमके स्थान पर दधर अर्थात् दुध दिया । सिन्धु-गुता-पति=कृष्ण (सिन्धु-गुता लक्ष्मी, उमका पति सिन्धु अर्थात् कृष्ण) । गमर=रमर, कामदेव ।

प्रसंग विरहिणी नायिका (राधा) अपनी गली में अपनी शिगो-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

शब्द—(हे गणिव !) वरिष्कृतु में कामदेव उत्पन्न हो गया है । (मेरे उत्पीड़क समय में गुण न विदेज में बसकर) मुझे अपने जीव का पालन-पोषण करने के लिए छोड़ दिया है, अर्थात् किसी प्रकार में जीवित रह रही हूँ । चन्द्रन जरी में लगते ही आग बन जाता है । मुझे कस्तूरी का स्वाद और तज्जन्य आनन्द प्रच्छा नहीं लगता; अर्थात् आमोद देने वाले सभी पदार्थ मुझे दुःखदायक बन गए हैं । चन्द्रमा सूर्य के समान (जलाने वाला) बन गया है । हे राखि ! कृष्ण ने मुझ पर क्रोध किया, तभी तो उन्होंने गुन को मिटाकर मुझे दुख दिया । कृष्ण के शिवा (मुझे निर्बल जानकर) कामदेव ने भी क्रुद्ध होकर अपने हाथ में अपना धनुष ले लिया है, अर्थात् कामदेव मुझे गमार पीड़ा दे रहा है ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'हरि-मुन-वाहन-अमन-सनेही, गो लागन रंग अनल भगौ री' में कारण के विरुद्ध कार्य के वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार ।

२. 'दधि-मुन भानु समान भगौ री' में धर्म का कथन न होने में धर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

: ५६ :

राग सारंग

हर-कौ-तिलक हरि बिनु दहत ।

वै कहियत उदुराज अमृतमय, तजि सुभाव सो मोहि निवहत ॥

कत रथ थकित भयो पच्छिम दिसि, राहु गहनि लो मोहि गहत ।

छपौ न छीन होत सुन सजनी, भूमि-भवन-रिगु कहां रहत ॥

सीतल सिंधु जनम जा केरौ, तरनि तेज होइ कह धौ चहत ।

सूरदास प्रभु तुम्हारे मिलन बिनु, प्रान तजति यह नाहि सहत ॥३६७५॥

शब्दार्थ—हर-कौ-तिलक=चन्द्रमा । हरि=कृष्ण । उदुराज=चन्द्रमा ।

निवहत=निबट रहा है, मार रहा है । कत=क्या । छौ=क्षपा, रात्रि । भूमि-भवन-

पिपु - मुर्गा (भूमि में है भवन जिनका अर्थात् कीड़े, उनका रिपु मुर्गा) । तरनि तरणि, सूर्य ।

प्रसंग- विरहिणी राधा अपनी विरह-व्यथा अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) कृष्ण के बिना चन्द्रमा मुझे जला रहा है । सब लोग कहते हैं कि चन्द्रमा अमृतमय है (उसकी प्रकृति शीतलता प्रदान करने की है, पर यह) अपने स्वभाव को छोड़कर मुझे मार रहा है । क्या पश्चिम दिशा में जाकर इसका रथ रूक गया है (जो रात्रि समाप्त नहीं होती ?) जिस प्रकार राहु इमको ग्रस लेता है, उसी प्रकार यह मुझे ग्रस रहा है । हे सजनी ! सुनो, रात्रि समाप्त नहीं हो रही है । न जाने मुर्गा भी कहाँ चला गया है (जो बाँग देकर प्रातःकाल होने की सूचना नहीं देता ?) जिस चन्द्रमा का जन्म शीतल सागर से हुआ है, वही सूर्य के समान अग्नि धारण करके न जाने मुझसे क्या चाहता है । हे प्रभु ! तुम्हारे मिलन बिना मेरे प्राण भी (अब इस वियोग-दशा को सह नहीं पा रहे हैं और वे भी अब मुझे) छोड़ रहे हैं । भाव यह है कि इस वियोग-दुख के कारण मैं शीघ्र ही मर जाऊँगी ।

विशेष—परम्परागत विरह-वर्णन ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'वै कहियत उडुराज अमृतमय तजि सुभाव सो मोहि निबहत' में कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार ।

२. 'राहु गहनि लौ मोहि गहत' में पूर्णोपमा अलंकार ।

३. 'शीतल गिधु जनम जा केरी तरनि तेज होइ कह धी चहत' में कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार ।

: ६० :

राग सारंग

बैसी सारंग करहि लिए ।

सारंग कहत सुनत वै सारंग, सारंग मनिहि दिए ॥

सारंग थकित बेठि वह सारंग, सारंग बिकल हिए ।

सारंग धुकि, सारंग पर सारंग, सारंग क्रोध किए ॥

सारंग है भुज करनि बिराजत, सारंग रूप दिए ।

सूरदास मिलिहैं वै सारंग, तौ पै सुफल जिए ॥३६८४॥

शब्दार्थ—वैसी = बैठी है । सारंग = कमल, मुख-कमल । सारंग = (१) घन, (२) कृष्ण । सारंग = कामदेव । सारंग = नारी । सारंग = समुद्र । सारंग = आकाश । सारंग = वादल । सारंग = कृष्ण । सारंग = आभूषण । सारंग रूप = सर्प-तुल्य ।

प्रसंग—सखी सखी से विरहिणी नायिका (राधा) की वियोग-दशा का वर्णन कर रही है।

अर्थ—(हे सखि ! वह विरहिणी राधा) अपने मुख-कमल को हाथो पर रखकर बैठी है। यदि कोई सारंग (घन) कहता है तो वह सारंग (कृष्ण) समझती है, क्योंकि उसका मन कृष्ण में ही लगा हुआ है। वह नारी कामदेव से द्वार मानकर बैठी हुई है और हृदय में सागर-सी (अपार) विकलता है। यों काग म बादल पर बादल भूमते हुए चल रहे हैं, पर (कृष्ण अब भी उसकी रक्षा करने के लिए नहीं आ रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि) कृष्ण उस पर क्रोध किये हुए है। उनके हाथों में और भुजाओं में आभूषण सुशोभित है, पर दोनों प्रकार के आभूषण उसे सर्प-तुल्य लग रहे हैं। प्रवामी कृष्ण जब आकर उससे मिलेगे, तभी उसका जीवन फल होगा।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका।

अलंकार—‘सारंग’ शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

: ६१ :

राग सारंग

गौरी-पूत-रिपु-ता-सुत आए, प्रीतम ताहि निनारे।

सिव-बिरंचि जाके दोउ बाहन, तिन हरे प्रान हमारे ॥

मोहिं बरजत उठि गवन कियो हठि, स्वाद-लुब्ध रस आल।

कुंती-नंद-तात मुख जोवति, अरु बारति अतिचाल ॥

उगवें सूर छूटें पसु-बंधन, तो बिरहिनि रति मानें।

इहिं बिधि मिलें सूर के स्वामी, चतुर होइ सो जानें ॥३६६२॥

शब्दार्थ—गौरी-पूत-रिपु-ता-सुत = बुद्धि (गौरी-पूत = कार्तिकेय, उसका रिपु तारक या तारा, उसका सुत बुध अर्थात् बुद्धि) निनारे = त्याग कर दिया। विरंचि = ब्रह्मा। आल = प्याज का डठल। कुंती-नंद-तात = मृत्यु (कुंती-नंद कर्ण, उसका तात धर्मराज या यमराज अर्थात् मृत्यु)। अतिचाल = अतिचार, जब एक ग्रह किसी राशि का भोग-काल समाप्त किये बिना दूसरी राशि में चला जाता है, उसे अतिचार कहते हैं। पसु-बंधन = कठोर बंधन। रति = आनंद।

प्रसंग—विरहिणी नायिका राधा अपनी विरह-व्यथा का वर्णन अपनी सखा से कर रही है।

अर्थ—मेरे प्रियतम कृष्ण ने बुद्धि आने पर भी उसका त्याग कर दिया। अर्थात् वे कुबुद्धि के वशीभूत होकर यहाँ से विदेश चले गये। जिस कामदेव के शिव और ब्रह्मा दोनों वाहन हैं; अर्थात् वे दोनों भी जिसके वश में हैं, उसी कामदेव ने मेरे प्राणों का हरण कर लिया है (कामदेव मुझे भयकर पीड़ा दे रहा है)। प्याज के डठल के

लोभ में आकर मेरे मना करने पर भी कृष्ण मुझे छोड़कर विदेश चले गये । भाव यह है कि किसी अन्य सुन्दरी के प्रेम-पाश में बँधकर वे तुझे छोड़कर चले गये । प्रय में उनके अतिचार की निंदा करती हुई मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही हूँ । सूर्य उदित हो और वे कठोर वधन से मुक्त हो, तभी मैं विरहिणी आनन्द का अनुभव कर सकती हूँ । भाव यह है—जिस प्रकार सूर्योदय होने पर कमल की पखुरियों में बदी भ्रमर मुक्त हो जाता है और उमकी मुक्ति से विरहिणी भ्रमरी को अतीव आनन्द मिलता है, उभी प्रकार सौभाग्य से यदि कृष्ण पर-नारी के वधन से मुक्त हो जाये तो मुझे अतीव प्रसन्नता होगी । इस प्रकार कृष्ण उस विरहिणी से किस भाँति मिलेगे, इसे चतुर व्यक्ति ही जान सकता है ।

रस—विप्रलम्भ शृ गार रग ।

नायिका—प्रोषिपतिका नायिका ।

अलंकार—‘भोद्विं वरजग उठि गवन कियो’ में प्रतिबधक होने पर भी कार्य के होने का वर्णन होने से विभावना (तृतीय) अलंकार ।

: ६२ :

राग सारंग

हरि मोकों हरि-भख कहि जु गयौ ।

हरि दरसत हरि मुदित उदित हरि, हरि-ब्रज हरि जु लयौ ॥

हरि-रिपु-ता-रिपु-ता-पति-कौ-मुत, हरि बिनु प्रजरि दहै ।

हरि-कौ-तात परस उर अतर, हरि बिनु अधिक बहै ॥

हरि-तनया सुधि तहाँ बदति हरि, हरि अभिमान न ठायौ ।

प्रब हरि-दबन दिबा कुबिजा कौ, सूरदास मन भायौ ॥४००६॥

शब्दार्थ—हरि-भख=शेर का भक्ष्य मांस अर्थात् मांस । हरि=वादत् । हरि=मोर । हरि=इंद्र । हरि-ब्रज=ब्रज का सूर्य अर्थात् कृष्ण । हरि-रिपु ता-रिपु ता-पति-कौ-मुत=कामदेव (हरि मोर, उसका रिपु सर्प, उसका रिपु गरुड़, उसका पति विष्णु, उसका मुत कामदेव) । प्रजरि दहै=जला रहा है । हरि-कौ-तात=पवन (हरि=वदर अर्थात् हनुमान, उसका तात पवन) । हरि-तनया=सूर्य-पुत्री अर्थात् यमुना । बदति हरि=कौमल बोलती थी । हरि-दबन=कामदेव को दवाने वाला अर्थात् भोग ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) अपनी सखी से अपनी विरह-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण मुझसे (लौटने की) एक मांस की अवधि बनाकर गये थे (पर इतना अधिक समय बीतने पर भी लौटकर नहीं आये) । वादलों को देखकर मोर मन में प्रसन्न है, इंद्र भी (ब्रज को अनाथ जानकर) प्रसन्न है क्योंकि अब ब्रज में कृष्ण नहीं है । बिना कृष्ण के कामदेव मुझे जला रहा है । बिना कृष्ण के पवन

मेरे हृदय को छूकर और अधिक वेग से चल रहा है। मुझे यमुना (के उम तट की) याद आती है, जहाँ कोयल बोलती थी (और कृष्ण हमारे साथ रामलीला करने थे तब) कृष्ण अभिमान नहीं दिखाते थे। अब कृष्ण कुब्जा को भोग देकर अपनी मनचाही कर रहे हैं।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका।

अलंकार—‘हरि दरमत हरि मुदित उदित हरि हरि-व्रज हरि जु लयौ’ में ‘हरि’ शब्द की भिन्नार्थ आवृत्ति होने से यमक अलंकार।

: ६३ :

राग नट

ग्वालिन, छाँड़ि दै बिरह खर्यौ।

तेरे बिरह बिरहिनी व्याकुल, भुवन काज बिसर्यौ॥

कर पल्लव उड़पति रथ खेच्यौ, मृगपति बैर कर्यौ।

पंखी पति सब ही सकुचाने, चातक अनंग भर्यौ।

सारंग-सुर मुनि भयौ बियोगी, हिमकर गरब टर्यौ।

सूरदास सायर-सुत-हित-पति, देखत मदन हर्यौ॥५०१२॥

शब्दार्थ—उड़पति = चंद्रमा। सारंग-सुर = विरहिणी का स्वर। हिमकर = शीतलता से युक्त चंद्रमा। सायर-सुत-हित-पति = कांति (सायर सागर, उसका सुत चंद्रमा, उसका हित नक्षत्र, उसका पति दीप्ति अर्थात् कांति)।

प्रसंग—सखी विरहिणी राधा को समझा रही है।

अर्थ—हे ग्वालिन ! तू अपना भारी विरह छोड़ दे, क्योंकि तेरे विरह से अन्य विरहिणियाँ भी व्याकुल हैं और सृष्टि ने अपने कार्यों का त्याग कर दिया है; अर्थात् सृष्टि की व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो गई है। तुझसे बैर करके चंद्रमा ने अपने कर-पल्लवों से अपने मृगों की लगाम खींच ली है, जिगसे उसका रथ रुक गया है; अर्थात् रात्रि अपार बन गई है। (रात को बोलने वाले) सभी पक्षी सकुचित हो गये हैं; अर्थात् अपना चहकना छोड़कर चुप बैठे हैं। केवल चातक (अपनी बाणी से) काम-भावना को संचार कर रहा था, सो वह भी तुझ विरहिणी के स्वरों को सुनकर वियोगी बन गया है; अर्थात् उसने भी बोलना छोड़ दिया है। तुम्हारी विरहाग्नि से चंद्रमा भी इतना सतप्त हो गया है कि उसने भी शीतल होने का गर्व छोड़ दिया है। कामदेव ने देखते-देखते ही तुम्हारी कांति नष्ट कर दी है; अर्थात् वियोग के कारण तुम्हारे शरीर की कांति भी जाती रही है।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका।

अलंकार—१. ‘कर-पल्लव’ में वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप होने से वाचक-धर्मलुप्तोपमा अलंकार।

२. 'हिमकर गरव टर्यौ' मे 'हिमकर' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार ।

: ६४ :

राग कान्हारौ

सोचति राधा लिखति नखनि मै, बचन न कहति कंठ-जल-त्रास
छिति पर कमल, कमल पर कदली, तापर पंकज कियौ प्रकास ॥
तापर अलि सारंग सारंग-पति, सारंग-रिपु ले कीन्हौ बास ।
तहँ अरि-पंथ-पिता जुग उद्वित, बारिज बिबिध रंग भयौ अभ्रास ॥
सारंग-मुख ते परत अम्बु ढरि, मनु सिव पूजति तपति बिनास ।
सूरदास प्रभु हरि बिरहा-रिपु, दाहत अंग दिखावत बास ॥४०२६॥

शब्दार्थ—नखनि मै=नखों से । कंठ-जल-त्रास=गला सूख गया है । छिति=क्षिति, पृथ्वी । कमल=कमल-चरण । कदली=जंघा । पंकज=कमल-उदर । अलि=भ्रमर जैसी रोमराजि । सारंग-पति=चंद्र-मुख (सारंग रात्रि, उसका पति चंद्रमा अर्थात् चंद्रमुख) । सारंग-रिपु=केश (सारंग कमल, उसकी रिपु रात्रि अर्थात् केश) । अरि-पंथ-पिता=कर्णफूल (अरि-पंथ नदी यमुना, उसका पिता सूर्य अर्थात् कर्णफूल) । अम्बु=जल, आँसू ।

प्रसंग—राधा की विरह-दशा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि! (कृष्ण के) ध्यान में डूबी हुई राधा अपने नखों से (कृष्ण का चित्र) बना रही है । उमका गला सूख गया है । अतः मुख से वचन नहीं निकल रहे हैं । (चित्र बनाने समय उसने सबसे पहले) पृथ्वी पर कृष्ण के चरण-कमल बनाये, उन पर कदली-जैसी जघाएँ बनाईं । उन पर उदर, उदर पर भ्रमर-जैसी रोमराजि, फिर हृदय और हाथ बनाये । उस पर मुख-चंद्र और केशों को बनाया । (मुख और केशों के समीप) सूर्य-जैसे दो कर्णफूल बनाये । इन कमलों में उसे विविध रंगों का आभास हुआ; अर्थात् कृष्ण का सम्पूर्ण चित्र उसकी आँखों के आगे भूमने लगा, जिसके कारण उसके सुन्दर नेत्रों से आँसू ढरक कर (उसके कुचों पर) पड़ने लगे, मानो विरह की तपन बुझाने के लिए वह शिव की पूजा कर रही हो । (कैसी विचित्र स्थिति है, क्योंकि) जो कृष्ण दुखों का हरण करने वाले और विरह के शत्रु है, अर्थात् जिनके समीप रहने में दुख और विरह नष्ट हो जाते थे, वे ही अब हृदय में बगकर भी (उस विरहिणी के) शरीर को जला रहे हैं ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रापितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'छिति पर कमल, कमल पर कदली, तापर पंकज कियौ प्रकास' में केवल कमल, कदली, पंकज उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'सारंग' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

३. 'सारंग-मुख ते परत अम्बु ढरि, मनु सिव पूजति तपनि विनाम' मे अहेतु मे हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार ।

४. 'सूरदास प्रभु हरि बिरहा-रिपु' मे 'हरि' और 'बिरहा-रिपु' विशेष्यों का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार ।

: ६५ :

राग सारंग

ऊधौ, इतने मोहि सतावत ।

कारी घटा देखि बावर की, दामिनि चमकि डरावत ॥

हेम-सुता-पति-कौ-रिपु व्यापे, दधि-सुत रथ न चलावत ।

अम्बू-खंडन शब्द सुनत ही, चित्त चकृत उठि धावत ॥

कंचनपुर-पति-कौ-जो-भ्राता-ता-प्रिय बलहि न आवत ।

सम्भू-सुत-कौ-जो-बाहन है, कुहक असल सलावत ।

जद्यपि भूषन अंग बनारति, सो भुजंग ह्वं धावत ।

सूरदास बिरहिनि अति व्याकुल, खग-पति चढ़ि किन आवत ॥४२४३॥

शब्दार्थ—हेम-सुता-पति-कौ-रिपु=कामदेव (हेम-सुता पार्वती, उसका पति शिव, उसका रिपु कामदेव) । दधि-सुत=चन्द्रमा । अम्बू-खंडन=पपीहा । चकृत=चौककर । कंचनपुर-पति-कौ-जो-भ्राता-ता-प्रिय=निद्रा (कंचनपुर-पति रावण, उसका भ्राता कुम्भकर्ण, उसकी प्रिया निद्रा) । सम्भू-सुत-कौ-जो-बाहन=मोर (सम्भू-सुत कार्तिकेय, उसका बाहन मोर) । सलावत=सालता है, पीड़ा देता है । भुजंग=सर्प । खगपति=गरुड़ ।

प्रसंग—विरहिणी राधा उद्धव से अपनी विरह-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे उद्धव ! मुझे (प्रकृति के) इतने पदार्थ मताते हैं—आकाश की काली घटा और बिजली की चमक मुझे डरानी है । मेरी देह मे कामदेव व्याप्त होकर (मुझे अत्यधिक पीड़ा देता है, इस पर भी) चन्द्रमा अपना रथ नहीं चलाता; अर्थात् रात्रि व्यतीत नहीं होती । पपीहा का शब्द सुनते ही मेरा मन चौककर दौड़ने लगता है; अर्थात् मैं भौचक्की होकर कृष्ण को इधर-उधर देखने लगती हूँ । प्रयत्न करने पर भी मुझे निद्रा नहीं आती । मोर कूक करके मेरे हृदय को पीड़ा देता है । यद्यपि मैं (शांति प्राप्त करने के लिए) शरीर पर आभूषण धारण करती हूँ, किन्तु वे सर्प बनकर (काटने को) दौड़ते हैं । (हे उद्धव ! तुम्हीं बताओ कि जब मैं) विरहिणी इतनी वियोग-व्यथा से व्याकुल हूँ तो वे गरुड़ पर चढ़कर क्यों नहीं आते ?

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'अम्बू-खडन गव्व सुनत ही चित्त चक्री उठि धावत' में कारण-मात्र से कार्य होने से चपलानिगयोक्ति अलंकार ।

२. 'जद्यपि भूपन अंग बनावनि, सो शृंग ह्वै धावत' में मुख का कारण भी दुख का कारण होने से व्याघात अलंकार ।

: ६६

राग पङ्क्ति

हरि-सुत-सुत हरिके तनु अहि ।

ह्याँ को कहै कौन की बातें, ग्यान ध्यान कौ काहि ॥

को मुख भ्रमर तामु जुबती को, को जिन कंस हते ।

हमरे तौ गोपति-सुत अधिपति, बनति न औरनि ते ॥

मोरज रंघर रूप रुद्धिकारी, चितै-चितै हरि होत ।

कबहुँ कर करनी समेति लै, गंहुँ मान कै होत ॥

ता रिपु समै संग सिमु लोन्है, आवत है तन घोष ।

सूरदास स्वामी मनमोहन, कत उपजावत दोष ॥४६२॥

शब्दार्थ—हरि-सुत-सुत—कामदेव (हरि पवन, उसका सुत हनुमान, उसका सुत मकरध्वज अर्थात् कामदेव) । हरिके—सत्ता रहा है । ह्याँ=यहां । को मुख भ्रमर=उद्धव के मुख में क्या है ? निर्गुण ब्रह्म । तामु जुबती को=उसकी पत्नी कौन है ? माया । को जिन कंस हते=क्या को किंगने मारा ? गोपति-सुत=नंद-सुत कृष्ण । मोरज रंघर =मोर-पंख । ता रिपु =मान का रिपु अर्थात् वसंत ऋतु । दोष = विपरीत भावना ।

प्रसंग - उद्धव का निर्गुण ब्रह्म का उपदेश सुनकर गोपियों उससे कह रही है ।

अर्थ—(हे उद्धव !) कामदेव हमारे शरीर का सता रहा है । यहाँ ज्ञान-ध्यान की बातें कौन कहे, किममें कहे ? अर्थात् यहाँ ब्रज में तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म के उपदेश को सुनने वाला कोई नहीं है । (हम नहीं जानती कि) निर्गुण ब्रह्म क्या है ? माया क्या है ? कस को मारने वाला कौन है ? हमारे स्वामी तो केवल कृष्ण हैं । इनके अतिरिक्त और किसी से हमारा लगाव नहीं हो सकता । हमें तो (कृष्ण का) मोर-पंख धारण करने वाला रूप ही अच्छा लगता है जिसको देख-देखकर हम कृष्णमयी हो गई हैं । हमारे तनिक मान पर ही कृष्ण अपने हाथ में हमारा हाथ ले लेते थे; अर्थात् हमारी मनौतियाँ किया करते थे और बसंत ऋतु में शिशुओं को लेकर ब्रज की ओर आते थे । वे ही कृष्ण हमारे मन को मोहने वाले हमारे स्वामी हैं । (अपना निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर तुम क्यों हमारे मन में) विपरीत भावना उत्पन्न कर रहे हो; अर्थात् कृष्ण से हमें बिलग करने का तुम्हारा यह प्रयास उचित नहीं है ।

रस—भक्तिरस ।

नायिका प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'हरि-मुन-मुन हर्गि' में 'हरि' शब्द की भिन्नार्थक आवृत्ति होने से यमक अलंकार ।

२. 'को मुख भ्रमर तामु जुवनी को' में बाहर से उतर आने से बहिलापिका चित्रालंकार ।

३. 'चिन्तै-चिन्तै हरि होत' में 'चिन्तै' शब्द की भावपूर्ण आवृत्ति होने से पुन-रक्ति अलंकार ।

: ६७ .

राग सारंग

हरि हमको यों काहै बिसारी ।

प्रेम-तरंग बूझत ब्रजवासी तरत स्थाम सोइ हारी ॥

रिगु साधव पिक-बचन मुधाकर मरुत मंद गति भारी ।

सहि न सकति अति बिरह भास तन आगि सलाकनि जारी ॥

ज्यों जल थाकें मीन कहा करै, त्यों हरि मेलि अडारी ।

बिन अधोमुख नैन सूर प्रभु, कहियो बिपति हमारी ॥४७१॥

शब्दार्थ - बूझत = डूबे हुए है । गलाकनि = गलाकाश्रो से । अडारी = आश्रय-हीन । बिन = वियन । अधोमुख = नीचा मुंह करके ।

प्रसंग — गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं ।

अर्थ (हे उद्धव !) कृष्ण ने हमको इस प्रकार क्यों भुला दिया है । ब्रज-वासी प्रेम की लहरो में डूबे हुए हैं, इसलिए वे तर गये हैं और कृष्ण जो तैर रहे हैं, हार गये हैं । कहने का भाव यह है कि कृष्ण ब्रजवासी के प्रेम के गाम्भीर्य को नहीं समझ पाये हैं, इसलिए वे प्रेम के क्षेत्र में अनपत्न रहे हैं । वसन्तकृत, कोयल की वाणी और चंद्रमा हमारे शत्रु बन गये हैं । मंद गति से चलने वाला पवन भी हमें दुख दे रहा है । जिस विरह की हम कल्पना भी नहीं कर सकती थी, वही (अब हमें) आग की शलाकाओं से जला रहा है । जिस प्रकार जग के अभाव में मछली (शक्ति-हीन बन जाने के कारण) कुछ नहीं कर पाती, अर्थात् वह अनाथ बन जाती है, उसी प्रकार कृष्ण ने (विदेश जाकर) हमें आश्रयहीन बना दिया है । (अतः हे उद्धव! हम तुमसे) वियन करती हैं कि तुम कृष्ण से मुख और नेत्रों को भुकाकर (अत्यन्त करुण दशा बनाकर) हमारी विपत्ति कह देना ।

रस — विप्रलम्भ शृंगार रस

नायिका - प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'प्रेम तरंग बूझ ब्रजवासी तरत स्थाम सोइ हारी' में विरोधा-भास अलंकार ।

२. 'रिपु माधव पिक-बचन सुधाकर' में माधव, पिक-बचन और सुधाकर का एक ही धर्म 'रिपु' होने से तुल्ययोगिता (प्रथम) अलंकार ।

३. 'ज्यौ जल थाकै मीन कहा करै तौ हरि मेलि अडारी' में उपमेय और उपमान का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टांत अलंकार ।

: ६८ .

राग कर्णाटी

देखि रे, प्रगट द्वादस मीन ।

ऊधौ एक बार नँदलाल राधिका, आवत सखी सहित रस भोन ॥

गए नवकुंज कुसुमनि के पुंज करै, अलि गुंज सुख हम लवलीन ।

षट उडुगन षट मनिधरहू राजत हैं, चौबिस धातु चित्र केहि कीन ॥

षट इदु द्वादस पतंग मनु मधुप सुनि, खग चौबिन मधुरि रस पीन ।

द्वादस बिम्ब सौ बानबै बज्रकन, षट दामिनि जलजनि हँसि दीन ॥

द्वादस धनुष द्वादस विषका मोहन मन षट चिबुक चिन्ह चित चीन ।

द्वादस ब्याल अधोमुख भूलत मानौ कंज दल सौ बीस बसीन ॥

द्वादस मृनाल द्वादस कदली खम्भ, द्वादस दारिम सुमन प्रबीन ।

चौबीस चतुस्पद ससि सौ बीस मधुकर, अंग-अंग रस कंज नवीन ॥

नील नीलै मिली घटा दामिनि मनौ सब सिंगार सोभित हरि हीन ।

फिरि-फिरि चक्र गगन मैं अमी बतावत, जुबती जोग मोन कहू कीन ।

बचन रचन रस रास नंदनंदन त, जोग पौन हिरदै लवलीन ।

नद जसुदा दुखित गोपी ग्वाल गोसुत, मलिन दिन ही दिन दुखीन ॥

बकी बका सकटा तृन केसी वृषभ बिन गोपाल बैर इन कीन ।

ऊधौ परे पाँइ सूरज प्रभु मिलाइ, आरति हरै भई तन छीन ॥४४८७॥

शब्दार्थ—द्वादस मीन=बारह मीन, बारह नेत्र । रस भोन=आनन्द-मग्न होकर । उडुगन=चंद्रमा, मुख । मनिधर=सर्प, वेणी । पतंग=सूर्य, कर्णफूल । बज्रकन=हीरे, दाँत । धनुष=भौह । विषका=बाण, कटाक्ष । ब्याल=सर्प हाथ । सौबीस=एक सौ बीस नख । मृनाल=कमलदंड, भुजा । कदली खम्भ=केले के खम्भे, जंघाएँ । दारिम=अनार, मसूड़े । चतुस्पद=चौपाये । बकी=पूतना । बका=वक्रासुर । सकटा=अघासुर ।

प्रसंग—निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आये हुए उद्धव से गोपियाँ कह रही हैं ।

अर्थ—हे उद्धव ! एक बार राधा और कृष्ण अपनी सखी-सहित आनन्दमग्न होकर नवीन कुंजों में गये, जहाँ फूल खिले हुए थे और भौरे गूँज रहे थे । इस शोभा को देखकर हम सुख में लीन हो गई ; अर्थात् हमें अपार आनन्द हुआ । (यमुना के

जल में उनका प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण) हमने वारह नेत्र-रूपी मछलियाँ देखीं । छः मुख-रूपी चद्रमा तथा छः वेणी-रूपी सर्प सुशोभित होते देखे और चौबीस विचित्र धातुएँ देखी । छः मुख-रूपी चंद्र, वारह कर्णफूल-रूपी सूर्य, सरस चव्वन पक्षी, वारह बिम्बाधर, एक सौ वानवे दाँत-रूपी हीरे देखे, जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो छ. ब्रिज-लियाँ कमलों में हँस रही हों । वारह भुजा-रूपी मृणाल, वारह कटाक्ष-रूपी बाण, वारह जंघा-रूपी कदली स्तम्भ, वारह मसूड़े-रूपी अनार, चौबीस हाथ-पैर-रूपी चौपाये तथा एक सौ बीस नख-रूपी चद्रमा देखे । उनके प्रत्येक अंग ही शोभा रमपूर्ण कमल के समान थी । वे तीनों ऐसे दिखाई देते थे मानो नीले आकाश में दामिनी-युक्त घटाएँ आ मिली हों । अत्र कृष्ण के बिना राधा का और हमारा भी सारा शृंगार शोभाहीन है । (हे उद्धव ! तुम योग-साधना का उपदेश देते हुए हमें बार-बार ब्रह्मांड-चक्र में अमृत बतलाते हो और (हम) युवतियों को मौन रहकर योग-साधना करने को कह रहे हो, पर हमारा हृदय तो कृष्ण के वचन, कर्म और रासक्रीड़ा-रूपी योग की प्राणवायु से भरा हुआ है (इसलिए तुम्हारी योग-साधना के लिए उसमें स्थान नहीं है) । (हे उद्धव ! कृष्ण से कहना है कि उनके बिना) नंद और यशोदा दुखी हैं । गोपी, ग्वाल, बछड़े प्रति दिन मलीन हो रहे हैं । उनकी अनुपस्थिति में पूतना, वक्रासुर, अघासुर, केमी और वृषभासुर ने हमसे बैर ठान लिया है । हे उद्धव ! हम तुम्हारे पैरों पड़ती हैं, तुम हमें कृष्ण से मिलाकर हमारा दुख दूर करो । (उनके विरह में) हमारे शरीर बहुत दुर्बल हो गये हैं ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोपेतपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'पट दामिनि जलजनि हँसि दीन' में वस्तुप्रेक्षा अलंकार ।

२. 'अँग-अँग रस कंज नवीन' में वाचक और साधारण धर्म का लोप होने से वाचक-धर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

३. केवल मीन, इन्दु, पतंग, मणिधर आदि उपमानों का कथन होने से रूप-कातिशयोक्ति अलंकार ।

: ६६ :

राग सारंग

हरि बिनु ऐसी बिधि ब्रज जीजें ।

कज्जल बरषि बरषि उर ऊपर, सारंग-रिपु जल भीजें ॥

तारा-पति-अरि के सिर ठाढ़ी, निमिष चैन नहिं कीजें ।

बायस-अजा-शब्द-की-मिलवनि, याही दुख तन छोड़ें ॥

चौथें चद जात गोपिन कौ, मधुप राखि जस लीजें ।

सूरदास प्रभु बेगि कृपा करि, प्रगट दरस हम दीजें ॥४५३२॥

शब्दार्थ—कज्जल=काजल मिले हुए आँसू । सारंग-रिपु=कचुकी (सारंग दीपक उसका रिपु वस्त्र अर्थात् कंचुकी) । तारा-पति-अरि=राह (तारा-पति-चंद्रमा, उसका रिपु राहु अर्थात् राह) । निमिष=पल भर । वायस-अजा-सव्द-की-मिलवनि=काम (वायम की बोली 'वाँव-काँव' और अजा की बोली 'मै-मे', दोनों मिलाकर 'कामै' अर्थात् काम) । चौथे=टुकड़े करता है । मधुप=भ्रमर, उद्धव । राखि—रक्षा करके ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं ।

अर्थ—(हे उद्धव !) बिना कृष्ण के हम ब्रज में किम प्रकार जीवित रह सकती हैं ? अर्थात् कृष्ण के वियोग में हमारा जीवित रहना अगम्भय है । काजल मिले हुए आँसू हमारे हृदय पर पड़ रहे हैं जिनसे हमारी कंचुकियाँ भीग रही हैं । हम राह के छोर पर गड़ी हुई कृष्ण की प्रतीक्षा करती रहती हैं । (उनके बिना) हमें पल-भर के लिए भी चैन नहीं मिलता । काम-भावना के दुग्ध से हमारे शरीर (निरन्तर) क्षीण होते चले जा रहे हैं । चन्द्रमा (विरहिणी) गोपियों के टुकड़े-टुकड़े कर रहा है; अर्थात् उन्हे अपार पीडा दे रहा है । हे उद्धव ! (कृष्ण को हमसे मिलाकर) हमारी रक्षा करके यश अर्जित करो । (तुम कृष्ण में यह प्रार्थना करना कि) हे प्रभु ! आप हमें शीघ्र ही दर्शन दे ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'हरि विनु ऐसी विधि ब्रज जीजै' में काकुवकोतिन अलंकार ।

२. 'कज्जल वरपि वरषि उर ऊपर' में 'वरपि' की आवृत्ति होने से पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार ।

: ७० :

राग नट

कहत कत परदेसी की बात ।

मंदिर-अरध अबधि बदि हमसौं, हरि-अहार चलि जात ।

ससि-रिपु बरष, सूर-रिपु जुग बर, हर-रिपु कोन्हौं घात ।

मघ पंचम लै गयो सांबरौ, तातैं अति अकुलात ॥

नखत-वेद-ग्रह-जोरि-अर्थ-करि, सोइ बनत अब खात ।

सूरदास बस भई बिरह के, कर मीजें पछितात ॥४५६॥

शब्दार्थ—मन्दिर-अरध=पक्ष, पन्द्रह । हरि-अहार सिंह का भोजन मांस अर्थात् मास । ससि-रिपु=दिन । सूर-रिपु=रात । हर-रिपु=कामदेव । मघ पंचम=मघा नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र चित्रा अर्थात् चित्त । नखत-वेद-ग्रह-जोरि-अर्थ-करि=नक्षत्र २७+वेद ४+ग्रह ९=४०, आधा बीस अर्थात् विष । मीजें=हाथ मल-मलकर ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) अपनी सखी से अपनी विरह-

व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ— हे सखि ! तुम प्रवासी कृष्ण की क्या बात कहती हो ? अर्थात् उसके विषय में तो कोई भी बात करना व्यर्थ है । वह हमसे (प्रवाग से लौटने की) पंद्रह दिन की अवधि बताकर गया था (और अब तो) एक महीना बीतने वाला है । (कृष्ण के वियोग में मुझे) दिन वर्ष के समान और रात युग के समान प्रतीत होती है । कामदेव (मुझे सारने के लिए) घात लगाये हुए है । कृष्ण मेरा चित्त (मन) अपने साथ ले गये है, इसी कारण मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ । अब तो मुझमें विष खाते ही बनता है । इस प्रकार वह विरहिणी नायिका हाथ मल-मलकर पछता रही है, अर्थात् बहुत दुखी हो रही है ।

विशेष—१. नक्षत्र गत्ताईन माने गये हैं जिनके नाम हैं— अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा और रेवती ।

२. वेद चार हैं— ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ।

३. ग्रह तो हैं— सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र शनि, राहु, और केतु ।

रस— विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका— प्रोतिपपितका नायिका ।

अलंकार— 'गिरि-गिरि वरप गुर-रिपु जुगवर' में वाचक और साधारण धर्म का लोप होने से वाचक-धर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

. ७१ :

राग सलार

ब्रज की कहि न परत हैं बातें ।

गिरि-तनया-पति-भूषन जैसे, बिरह जरी दिन रातें ॥

मलिन बसन हरि-हित अंतरगति, तन पोरौं जुनु पातें ।

गदगद बचन नैन जल पूरित, बिलख बदन कृस गातें ॥

मुक्ता-तात-भवन तैं बिलुरैं, सोन मकर बिललातें ।

सारंग-रिपु-सुत-सुहृद-पति बिना, दुख पावत बहु भातें ॥

हरि-सुर भयन बिना बिरहाने, छीन भई तन तातें ।

सूरदास गोपिन परतिगया, मिलहु पहिलै के नातें ॥४७४०॥

शब्दार्थ— गिरि-तनया-पति-भूषन चन्द्रमा (गिरि-तनया पार्वती, उसका पति शिव, उसका भूषण चन्द्रमा) । हरि-हित = कृष्ण-प्रेम । अंतरगति = हृदय में । कृस = कृश, दुर्बल । मुक्ता-तात-भवन = जल (मुक्ता-तात सागर, उसका भवन जन) । सारंग-रिपु-सुत-सुहृद-पति = कृष्ण (सारंग रात्रि, उसका रिपु सूर्य, उसका सुत सुग्रीव

उसका सुहृद् हनुमान, उसका पति राम अर्थात् कृष्ण) । हरि-सुर=कृष्ण की वाणी भषन=भोजन ।

प्रसंग—ब्रज से लौटकर उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं ।

अर्थ—(हे कृष्ण !) ब्रज की बातें कही नहीं जा रही हैं, अर्थात् ब्रजवासियों की, विशेषतः गोपियों की तुम्हारे विरह में जो दयनीय दशा हो गई है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । (गोपियाँ तुम्हारे विरह में) चन्द्रमा जैसे (शीतल पदार्थ से भी) विरह के कारण रात-दिन जली जा रही है । उनके वस्त्र मैले हैं, उनके हृदय में कृष्ण-प्रेम है (पर विरह के कारण) उनका शरीर पीला पड़ गया है मानो सूखा पीला पत्ता हो । (बात करते समय) उनकी वाणी गद्गद् हो जाती है, आँखें आँसुओं से भर जाती हैं, मुख उदाम हो जाता है । वे शरीर से अत्यन्त दुर्बल हो गई हैं । (तुम्हारे वियोग में वे उसी प्रकार तड़पती रहती हैं जिस प्रकार) जल से अलग होकर मछली और मगर तड़पते हैं । कृष्ण के बिना वे अनेक प्रकार के दुःख पा रही हैं । कृष्ण की वाणी-रूपी भोजन न मिलने के कारण वे शरीर में क्षीण हो गई हैं । (अतः हे कृष्ण !) तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पहले-जैसा प्रेम लेकर गोपियों से मिलो ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'गिरि-तनया-पति-भूषण जैसे विरह जरी दिन रात' में सुख-कारण का दुःख-कारण होने से व्याघात अलंकार ।

२. 'तन पीरौ जनु पात' में तन के स्थान पर पात की सम्भावना होने से वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

३. 'हरि-सुर भषन' में 'सूर' का 'भषन' पर अभेद आशेष होने से रूपक अलंकार ।

: ७२ :

राग मारू

उडुपति सौं बिनवति मृगनयनी ।

तुम कहियत उडुराज अमृतमय, तजि स्वभाव कत बरषत बहनी ॥

उमापती-रिपु अधिक दहत है, हरि-रिपु-प्रीतम सूख नितेनी ।

छपा न छीन होति सुनु सजनी, भूमि-घिसन-रिपु कहाँ दुरेनी ॥

स्याम सँदेस बिचार करति हों, कहाँ रहे हरि छाड़ जु छौनी ।

सूर स्याम बिनु भवन भयानक, जोहत रहति गोपाल की औनी ॥४८८४॥

शब्दार्थ उडुपति=चन्द्रमा । बहनी=आग । उमापती-रिपु=कामदेव । हरि-रिपु-प्रीतम=चन्दन (हरि मेंढक, उसका रिपु सर्प, उसका प्रिय चन्दन) । छपा=रात्रि । भूमि-घिसन-रिपु=ऊषा (भूमि-घिसन भूमि पर घिसटने वाले कीड़े-मकोड़े, उनका रिपु

कुक्कट अर्थात् चिनगारी दिन की चिनगारी, अर्थात् ऊषा)। छौनी=छावनी, पड़ाव ।
श्रौनी=आवनी, आगमन ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका चन्द्रमा से कह रही है ।

अर्थ—चन्द्रमा से मृगनयनी विनय कर रही है कि हे चन्द्रमा ! तुम तो अमृत-धारी कहे जाते हो; अर्थात् सबको सुख और शीतलना प्रदान करने वाले हो, तो अपना स्वभाव छोड़कर मुझ पर क्यों आग बरसा रहे हो । (विरह-व्यथा के कारण) मुझे कामदेव बहुत दुःख दे रहा है, (लगाया हुआ चन्दन) शीघ्र ही सूख जाता है । हे सजनी ! सुनो, रात भी तो कम नहीं होती न जाने ऊषा कहाँ छिप गई है? मैं कृष्ण के संदेश पर विचार करती हूँ (चलते रामय वे शीघ्र ही लौटने के लिए कहकर गये थे, पर न जाने) कहाँ पर अपना पड़ाव डाले हुए है (जो लौटने का नाम ही नहीं लेने)। कृष्ण के बिना यह भवन मुझे भयानक लगता है और (रात-दिन) उनके आगमन की प्रतीक्षा करती रहती हूँ ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—‘तुम कहियत उडुराज अमृतमय तजि स्वभाव को वरपन बहनी’ में कारण के विरुद्ध कार्य का वर्णन होने से विभावना (पंचम) अलंकार ।

: ७३ :

राग विभास

देखौ सखि, अकथ रूप अतूथ ।

एक अम्बुज मध्य देखियत, बीस दधि-सुत जूथ ॥

एक मुक तहँ दोइ जलचर, उभय अर्क अनूप ।

पंच बारिज एक ही ढिंग, कहौ कौन सरूप ॥

भई सिसुता माँह सोभा, करौ अर्थ बिचारि ।

सूर श्रीगोपाल की छबि, राखिए उर धारि ॥१०१०॥

शब्दार्थ—अकथ=अकथनीय । अतूथ=अत्यधिक उठा हुआ अर्थात् अत्यन्त रमणीय । दधि-सुत जूथ=चन्द्रमाओं का समूह, नख-समूह । मुक=शुक, नासिका । जल-चर=मीन, नेत्र । पंच बारिज=पाँच कमल—एक मुख, दो हाथ, दो पैर । त्रिगुता=बाल्यावस्था ।

प्रसंग—बाल कृष्ण अपने हाथ-पैरों को अपने मुख में दिग, खेल रहे हैं । उनकी इस शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! एक अकथनीय और अत्यन्त रमणीय रूप देखो । एक कमल के बीच में बीस चन्द्र-समूह दिखाई दे रहे हैं, अर्थात् एक मुख में बीस नख हैं । एक शुक (नासिका) दो मछली (नेत्र) और दो अनुपम सूर्य (कर्णफूल) भी वहाँ हैं । पाँच कमल (एक मुख, दो हाथ, दो पैर) एक ही स्थान पर (एकत्र) हैं । बन्नाओ तो यह

कौन-सा रूप है। यह (बालक कृष्ण की) बाल्यावस्था की ही शोभा है। इसका अर्थ विचारों और कृष्ण की (इस) छवि को अपने हृदय में धारण करो।

अलंकार—अम्बुज, उदधि-सुत, शुक, जलचर आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

: ७४ :

राग सामंत

कुंज में बिहरत नवल किसोर।

एक अचम्भौ देखि सखी री, उग्यौ सूर बिनु भोर।।

तहँ घन स्याम दामिनी राजत, द्वै ससि चारि चकोर।

अम्बुज खंजन मधुप आप मिलि, क्रीड़त एकहि खोर।।

तहँ द्वै कोर बिम्ब फल चाखत, बिद्रुम मुक्ता चोर।

चारि चिकुर आनन पर भलकत, नाचत सीसनि मोर।।

तामें एक अधिक छबि सोहै, हंस कमल इक ठोर।

हेमलता तमाल गही द्वै फल, मानौ देति अंकोर।।

कनक लता नीलम पर राजत, उपमा कहँ सब थोर।

सूरदास प्रभु इहि बिधि क्रीड़त, ब्रज-जुबती-चितचोर ॥प० ६०॥

शब्दार्थ—सूर=सूर्य। भोर=प्रातःकाल। दामिनी=विजली। द्वै ससि=दो चन्द्र। खोर=गली, स्थान। चिकुर=अलक। अंकोर=आलिंगन। थोर=थोड़ी, न्यून।

प्रसंग—कृष्ण राधा को लेकर कुंजों में बिहार कर रहे हैं। उनकी शोभा का वर्णन करती हुई सखी सखी से कह रही हैं।

अर्थ—कुंज में कृष्ण (राधा को लेकर) विहार कर रहे हैं। हे सखि! एक आश्चर्य की बात तो देखो कि बिना प्रातःकाल के ही सूर्य उग आया है (राधा कर्णफूल पहिने हुए हैं) वहाँ पर घनश्याम और विजली सुशोभित है तथा दो चन्द्र और चार चकोर (भी वहाँ) हैं (श्याम वर्ण कृष्ण और गौरांगी राधा, उनके दो मुख और चार नेत्र सुशोभित हैं)। कमल (मुख), खंजन (नेत्र) और भ्रमर (केश) परस्पर मिलकर एक ही स्थान पर क्रीड़ा कर रहे हैं। वहीं दो शुक (नासिका) बिम्बाफल (अधर) का रसास्वाद ले रहे हैं। विद्रुम मोतियों के चोर हैं, अर्थात् मसूड़ों में दाँत छिपे हुए हैं। हिलती हुई अलक उनके मुखों पर भलक रही हैं और सिरों पर मोर नाच रहे हैं, अर्थात् मोर-पंखों का मुकुट धारण किये हुए हैं। इसमें एक और भी सुन्दरता है कि हंस (गति) और कमल (चरण) एक ही स्थान पर हैं। (राधा और कृष्ण आलिंगन करते हुए इस प्रकार सुशोभित हैं मानो) हेमलता और तमाल दो फलों को लेकर परस्पर आलिंगन कर रहे हैं। अथवा कनकलता नीलम पर सुशोभित हो रही है। (इस सोन्दर्य की जितनी भी उपमाएँ दी जावें वे) सब थोड़ी हैं। ब्रज युवतियों के मन को चुराने वाले कृष्ण इस प्रकार (राधा के साथ) क्रीड़ा कर रहे हैं।

रस—संयोग शृंगार रस ।

नायिका—परकीया नायिका ।

अलंकार—१. 'उग्यो सूर बिनु भोर' में कारण के न होने हुए भी कार्य का वर्णन होने से विभावना (प्रथम) अलंकार ।

२. 'अम्बुज खजन मधुप आप मिली क्रीड़त एकहि खोर' में अम्बुज, खंजन और मधुप का एक ही साधारण धर्म होने से तुल्ययोगिता (प्रथम) अलंकार ।

३. 'अम्बुज चोर' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

४. 'हेमलता तमाल गद्दी द्वै पल मानों देति अँकोर' में एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु की सम्भावना होने से वस्तुतत्प्रेक्षा अलंकार ।

: ७५ :

राग केदार

जल-सुत-सुत-ताकौ-रिपु-पति-सुत, घेरि लई सखि हों कित ध्याऊँ ।

कालनेमि-रिपु-ताकौ-रिपु-अरु-ता-बनिता कौ कहूँ न पाऊँ ॥

धरनि-गगन-मिलि-होइ-जु-सजनी, सो गए ता बिनु दिन बिलखाऊँ ।

दसरथ-तात-सत्रु-कौ-आता-ता-प्रिय-सुता सु कैसें पाऊँ ॥

एक उपाउ जानि जौ पाऊँ, मो खगपति-पितु दृष्टि चुराऊँ ।

सूरदास ते गिरिवर आता, चिंता-रहित सकल दिन गाऊँ ॥५० ७१ ॥

शब्दार्थ—जल-सुत-सुत-ताकौ-रिपु-पति-सुत=कामदेव (जल-सुत पक, उसका सुत पंकज, उसका रिपु हाथी, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण, उसका सुत अनिरुद्ध अर्थात् कामदेव) । कालनेमि-रिपु-ताकौ-रिपु-अरु-ता-बनिता=मुरति (कालनेमि-रिपु हनुमान, उसका रिपु मकरध्वज अर्थात् कामदेव, उसकी बनिता रति अर्थात् मुरति) । धरनि-गगन-मिलि-होइ-जु=पृथ्वी और आकाश के मिलने से जो बनता है—क्षितिज, क्षितिज की भाँति अनन्त अर्थात् कृष्ण । दसरथ-सुत-सत्रु-कौ-आता-ता-प्रिय-सुता=नीद (दसरथ-सुत राम, उसका सत्रु रावण, उसका आता कुम्भकर्ण, उसकी प्रिय-सुता नीद) । खगपति-पितु=कछुवा (खगपति गरुड़, उसका पिता कश्यप, कच्छप अर्थात् कछुवा) ।

प्रसंग—विरहिणी नायिका (राधा) अपनी विरह-व्यथा का वर्णन अपनी मखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मैं कामदेव ने घेर ली हूँ (समझ मे नहीं आता कि उससे बचने के लिए मैं) किस ओर जाऊँ ? मुझे मुरति (का सुख) कहीं भी नहीं मिल रहा है । कृष्ण (विदेश) चले गये, अतः उनके वियोग में मैं सारे दिन बिलखती रहती हूँ । (विरह-व्यथा के कारण) मुझे नीद भी नहीं आती । यदि मैं केवल एक उपाय जान पाऊँ और उस उपाय से कछुवा की दृष्टि चुरा सकूँ तो फिर दूर से ही चिंता-रहित होकर कृष्ण का सेवन करती रहूँ । भाव यह है कि जिस प्रकार कछुवा अपने अँडों को पृथ्वी पर देकर जल से ही सेवन करता है, उसी प्रकार मैं भी कृष्ण का दूर

से ही सेवन करके, उनके वियोग में भी सयोग मानकर, विरह-ताप से छुटकारा पाऊँ

रस—विप्रलम्भ शृङ्गार रस ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

: ७६ :

राग कान्हरी

स्यामा, निसि में सरस बनी री ।

मृग-रिपु लंक तामु रिपु गज, ता ऊपर मधु केलि ठनी री ॥

कीर कपोत मधुप पिक तम्बा-रिपु सत रेख बनी री ।

उडुपति बिम्ब धरं अति सौभा, सुर बाला जो रचिनी री ॥

कनक-खम्भ रचि नव-सत साजे, जलधर-भष जब सवन सुनी री ।

कर गहि सत्र सात परि सारंग, दम्पति ही की सुरति ठनी री ॥

उमापति-रिपु कौ ललचानी, बन-रिपु तन में अधिक जरी री ।

सूरदास प्रभु मिले राधिका, तन मन सीतल रोम भरी री ॥ प० ७३ ॥

शब्दार्थ—सरस बनी=मनोहर शृङ्गार किये हुए थी । मृग-रिपु=सिंह । लक=कटि । तम्बा-रिपु=कामदेव (तम्बा युवती, उसका रिपु कामदेव) । उडुपति=चन्द्रमा । जलधर-भष=पपीहा । सत्र=सार । सारंग=कृष्ण । उमापति-रिपु=कामदेव । बन-रिपु=दावानल, भीषण ज्वाला ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा के सौन्दर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) राधा रात्रि में मनोहर शृङ्गार किये हुए थी । (उसकी) सिंह (की कटि के समान क्षीण) कटि और गज-शुंड (के समान पुष्ट जंघाएँ) उसके ऊपर मधुर केलियों की स्थली बनी हुई थी । भाव यह है कि राधा का इतना अलौकिक सौन्दर्य था कि उससे प्रभावित होकर सिंह और गज अपनी स्वाभाविक शत्रुता भुलाकर एक ही स्थल पर आनन्द-क्रीड़ा कर रहे थे । वही कीर, कपोत, मधुप और पिक (सुशोभित थे तथा) कामदेव की सैकड़ों रेखाये विराज रही थी । भाव यह है कि उसकी नासिका कीर की चंचु के समान, ग्रीवा कपोत की ग्रीवा के समान, अलकावलि भ्रमर के समान, वाणी कोयल की मधुर वाणी के समान और भौंहें कामदेव के धनुष के समान थी । उस गुर-वाला के मुख चंद्र पर बिम्बाधर अत्यंत शोभा धारण किये हुए थे । जब उसने पपीहा के शब्दों को (पी-पी की पुकार को) सुना तो स्वर्ण-खम्भ-रूपी शरीर पर सोलह शृङ्गार सज्जित किये । फिर उसने सार को ग्रहण करके सात पर—अर्थात् दो पद, दो कर, दो नेत्र और एक मुख पर—कृष्ण के साथ केलि-क्रीड़ा की । जो राधा कामदेव से पीड़ित थी और जिसका शरीर काम की विषम ज्वाला से जल रहा था, जब उसे कृष्ण मिले तो उसका तन, मन और प्रत्येक रोम शीतलता से भर गया ; अर्थात् वह वियोगजन्य दुःख को भूलकर संयोगजन्य सुख में मग्न हो गई ।

रस—सम्भोग शृङ्गार रस ।

नायिका—स्वकीया नायिका ।

अलंकार—१. 'खग-रिपु लंक' में वाचक और साधारण धर्म का कथन न होने से वाचक धर्म लुप्तोपमा अलंकार ।

२. 'कीर कपोत मधुप पिक' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकाति-शयोक्ति अलंकार ।

: ७७ :

राग देवगंधार

आजु तोहिं काहे आनंद थोर ।

यह बिपरीत सखी तोहिं सहियाँ, इंदु कंज इक ठोर ॥

हर-द्रावन संतत अधिकारी, ज्यों बिधि चंद चकोर ।

दधि-ग्रह जुगल बनावति क्यों नहिं बिगसति अम्बुज भोर।।

कम्पित स्वास त्रास अति मोकति ज्यों मृग केहरि कोर ।

सूरदास स्वामी रति नागर, तौ न हर्यो मन तोर । प० ६५॥

शब्दार्थ—थोर = कम । बिपरीत = विलक्षण । इन्दु = चन्द्रमा । कंज = कमल । हर-द्रावन = कृष्ण को द्रवीभूत करने की, कृष्ण का मन मोहने की । संतत = सदैव । दधि-ग्रह = सोलह शृङ्गार (दधि उदधि सात और ग्रह नौ = सौलह) । जुगल = दोनों अर्थात् दूने उत्साह से । भोर = प्रातःकाल । त्रास = भय । मोकति = छोड़ रही है । कोर = कोड़, गोद ।

प्रसंग—कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को लक्षित करके उसकी सखी राधा से कह रही है ।

अर्थ—(कृष्ण की स्मृति में निमग्न हाथ पर मुख रखे कुछ चिंता-मग्न राधा को देखकर उसकी सखी कहती है कि हे राधे !) आज तुझे कम आनन्द क्यों हो रहा है ? अर्थात् तू चिन्तामग्न दिखाई क्यों दे रही है ? यह विलक्षणता मैने तुझ में ही देखी कि चंद्रमा (मुख) और कमल (हाथ) दोनों एक ही साथ है । जिस प्रकार चन्द्रमा चकोर को आकृष्ट कर लेता है, उसी प्रकार तू भी कृष्ण का मन मोहने की सदैव अधिकारिणी है ; अर्थात् तुझ में कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित करने की सहज शक्ति है । (प्रियतम से मिलने के लिए) तू दूने उत्साह से सोलह शृङ्गार क्यों नहीं करती, क्योंकि प्रातःकाल के कमल खिलने वाले हैं ; अर्थात् प्रातःकाल होने वाला है और रात्रि बीतने पर फिर प्रियतम से मिलने का अवसर न मिलेगा; अथवा तू प्रियतम से मिलने के लिए दूने उत्साह से सोलह शृङ्गार करके प्रातःकाल खिलने वाले कमल की भांति प्रफुल्लित क्यों नहीं होती । तू अत्यन्त भय से कापते हुए गाँमों को इस प्रकार छोड़ रही है जैसे गिर की गोद में आया मृग छोड़ता है । क्या रति-नागर कृष्ण ने तेरे मन का हरण नहीं किया है ?

रस—विप्रलम्भ शृङ्गार रस ।

नायिका—लक्षिता नायिका ।

अलंकार—१. 'इन्दु कंज इक ठोर' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'ज्यौ बिधि चद चकोर' और 'ज्यौ मृग केहरि कोर' में उदाहरण अलंकार ।

३. 'तौ न हर्यौ मन तोर' में काकुवक्रोक्ति अलंकार ।

: ७८ :

राग मलार

राधे, तेरी रूप न आन सौ ।

सुरभी-सुत-पति-ताकौ-भूषन उदित न पूजै भान सौ ॥

अमी रसाल कोकिला साधे, अम्बुज चित कुम्हलान सौ ।

बिद्रुम अधर दसन दाड़िम बिजु, भ्रुकुटी किए सुठान सौ ॥

सूरदास प्रभु सौ कब मिलि हौ, सुफल रूप कल्याण सौ ॥५० ६८॥

शब्दार्थ—आन सौ=दूसरों के समान । सुरभी-सुत-पति-ताकौ-भूषन=चंद्रमा (सुरभी गाय, उसका सुत, बैल, उसका पति शिव, उसका भूषण चंद्रमा) । भान=भानु, सूर्य । अमी=अमृत । रसाल=ग्राम । अम्बुज-चित=कमल का मन अर्थात् कमल का सौन्दर्य । बिद्रुम=मूँगा । बिजु=बिजली । सुठान=सुन्दर ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती राधा से कह रही है और उसे कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित कर रही है ।

अर्थ—हे राधे ! तेरा रूप दूसरों के समान नहीं है ; अर्थात् तेरा रूप इतना सुन्दर है कि कोई भी पदार्थ इसकी समता नहीं कर सकता । चंद्रमा और उदित होता हुआ सूर्य भी इसके सौंदर्य की समता नहीं कर सकता । अमृत, ग्राम और कोयल (तेरी वाणी का रा माधुर्य पाने के लिए) साधना करते हैं । (तेरे रूप को देखकर) कमल का सौन्दर्य मुरझा जाता है । तेरे अधर मूँगा, दाँत अनार और बिजली के समान है । तेरी भ्रुकुटी अत्यंत सुन्दर है । रूप को सफल करने वाले और कल्याणकारी कृष्ण से तुम कब मिलोगी ? भाव यह है कि तुम्हें शीघ्र ही कृष्ण से मिलना चाहिए ।

रस—शृङ्गार रस ।

नायिका—मुग्धा नायिका ।

अलंकार—१. 'सुरभी-सुत-पति-ताकौ-भूषण उदित न पूजै भाव सौ' में उपमान की अयोग्यता का कथन होने से प्रतीप (चतुर्थ) अलंकार ।

२. 'बिद्रुम अधर दसन दाड़िम बिजु' में वाचक और साधारण धर्म का लोप होने से वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार ।

७६ :

राग बिलावल

धर-सुत सहज बनाउ किए ।

जल-सुत-सुत-ताकौ-सुत-बाहन-ते-तिरिया मिलि सांस दिए ॥

सुर-भष-रिपु-बाहन-के-बाहन, सुरपति-मित्र के सीस दिए ।

ताहि मध्य राजत कंठावलि, मानौ नव गह गुदरि दिए ॥

सुन्दरता सोभा की सींवाँ, बसैं सदाँ ये ध्यान हिए ।

धन्य सूर एको पल इहिं सुख, कह इहिं बिनु सत कल्प जिए ॥५० ६६॥

शब्दार्थ—धर-सुत = (१) केश (धर पृथ्वी, उसका सुत सर्प, सर्प जैसे केश), (२) मांगलिक वेश (धर पृथ्वी, उसका सुत मंगल अर्थात् मांगलिक) । जल-सुत-सुत-ताकौ-सुत-बाहन-ते-तिरिया = सितारे (जल-सुत पंक, उसका सुत पंकज, उसका सुत ब्रह्मा, उसका बाहन हंस अर्थात् जीव, जीव अर्थात् बृहस्पति, उसकी स्त्री तारा अर्थात् सितारे) । सुर-भष-बाहन-के-बाहन = पोत माला = (सुर-भष बंशी, उसकी रिपु मीन, मीन को बाहन करने वाला जल, उसका बाहन पोत अर्थात् पोत माला) । सुरपति-मित्र = कुच (सुरपति इन्द्र, उसका मित्र मेघ पयोधर अर्थात् कुच) । नव गह = नव ग्रह । गुदरि = हाजिरी ।

प्रसंग—राधा के शृङ्गार को देखकर सखी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि ! राधा ने अपने) सर्प-जैसे केशों को स्वाभाविक ढंग से सँभाला है; अथवा उसने स्वाभाविक मांगलिक वेश बनाया हुआ है। वह अपने मिर पर सितारे तथा कुचों पर पोतमाला धारण किये हुए है । कुचों के बीच पड़ी हुई सुशोभित कंठावलि ऐसी प्रतीत होती है, मानो नवग्रह हाजिरी दे रहे हों । (मेरी तो यही इच्छा है कि) सुन्दरता की शोभा की सीमा (अर्थात् अत्यन्त सुन्दरी) राधा सदा मेरे विचारों और हृदय में बसी रहे । इस प्रकार के सुख से युक्त एक पल भी धन्य है और इसके बिना सौ कल्प जीवित रहना भी निष्फल है ।

रस—शांत रस ।

नायिका—मुग्धा नायिका ।

अलंकार—‘ताहि मध्य राजत कंठावलि मानौ नव गह गुदरि दिए’ में वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

: ८० :

राग बिलावल

हरि कत भए ब्रज के चोर ।

तुम्हारे मधुप बियोग, उनके मदन की भकभोर ॥

इक कमल पर धरे गज-रिपु, एक ससि-रिपु जोर ।

दोउ कमल इक कमल ऊपर, जगी एक टक भोर ॥

एक सखी मिलि हँसति पूछति, खेच कर की कोर ।
 तजि सुभाव सु भखत नाहीं, निरखि उनकी ओर ॥
 बिरस रासिनि सुरति करि-करि, नैन बहु जल तोर ।
 तीन त्रिबली मनौ सरिता, मिली सागर छोर ॥
 षट-कंध अधरन माला ऊपर, अजा-रिपु की घोर ।

सूर अबलन मरत ज्याबौ, मिलौ नंद किसोर ॥५० १६२॥

शब्दार्थ—मधुप=भ्रमर, उद्धव । मदन=कामदेव । गज-रिपु=सिंह अर्थात् सिंह की कटि के समान क्षीण कटि । ससि-रिपु=राहु, पाटी । दोउ कमल=दो नेत्र । एक कमल=मुख । विरस=विमुख । सुरति करि-करि=कृष्ण का बार-बार स्मरण करके । छोर=छोड़कर । षट-कंध=कार्तिकेय, शक्तिधर अर्थात् प्राण । अजा-रिपु=पत्नी अर्थात् पत्नी ।

प्रसंग—निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए आये हुए उद्धव से विरहिणी राधा की सखी कह रही है ।

अर्थ—(हे उद्धव !) कृष्ण किस प्रकार ब्रज के चोर हो गये; अर्थात् न जाने क्यों उन्होंने ब्रजवासियों से अपना मुँह छिपा लिया । हे उद्धव ! तुम्हारे लिए जो विरह (एक साधारण बात) है (वही उस विरहिणी राधा के लिए बहुत भारी दुख है तभी तो) वह कामदेव की यातना सह रही है । वह अपना एक हाथ अपनी क्षीण कटि पर तथा पाटी पर रखे रहती है; अर्थात् वह रात-दिन कृष्ण का स्मरण करती हुई विरह-व्यथा से अतीव व्याकुल रहती है । दो कमल (नेत्र) एक कमल (मुख) पर है जिनसे वह प्रातःकाल तक जगती हुई एकटक (कृष्ण की राह देखती रहती है ।) (इसी समय) एक सखी उसका (राधा का) हाथ खींचकर और उसे गले से लगाकर हँसती हुई कहती है कि तू अपना (संकुचित) स्वभाव छोड़कर और उद्धव की ओर देखकर बोलती क्यों नहीं ? अर्थात् अपनी विरह-व्यथा इनको क्यों नहीं बताती ? कृष्ण का स्मरण कर-करके तू रास-रंगों से विमुख हो गई है । तेरे नेत्रों में अपार जल भरा हुआ है । तेरी यह दशा ऐसी प्रतीत होती है मानो सागर छोड़कर नदी त्रिबली-रूपी त्रिवेणी की ओर बह रही हो । (हे उद्धव ! तुम जो कृष्ण की पत्नी लाये हो उस) पत्नी की भयंकरता से तो इसके प्राण ही अधरों पर आ गये हैं (अतः तुम कृष्ण से जाकर कहना कि) हे नंदकिशोर ! अब (ब्रज की) अबलाओं से मिलकर (दर्शन देकर) उन्हें मरने से बचा लीजिए । भाव यह है कि यदि कृष्ण यहाँ आकर दर्शन दें तो ब्रज की युवतियाँ जीवित रह सकती हैं, अन्यथा वे कृष्ण के वियोग में ही मर जायेगी ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—प्रोपितपतिका नायिका ।

अलंकार—१. 'दूक कमल पर.....एकटक भोर' में केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।

२. 'बिरस रासिनि'.....सागर छोर' मे वस्तुत्प्रेक्षा अलंकार ।

: ८१ :

राग बिलावल

कहियौ अति अबला दुख पावै ।

हिरन-पटन-पति प्रबिसत ज्यौ है, बार-बार समुभावे ॥

सारंग-रिपु-ता-पति-रिपु-वा-रिपु-ता-रिपु तनहि जरावे ।

हरि-बाहन-बाहन-पति-धाइक-ता-सुत आनि बचावे ॥

सुर-रिपु-गुरु-बाहन-ता-रिपु-पति-ता-चढ़ि भेष दिखावे ।

सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, बिरहिनि तपनि बुभावे ॥५० २२४॥

शब्दार्थ—हिरन-पटन-पति = हिरनों के नगर का स्वामी अर्थात् सिंह । सारंग रिपु-ता-पति-रिपु-वा-रिपु-ता-रिपु = कामदेव (सारंग सर्प, उसका रिपु गरुड़, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण उसका रिपु इंद्र, उसका रिपु महादेव, उसका रिपु कामदेव) । हरि-बाहन-बाहन-पति-धाइक-ता-सुत = कामदेव (हरि बदर, उसका बाहन वृक्ष अर्थात् पृथ्वी, उसका पति शेषनाग, उसका धाइक कृष्ण, उसका सुत अनिरुद्ध अर्थात् कामदेव) सुर-रिपु-गुरु-बाहन-ता-रिपु-पति-ता-चढ़ि = मेघ (सुर-रिपु राक्षस, उनका गुरु शुक, उसका बाहन घोड़ा, उसका रिपु हाथी, उसका पति इंद्र, इंद्र जिम पर चढ़ता है अर्थात् मेघ) ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से कह रही है ।

अर्थ—(हे उद्धव ! कृष्ण से) कहना (कि तुम्हारे बिना) अबलाएँ अत्यन्त दुख पा रही है । (वे उसी प्रकार दुखी है जिस प्रकार हिरनों के नगर में) सिंह के प्रवेश से (हिरन दुखी होते हैं) । हम तुम्हें बार-बार समझा रही है (कि हमारा दुख कृष्ण को अवश्य बता देना और उनसे कहना कि उनके बिना) कामदेव हमारे शरीरों को जला रहा है, अतः वे आकर (हमें) कामदेव से बचाये । मेघ भी अपने वेश को दिखा रहे हैं; अर्थात् आकाश में बादल छाये हुए हैं जिनसे प्रकट होता है कि वर्षा-काल समीप ही है । हे प्रभु ! तुम्हारा मिलन ही विरहिनियों के वियोगजन्य दुख को मिटा सकता है उनकी विरहाग्नि को बुझा सकता है ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार ।

नायिका—प्रोषितपतिका नायिका ।

अलंकार—'हिरन-पटन-पति प्रविशत ज्यौ है' में उदाहरण अलंकार ।

: ८२ :

राग बिलावल

(अहो) दधि-तनया-सुत-रिपु-गति-गमनी सुनि बृषभानु दुलारी ।

बादुर-रिपु-रिपु-गतिहि पठाई, सोचति बेष बिचारी ॥

अलि-बाहन-रिपु-बाहन-रिपु की, तपति भई अति भारी ।
 सोच सम्हारि प्रभू खेदिति हैं, हों बलि जाऊँ तिहारी ॥
 मारुत-सुत-पति-रिपु-पति-पतनी-ता-सुत-नारि बिसारी ।

सूरदास प्रभु तुम्हारे मिलन कौं, क्यों हठ होत हत्यारी ॥प० २५४॥

शब्दार्थ—दधि-तनया-सुत-रिपु=हंस (दधि-तनया सीपी, उसका सुत मोती, उसका रिपु हंस) । दादुर-रिपु-रिपु-पतिहि=कृष्ण (दादुर-रिपु सर्प, उसका रिपु गरुड़, उसका पति विष्णु अर्थात् कृष्ण) । अलि-बाहन-रिपु-बाहन-रिपु=कामदेव (अलि-बाहन कमल, उसका रिपु चद्रमा, उसको बहन करने वाले शिव, उसका रिपु कामदेव) । मारुत-सुत-पति-रिपु-पति-पतनी-ता सुत-नारि=बुद्धि (मारुत-सुत हनुमान, उसका पति राम, उसका रिपु रावण, उसका पति शिव, उसकी पत्नी पार्वती, उसका सुत गरुड, उसकी नारी बुद्धि) ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती राधा को कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित कर रही है ।

अर्थ—हे हंस-गति वाली दुलारी राधे ! कृष्ण मुझे यहाँ भेजकर तेरे वेश के विषय में सोच रहे हैं; अर्थात् तेरे सौन्दर्य की स्मृति में निमग्न है । तेरे वियोग के कारण वे काम-जन्य ज्वाला में अत्यधिक जल रहे हैं । प्रभु (कृष्ण) तुम्हारा स्मरण करके दुखी हो रहे हैं । मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ । (न जाने तुमने क्यों) बुद्धि का त्याग कर दिया है (जो उनसे मिलने का नाम ही नहीं लेती) । कृष्ण तुमसे मिलने के लिये आतुर है, अतः तुम (उनसे न मिलने की) हठ करके (क्यों उनकी) हत्यारी बन रही हो ? कहने का भाव यह है कि यदि तुम शीघ्र ही कृष्ण से नहीं मिली तो वे तुम्हारे वियोग में प्राण त्याग देंगे ।

रस—विप्रलम्भ शृंगार रस ।

नायिका—मानवती नायिका ।

अलंकार—‘सोच सम्हारि प्रभू खेदिति है’ में शोक, सम्भार और खेद भावों का एकत्र वर्णन होने से समुच्चय अलंकार ।

: ८३ :

राग बिलावल

मारंग-सुत-पति-तनया के तट ठाढ़े नंदकुमार ।

बहुत तपत जु रासि में सबिता, ता तनया संग करत बिहार ॥

गुड़ाकेस-जननी-पति-बाहन-ता-सुत के अंग सजे सिंगार ।

चंद चौहत्तर, आठ हंस, दू ब्याल, कमल बत्तीस बिचार ॥

एक अचम्भौ और बताऊँ, पाँच चंद दवे कमल सँभार ।

सूरदास इहि जुगल रूप कौं, रोमनि राखि सदा उर धार ॥प० २५५॥

शब्दार्थ—मारंग-सुत-पति-तनया—यमुना (मारंग-सुत कमल, उसका पति सूर्य, उसकी तनया यमुना) । बहुत तपत जु रासि मैं सबिता ता तनया—जिस राशि

में सूर्य बहुत अधिक तपता है वह है वृषभ राशि, वृषभ की तनया वृषभानुजा अर्थात् राधा । गुड़ाकेस-जननी-पति-बाहन-ता-सुत = गजमुक्ता (गुड़ाकेस अर्जुन, उसकी जननी कुंती, उसका पति इंद्र, उसका बाहन गज उसका सुत गजमुक्ता) ।

प्रसंग—कृष्ण और राधा यमुना के किनारे खड़े हुए हैं । उनकी शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) यमुना के किनारे राधा के सग खड़े हुए कृष्ण विहार कर रहे हैं । गज-मुक्ताओं के शृंगार से उनके अंग सुमज्जित हैं । चौहत्तर चंद्रमा (चालीस नख-चंद्र राधा-कृष्ण के, उनमें से कृष्ण के पांच नख त्रिभंगिमा में खड़े होने के कारण दवे हैं, अतः पैंतीस नख-चंद्र, दो मुख चंद्र सैंतीस और इनके प्रतिबिम्ब । इस प्रकार चौहत्तर हुए) आठ णफूल-रूपी सूर्य (चार राधा-कृष्ण के प्रत्यक्ष और चार उनके प्रतिबिम्ब), दो वेणी-रूपी सर्प और बत्तीस कमल (दो चरण, दो कर, दो नेत्र, एक हृदय और एक मुख, आठ हुए, राधा और कृष्ण के सोलह, इनके प्रतिबिम्ब बत्तीस हुए) वहाँ विद्यमान है । एक अचम्भा और बताऊँ, पाँच चंद्र (नख-चंद्र) एक कमल (चरण) के नीचे दवे हुए हैं । हे सखि ! राधा और कृष्ण के इस युगल रूप को तू अपने हृदय में सदा धारण कर ।

रस—सयोग शृंगार रस ।

नायिका—स्वकीया नायिका ।

अलंकार—चंद्र, हंस, व्याल, कमल आदि केवल उपमानों का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार ।



साहित्य-लहरी के कूट

: ८४ :

राधे कियौ कौन सुभाव ।

प्राणपति बेदन-बिभूषित सुन्य-गुन चित चाव ॥

मानसरबासी सुधागृह तैं न निकसन पाव ।

रजनिचर-गुनि जानि दधिसुत-धरन-रिपु-हित चाव ॥

रजनिचर-हित-भच्छ सौ तन सरस वीपत आव ।

सूरदास सुजान सुकिया अघट उपमा गाव ॥१॥

शब्दार्थ—सुभाव=स्वभाव । बेदन-बिभूषित=कर्ण-सुखद (बेदन श्रुति, श्रुति कर्ण, विभूषित सुखद) । सुन्य गुन=शब्द (सुन्य शून्य आकाश, उसका गुण शब्द) । मानसरबासी=मन रूपी सरोवर में बसे हुए । सुधागृह=अधर । रजनिचर गुन=क्रोध, कोप (रजनिचर राक्षस, उनका गुण क्रोध) । दधिसुत-धरन रिपु-हित=काम-भावना (दधिसुत-धरन चंद्रमा को धारण करने वाले शिव, उनका रिपु कामदेव, हित भावना) । रजनिचर-हित-भच्छ=स्वर्ण, सुवर्ण (रजनिचर राक्षस या चंद्रमा, उसका हित करने वाला या उसका हित शिव, उसका भक्ष्य धनूरा जिसे कनक भी कहते हैं, कनक स्वर्ण अर्थात् सुवर्ण) । सुकिया (१) धर्मपत्नी, (२) स्वकीया नायिका । अघट उपमा=(१) जिस पर कोई उपमा घटित न हो, (२). पूर्णोपमा ।

प्रसंग—अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति राधा का अनन्य भाव है । इसी भाव की प्रशंसा सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ (हे सखि !) राधा ने यह कैसा स्वभाव बना लिया है कि अपने प्राणपति (कृष्ण) के कर्ण सुखद शब्दों को सुनने के लिए उसके मन में (सदा) चाव बना रहता है । (वह इतनी लज्जाशीला एवं मर्यादाशीला है कि) उसके मन-रूपी सरोवर में बसे हुए (प्रियतम का नाम) उसके अधरों से नहीं निकलने पाता; अर्थात् वह कभी भी अपने प्रियतम का नाम नहीं लेती । कोप करना जानकर भी काम भावना की इच्छा के कारण (वह कभी भी अपने प्रियतम से कोप नहीं करती) । उसका शरीर स्वर्ण-सा दीप्तिमान है (इस पर भी उसके शरीर में निरंतर) गरम दीप्ति बढ़ रही है । वह

(अपने प्रियतम की) चतुर धर्मपत्नी है (जिसके रूप, शील आदि गुण पर कोई भी) उपमा घटित नहीं होती। अथवा इस पद में स्वकीया नायिका और पूर्णोपमा अलंकार है।

विशेष—इस पद में स्वकीया नायिका और पूर्णोपमा अलंकार है :

१. **स्वकीया नायिका**—जो विवाहित नायिका मन, बचन और कर्म से अपने पति के अनुकूल रहती है, उसे स्वकीया या स्वीया नायिका कहते हैं। इसके आठ गुण माने गये हैं—यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल वैभव और भूषण। जिस स्वकीया नायिका में ये सभी गुण होते हैं उसे सर्वांग गुणमती (अष्टांगवती) नायिका कहते हैं। इस पद में राधा को इन सभी गुणों से सम्पन्न बताया गया है। 'प्रानपति वेदन-बिभूषित सुन्य न चित चाव' से कृष्ण के प्रति राधा का अनन्य प्रेम, 'मानसरबासी सुधागृह तें न निकसन पाव' में शील, 'रजनिचर गुन जानि' से गुण, 'दधि-सुत-धरन-रिपु-हित-चाव से' प्रेम, 'रजनिचर-हित भच्छ सौ तन' से रूप सौन्दर्य, 'राधे' से कुल और वैभव आदि गुणों का बोध होता है।

२. **पूर्णोपमा अलंकार**—जिस अलंकार में उपमा के चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचकशब्द और साधारणधर्म—होते हैं, उसे पूर्णोपमा अलंकार कहते हैं। इस पद में 'तन' उपमेय 'कनक' उपमान 'सौ' वाचकशब्द और 'दीपत' साधारणधर्म है अतः पूर्णोपमा अलंकार है।

: ८५ :

हरि, उर पलक धारो धीर ।

हित-तिहारे करत मनसिज सकल सोभा तीर ॥

भूमि-सुत-अरि-मित्र-रिपु-पुर तें निकासत आप ।

सुद्ध-आखर भरत ग्रीष्म-रिपुन मद्धे साप ॥

भान-त्रय-जननी-सुहित-की-सहचरी-गुन लेत ।

प्रथम ही उपमान-सारंग सों करावत हेत ॥

हानि-दिनपति-सीस सोभा रंच राजत आज ।

सूर प्रभु अग्यान मानो छपी उपमा साज ॥२॥

शब्दार्थ - पलक = पल-भर के लिए। हित-तिहारे = तुम्हारे लिए। मनसिज = कामदेव। तीर = बनाव (तीर बाण, वान अर्थात् बनाव)। भूमि-सुत-अरि-मित्र-रिपु-पुर = कटि (भूमि-सुत केवाँच, उसका रिपु बन्दर अर्थात् हनुमान, उसका मित्र राम, राम का रिपु रावण, रावण का पुर लंका, लंक अर्थात् कटि)। सुद्ध आखर = सौंदर्य (सुद्ध सु, आखर वर्ण, सुवर्ण अर्थात् सौंदर्य)। ग्रीष्म-रिपुन = कुच (ग्रीष्म ऋतु के रिपु पयोधर अर्थात् कुच)। भान-त्रय-जननी-सुहित-की सहचरी-गुन = चचलता (भान त्रय रविवार से तीसरा वार मंगल, मंगल की जननी भूमि, भूमि का सुहित मेघ, मेघ की सहचरी बिजली, बिजली का गुण चचलता) उपमान-सारंग = नेत्र (सारंग मृग, मृग है उपमान जिसका अर्थात् नेत्र)। हानि-दिनपति-सीस = चन्द्रमा (दिनपति सूर्य, उसकी

हानि करने वाली रात्रि, उसका सीस स्वामी = चन्द्रमा) । रंच = अत्यल्प । अग्यान = (१) अनजान, भोली, (२) अज्ञातयौवना नायिका । छपी उपमा = (१) उपमा का अयोग्य होना, (२) लुप्तोपमा अलंकार ।

प्रसंग—अज्ञातयौवना नायिका राधा की सखी कृष्ण से कह रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! पल-भर के लिए (कुछ काल के लिए) अपने हृदय में धैर्य धारण करो । तुम्हारे लिए ही कामदेव (उस नायिका राधा में) अपार सौंदर्य का बनाव कर रहा है; अर्थात् वह नित्यप्रति सुन्दर बनती जा रही है । वह उसकी कटि से (स्थूलता) निकालकर उसे कुचों के मध्य रखकर उसमें सौंदर्य भर रहा है । उसके नेत्रों को, अन्य अंगों से पहले, चंचलता प्रदान कर रहा है । (उसके मुख-सौंदर्य की तुलना में) आज चन्द्रमा की शोभा भी अत्यल्प सुशोभित है; अर्थात् फीकी जान पड़ती है । हे प्रभु ! (उस नायिका के सौंदर्य-वर्णन के लिए यद्यपि) उपमा का सौंदर्य अयोग्य है, अर्थात् उसके सौंदर्य का कोई उपमान नहीं है, (तथापि) उसे भोली ही जानो—वह अभी काम-क्रीड़ा से अनभिज्ञ है । अथवा इस पद में अज्ञातयौवना नायिका और लुप्तोपमा अलंकार जानिए ।

विशेष—इस पद में अज्ञातयौवना नायिका और लुप्तोपमा अलंकार है :

१. अज्ञातयौवना नायिका—वह मुग्धा नायिका जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान न हो, अज्ञातयौवना नायिका कहलाती है । इस पद में वर्णित नायिका के शरीर में यौवन का संचार हो रहा है—उसकी कटि क्षीण हो गई है, कुचों में स्थूलता आ गई है, नेत्र चंचल हो गये हैं—पर नायिका को इस यौवनागम का बोध नहीं है ।

२. लुप्तोपमा अलंकार—उपमा के चारों अंगों—उपमेय, उपमान, वाचकशब्द और साधारणधर्म—में से यदि किसी एक अथवा अनेक अंगों का लोप हो तो उसे लुप्तोपमा अलंकार कहते हैं । इस पद में 'हानि-दिनपति-सीस सोभा रंच राजत' में उपमेय और वाचक शब्द का लोप होने से लुप्तोपमा अलंकार है ।

: ८६ :

आज अकेली कुंज-भवन में बैठी बाल बिसूरत ।

तरु-रिपु-पति-सुत की सुचि साँची जान सांवरी मूरत ॥

दर-भूषन खन-खन उड़ाइ कै नीतन हरि-घर हेरत ।

तनु-अनुगामी मनमय भय के भीतर सुचि संकेरत ॥

ताहि-ताहि सम करि-करि प्यारी भूषन आन न माने ।

सूरदास बय जान सुलोचन सुन्दर सुचि बखाने ॥३॥

शब्दार्थ—बाल = बाला । बिसूरत = विविध प्रकार की चेष्टाएँ कर रही थी । तरु-रिपु-पति-सुत = कामदेव (तरु-रिपु यमुना, यमुना का पति कृष्ण, उसका सुत अचिरुद्ध या प्रद्युम्न अर्थात् कामदेव) । साँवरी मूरत = कृष्ण का चित्र । दर-भूषन = वस्त्र (दर द्वार, द्वार का भूषन किवाड़ या पट, पट का अर्थ वस्त्र) । नीतन = नेत्र (नीत नय +

न) । हरि-घर—कुच (हरि विष्णु, विष्णु का घर समुद्र पयोधर, पयोधर कुच) । तनु-अनुगामी=छाया । भय=भीत, दीवार । सँकेरत=सँजोती थी । भूपन आन न=(१) अन्य भूषण को नहीं, (२) अनन्वय अलंकार । बय जान=(१) यौवनावस्था जानकर, (२) ज्ञातयौवना नायिका ।

प्रसंग ज्ञातयौवना नायिका कुंज-भवन में अकेली बैठी हुई विविध प्रकार की चेष्टाएँ कर रही है । उन्हीं का वर्णन सखी सखी से करती हुई कहती है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज कुंज-भवन में अकेली बैठी हुई वाला विविध प्रकार की चेष्टाएँ कर रही थी । वह (दीवार पर अंकित) कामदेव के चित्र को सचमुच कृष्ण समझकर क्षण-क्षण में अपने वस्त्र (अचल) को उठाकर अपने कुचों को देख रही थी । (कभी) अपनी ही छाया को रत्न-जटित दीवार में देखकर मुग्ध सँजोती थी; अर्थात् लज्जित होकर अपनी स्थिति को सुधारती थी । (अपने रूप पर गर्वित होकर) वह प्रिया बाला उस समय अपनी शोभा को अपनी ही शोभा के समान मानती हुई किसी भूषण की आवश्यकता नहीं समझ रही थी । (इस प्रकार सखी ने) उम वाला की यौवनावस्था जानकर उसका सम्यक् प्रकार से वर्णन किया । अथवा—सूरदास ने इस पद में सुन्दर नेत्रों वाली ज्ञातयौवना नायिका और अनन्वय अलंकार का सुन्दर वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में ज्ञातयौवना नायिका और अनन्वय अलंकार है :

१. ज्ञातयौवना नायिका—जिस मुग्धा नायिका को अपने यौवन के आगमन का ज्ञान हो जाता है, उसे ज्ञातयौवना नायिका कहते हैं । इस पद में कुचों को देखना, लज्जित होकर भयभीत होना आदि कथनों से स्पष्ट है कि नायिका को अपने यौवन के आगमन का ज्ञान है ।

२. अनन्वय अलंकार—जहाँ उपमेय और उपमान में अंतर नहीं हो; अर्थात् उपमेय ही उपमान होता है, वहाँ अनन्वय अलंकार होता है । इस पद में 'ताहि-ताहि सम करि-करि प्यारी भूपन आन न मानै' में अनन्वय अलंकार है ।

: ८७ :

सारंग सम कर नीक नीक सम सारंग सरस बखानै ।

सारंग बस भय भय बस सारंग सारंग बिसमै मानै ॥

सारंग हेरत उर-सारंग तें सारंग-सुत ढिंग आवैं ।

कुंती-सुत-सुभाव चित समुझत सारंग जाइ मिलावैं ॥

यह अद्भुत कहिबे न जोग जुग देखत ही बनि आवैं ।

सूरदास बिच समै समझ करि विषई विषे मिलावैं ॥४॥

शब्दार्थ—सारंग=हिरन । नीक=नेत्र (नीक अच्छा, अच्छ नेत्र) । सरस=सुन्दर । सारंग=(१) राग, (२) अनुराग । बिसमै=विसमय । सारंग=नायिका । उर-सारंग=कमल-कोष (सारंग कमल, उर हृदय, कोष) । सारंग-सुत=(१)

भ्रमरशिशु, (२) कृष्ण । कुंती-सुत-सुभाव = सखी (कुंती-सुत कर्ण, उसका स्वभाव दानी, फारसी में दानी को सखी कहते हैं) । बिच समै = (१) मध्यस्था, (२) मध्या । विपई विपै = (१) विलासी और विलास (२) विपई उपमान, विषय उपमेय अर्थात् उपमानोपमेय अलंकार ।

प्रसंग— इस पद में मध्या नायिका की मनोदशा का वर्णन किया गया है ।

अर्थ—(कवि) नेत्रों को हिरन के समान और हिरन को नेत्रों के समान बताते हैं । (वस्तुतः यह उपमा ठीक ही है, क्योंकि नायिका के) नेत्र अनुराग के वश और हिरन राग के वश होते हैं (पर अनुरागयुक्त होने पर भी नायिका के नेत्र भय (लज्जा) का त्याग नहीं करते, जबकि हिरन सगीत पर मुग्ध होकर भय को छोड़ देते हैं । उसके नेत्रों की इस विलक्षणता पर हिरनों को आश्चर्य होता है । नायिका सोचती है कि कमलकोषरूपी कुंज से भ्रमर-सुत-रूपी कृष्ण निकल कर उसके पास आयें (किंतु लज्जा के कारण वह अपनी इच्छा को प्रकट नहीं कर पाती ।) सखी उसकी इच्छा को जानकर उसे कृष्ण से जाकर मिला देती है । (कृष्ण और राधा की) इस जोड़ी की विशेषता का वर्णन नहीं हो सकता । वह तो केवल देखते ही बनती है । (इस प्रकार) मध्यस्था उपयुक्त अवसर जानकर विलासी (नायक) और विलास (नायिका) को मिला देती है । अथवा सूरदास ने इस पद में मध्या नायिका और उपमानोपमेय अलंकार का वर्णन किया है ।

विशेष— इस पद में मध्या नायिका और उपमानोपमेय अलंकार है :

१. **मध्या नायिका**—जिस नायिका में काम और लज्जा के भाव समान होते हैं, उसे मध्या नायिका कहते हैं । इस पद में 'सारंग हेरत उर-मारंग तें सारंग-सुत ढिग आवै' से मध्या नायिका का संकेत है ।

२. **उपमानोपमेय अलंकार**—जहाँ उपमान और उपमेय को परस्पर उपमान और उपमेय बताया जाये, वहाँ उपमानोपमेय अलंकार होता है । इस पद में 'सारंग सम कर नीक नीक सम सारंग' में उपमानोपमेय अलंकार है ।

: ८८ :

राधे रात सुरत रँग राती ।

नंदनंदन संग कुंज भवन में मदन मोद मदमाती ॥

कारन अंत अंत तें घट कर आवि घटत पै जोई ।

मद्ध घटे पर नास कियौ है नीतन तें मन भोई ॥

गिरजा-पति-पतनी-पति-जा-सुत-गुन गुन गनन उतारै ।

तन-सुत-कन से धन बिचार के तुरत भूमि पै डारै ॥

सारंग और निहारत फिर फिर थिर चित चतुर न पावै ।

सूर स्याम कोबिदा सुभूषन कर बिपरीत बनावै ॥५॥

गद्गदार्थ सुरत=काम-क्रीड़ा । रँग रानी=रंग में रँगी हुई है । कारन अंत अंत तें घट कर आदि घटत पै जोई, मद्ध घटे पर नाम = काजल (इसका अन्तिम अक्षर 'ल' हटाने से हुआ 'कारन अंत' कारण का परिणाम अर्थात् काज, आदि अक्षर 'का' हटाने से हुआ 'पै' पय अर्थात् जल, मध्य का अक्षर 'ज' हटाने से हुआ 'नास' अर्थात् काल) । नीतन=नयन (नीत नय + न) । मन भोई=मनभाया । गिरजा-पति-पतिनी-पति-जा-सुत-गुन=शीतलना (गिरजा-पति महादेव, उसकी पत्नी गंगा, उसका पति समुद्र, उसका सुत मोती, मोती का गुण शीतलना) । गुन = विचार करके । गनन = समूह । तन-सुत-कन = पत्नी की बूँद । मारँग = दीपक । कोविदा मुभूषन - (१) चतुरों में शिरोमणि, (२) प्रौढा नायिकाओं में शिरोमणि । विपरीत = (१) विपरीत रति, (२) प्रतीप अलंकार ।

प्रसंग—प्रौढा नायिका राधा की रति का वर्णन मखी मखी में कर रही है ।

अर्थ—(हे मखी !) राधा रात की काम-क्रीड़ा के रंग में रँगी हुई है । वह कृष्ण के साथ कुज-भवन में विहार करने के कारण काम-आनन्द से मत्तवाली हो रही है । (काम-क्रीड़ा में) उसके नेत्रों का मनभाया काजल छुट गया है । उसने (अपने शरीर पर धारण किये हुए मोतियों की उपाकाल-जन्य) शीतलना जानकर उन्हें उतार कर (ताकि प्रातःकाल का बोध होने से नायक उसे छोड़कर चला न जाये) पसीने की बूँदों की भाँति तुरन्त पृथ्वी पर फेंक दिया । (प्रातःकाल के कारण मद होगी हुई ज्योति वाले) दीपक की ओर वह बार-बार देखती है । इसी कारण उस चतुर नारी का चित्त स्थिर नहीं हो रहा है (कामानन्द से छूटने का भय उसे निरन्तर त्रस्त बना रहा है) । (अपने मन को किसी प्रकार स्थिर करके) चतुरों में शिरोमणि वह नायिका फिर विपरीत रति का आयोजन करने लगी । अथवा (इस पद में) प्रौढा नायिका और प्रतीप अलंकार है ।

विशेष इस पद में प्रौढा नायिका और प्रतीप अलंकार है :

१. प्रौढा नायिका—जिस नायिका में काम की प्रधानता तथा लज्जा की न्यूनता होने से काम-रति-कुशलता होती है, उसे प्रौढा नायिका कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं—रति-प्रीता और आनन्द-मम्मोहिता । इस पद में वर्णित नायिका रति-प्रीता प्रौढा नायिका है ।

२. प्रतीप अलंकार—प्रतीप अलंकार में प्रमिद्ध उपमान का उपमेय द्वारा निरस्कार होता है । यहाँ मोतियों का 'तन-सुत-कन' से कहकर निरस्कार किया गया है ।

: ८६ :

लखि ब्रजचंद चंद मुख राधे ।

इंदीवर-सुत कल कपोल में है सिंगार रस साधे ॥

दधि-सुत-सुत-पतिनी न निकासत दिनपति-सुत-पतिनी-प्रिय बाधे ।

दधि-सुत-बेद खँच अपनौ कर सुखि सुभाव सु नाधे ॥

ग्रह-मुनि इति हित के हित कर तें मुकर उतारत कांधे ।

सूरज प्रभु लख धीर रूप कर चरन-कमल पर धांधे ॥६॥

शब्दार्थ—ब्रजचन्द - कृष्ण । इन्दीवर-सुत=काजल (इन्दीवर नीला कमल, उसका सुत नीला पराग अर्थात् काजल) । दधि-सुत-सुत-पतिनी=बात (दधि-सुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उसकी पत्नी सरस्वती जिसे वाणी भी कहते हैं, वाणी अर्थात् बात) । दिनपति-सुत-पतिनी-प्रिय= कटु वचन (दिनपति सूर्य, उसका सुत शनि, उसकी पत्नी कर्कशा, उसके प्रिय कटु वचन) । बाधे=बाधित किया, रोका । दधि-सुत-वेद=जीव (दधि-सुत चन्द्रमा, वेद चार, चन्द्रमा से चौथा ग्रह बृहस्पति, इसे जीव भी कहते हैं) । नाधे बनाये रक्खा । ग्रह-मुनि=मंद (मुनि सात, ग्रह-मुनि सातवाँ ग्रह शनि अर्थात् मंद) । मुकर=दर्पण, आरसी । धीर=धैर्यवान (२) धीरा नायिका । धांधे=भुक्त गये ।

प्रसंग—धीरा नायिका राधा की धीरता का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) राधा ने कृष्ण का मुख देखकर, जिसके कपोलों पर (अन्य नायिका से रमण करने के कारण) काजल लगा हुआ था, जो शृंगार-रस की साधना का सूचक था, कोई बात (कृष्ण के प्रति) नहीं निकाली, बल्कि (अपने मन में आये हुए) कटु वचनों को भी रोक लिया । अपने जीव (आंतरिक भाव) को दबाकर उसने अपना सुहृत्पूर्ण स्वभाव बनाये रक्खा । (रति-श्रम से अलसाए कृष्ण के मुख की) मंद-आभा को उसे दिखाने के लिये वह अपने हाथ से आरसी उतारने लगी । (कृष्ण राधा का यह) धैर्यवान रूप देखकर उसके चरण-कमलों में (क्षमा-याचना के लिये) भुक्त गये । अथवा इस पद में धीरा नायिका और रूपक अलंकार है ।

विशेष—इस पद में धीरा नायिका और रूपक अलंकार है :

१. धीरा नायिका—जो नायिका अपने पति के पर-नारी-रमण को जानकर भी उससे कटु वचन नहीं कहती, वरन् प्रकारांतर से अपना कोप व्यक्त करती है, उसे धीरा नायिका कहते हैं । इस पद में वर्णित नायिका कटु वचन न कहकर केवल आरसी दिखाकर ही अपना कोप व्यक्त करती है, अतः धीरा नायिका है ।

२. रूपक अलंकार—जहाँ उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है । इस पद में 'ब्रजचन्द चन्द-मुख' में रूपक अलंकार है ।

: ६० :

आज सखिन सँग सरुचि साँवरी करत रही जल-केलि ।

आइ गयो तहां सरस साँवरी प्रेम पसारत बेलि ॥

अघहर एक सु कर-सारंग तें सहज सम्हारन लागे ।

अंतरिच्छ-श्रीबंधु एक कौ चाखत अति अनुरागे ॥

भूषन-हित परनाम छोट-बड़ दोहुन कौ कर राखी ।

सूरज प्रभु फिर चले गेह कौ करत सत्रु-सिव साखी ॥७॥

शब्दार्थ—सरुचि = रुचिपूर्वक, आनन्द-सहित । साँवरी = श्यामा नायिका, राधा । अग्रहर = वेणी (अग्र पाप, हर हरण करने वाली, पापों का हरण करने वाली त्रिवेणी अर्थात् वेणी) । कर-सारंग = कर-कमल । सहज = स्वाभाविक रूप से । अन-रिच्छ-श्रीबन्धु = अग्ररामृत (अंतरिच्छ अंतरिक्ष अग्रर, श्रीबन्धु लक्ष्मी का बन्धु अमृत अर्थात् अग्ररामृत) । भूषन-हित = प्रेम रूपी अलंकार । परिणाम = (१) फल, (२) परिणाम अलंकार । थोड़ा-बड़ा = (१) थोड़ा-बहुत, (२) कनिष्ठा-ज्येष्ठा नायिका । सन्तु-शिव = शिव का शत्रु अर्थात् कामदेव । साखी = साक्षी ।

प्रसंग—राधा अपनी सखियों के साथ जल-केलि कर रही थी । तभी कृष्ण वहाँ आकर प्रेमपूर्वक एक अन्य नायिका की वेणी सभालने लगे । इसी घटना का वर्णन सखी गयी से कर रही है ।

अर्थ — (हे सखि !) आज (जब) राधा अपनी सखियों के साथ आनन्द-महित जल-केलि कर रही थी (तभी) वहाँ पर प्रेम-बेल का प्रसार करते हुए रमिक कृष्ण आ गए । वे (अपने स्वभाव के कारण) स्वाभाविक रूप से एक नायिका की वेणी अपने कर-कमल से सँवारने लगे । एक अन्य नायिका के अग्ररामृत का पान अत्यन्त अनुराग से करने लगे । (इस प्रकार उस रसिक-शिरोमणि कृष्ण ने) अपने प्रेम-रूपी अलंकार का थोड़ा-बहुत फल दोनों ही नायिकाओं को प्रदान किया । अथवा इस पद में परिणाम अलंकार और कनिष्ठा-ज्येष्ठा नायिकाएँ हैं । इसके पश्चात् कृष्ण कामदेव को माक्षी बनाकर अपने घर को चले गए ।

विशेष—इस पद में कनिष्ठा-ज्येष्ठा नायिकाएँ और परिणाम अलंकार है—

१. कनिष्ठा-ज्येष्ठा नायिकाएँ—प्रियतम जिस नायिका से कम प्रेम करता है, उसे कनिष्ठा नायिका, और जिससे अधिक प्रेम करता है उसे ज्येष्ठा नायिका कहते हैं । इस पद में जिस नायिका की वेणी सवारी जाती है वह कनिष्ठा, और जिसके अग्रगो का पान किया जाता है वह ज्येष्ठा नायिका है ।

२. परिणाम अलंकार—किसी कार्य के करने में अममर्थ उपमान जहाँ उपमन्त्र के साथ एकरूप होकर उस कार्य को करने में समर्थ होता है, वहाँ परिणाम अलंकार होता है । इस पद में कमल उपमान सारंग (कर) के साथ मिलकर ही वेणी गुँथने में समर्थ हुआ है, अतः परिणाम अलंकार है ।

: ६१ :

दिनपति चले धौ कहाँ जात ।

धरा-धरन-धर-रिपु तन लीन्हे, कहो उदधि-सुत बात ॥

लब उलटो दो जाउँ तिहारी, ताकौ सारंग-नैन ।

तुम बिन नंदनंदन ब्रजभूषन होत न नैकौ चैन ॥

मुरली मधुर बजावहु मुख तैं रख जन अनतें फेरी ।

सूरज प्रभु उल्लेख सबन कौ हौ पर-पतिनी हेरी ॥८॥

शब्दार्थ—दिनपति=सखा (दिनपति मूर्य, उगका नाम मित्र भी है। मित्र अर्थात् सखा)। धरा-धरन-धर-रिपु=कामदेव (धरा-धरन पृथ्वी को धारण करने वाला शेषनाग, शेषनाग को धारण करने वाला शिव, शिव का रिपु कामदेव)। उदधि-सुत=अमृत। लव उलटौ दो=लव को उलट कर उसकी आवृत्ति अर्थात् बल-बला या बलि-बलि अर्थात् बलिहारी होना। ताकौ=देखो। सारंग-नैन=कमलनयन। नैकौ=तनिक भी। रुख जन अनतै फेरौ=मुख अन्यत्र मत फेरो, अर्थात् मुख मत बनो। उल्लेख=(१) कथन, (२) उल्लेख अलंकार। पर-पतिनी=(१) दूसरे की स्त्री, (२) परकीया नायिका।

प्रसंग—परकीया नायिका कृष्ण पर मुग्ध होकर उनसे कह रही है।

अर्थ—हे सखे ! कामदेव का सा (सुन्दर) शरीर धारण करके तुम कहाँ चले जा रहे हो ? अमृतमय वचन तो कहो; अर्थात् मेरे साथ मीठी-मीठी बातें करो। हे कमलनयन ! (मेरी ओर) देखो। मैं तुम पर बलिहारी (न्यौछावर) होती हूँ। हे नन्दनन्दन ! हे ब्रजभूषण ! तुम्हारे बिना मुझे तनिक भी चैन नहीं मिलता। अपने मुख से मधुर मुरली बजाओ और मुझसे विमुख मत बनो। हे प्रभु ! सभी जनों का कथन है कि तुम दूसरे की स्त्री को ताकते हो। अथवा इस पद में उल्लेख अलंकार और परकीया नायिका है।

विशेष—इस पद में परकीया नायिका और उल्लेख अलंकार है—

१. **परकीया नायिका**—जो नायिका पर-पुरुष से प्रेम करती है, उसे परकीया नायिका कहते हैं। इस पद में 'पर-पतिनी' से परकीया नायिका का उल्लेख हुआ है जो कृष्ण को (पर-पुरुष को) प्रेम करती है।

२. **उल्लेख अलंकार**—एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन करने में उल्लेख अलंकार होता है। इस पद में कृष्ण को नन्दनन्दन, ब्रजभूषण आदि विविध रूपों में वर्णित किया गया है। अतः उल्लेख अलंकार है।

: ६२ :

जूप मोहि बहु पाद मिलावो ।

सुन सजनी यह प्रन हमार लखि हिय तैं हरष बढ़ावो ॥

सुच-ही-पति-पितु-प्रिया पाँइ पर धर सिर आप मनावो ।

नीतन-हीन-पुत्र-रिपु-जननी-सुत-पितु-जा ढिग जावो ॥

सुर-समूह पय-धार परम हित आखत अमल चढ़ावो ।

बार बार बिनवत हो तुम तैं लखि निसपति सुरभावो ॥

सूरज प्रभु पर होहु अनूढ़ा सुमिरन जनि बिसरावो ॥६॥

शब्दार्थ—जूप=कृष्ण (यूप पीपल का वृक्ष, जिसे वासुदेव भी कहते हैं। वासुदेव अर्थात् कृष्ण)। बहुपाद=पति (बहुपाद अनेक जड़ों वाला अर्थात् बट, वर

अर्थात् पति) । सुच-ही-पति-पितु-प्रिया = पार्वती (सुच-ही पवित्र ही, वर ही, बहि मयूर, मयूर का पति कार्तिकेय, उसका पितु शिव, उसकी प्रिया पार्वती) । पाँइ = पाँव, चरण । नीतन-हीन-पुत्र-रिपु-जननी-मुत-पितु-जा = यमुना (नीतन = नेत्र, नीतन हीन धृतराष्ट्र, उसका पुत्र दुर्योधन, उसके रिपु पांडव, उनकी जननी कुन्ती, उसका मुत कर्ण, उसका पिता सूर्य, उगकी जा आत्मजा सूर्यजा अर्थात् यमुना) । मुर-समूह = पुष्पराशि (सुर देवता जिन्हें सुमन भी कहते हैं । सुमन-समूह पुष्प-राशि) । पय-धार = दूध की धारा । परम हित = अत्यन्त प्रेम से । आश्वत = अश्वत । निमपति = चन्द्र, कृष्ण । मुरभायो - मुरभा जाओगी, ननमस्तक हो जाओगी, मुग्ध हो जाओगी । अनूढा = (१) न्योछावर, (२) अनूढा नायिका । स्मिग्ग - (१) स्मृति, (२) स्मरण अलंकार ।

प्रसंग — अनूढा (अविवाहिता) नायिका अपनी गलियों में प्रार्थना कर रही है कि वे उसे पति-रूप में कृष्ण दिला दे ।

अर्थ—(हे गलियों !) पति-रूप में मुझे कृष्ण से मिला दो । हे मजनी ! सुनो, (कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने का मेरा प्रण है अतः) मेरे प्रण को मोचकर हृदय में दर्प बढ़ाओ । (मेरी कामना पूरी करने के लिए तुम) पार्वती के चरणों में गिर रखकर स्वयं ही उनकी मनौती करो । (कृष्ण से मिलने के लिए तुम) यमुना के किनारे जाओ (गौर यमुना की जल-धारा में) अत्यन्त प्रेम से पुष्प-राशि, दूध की धारा तथा अमल अश्वत चढ़ावो । मैं तुमसे बार बार प्रार्थना कर रही हूँ कि (तुम मुझे कृष्ण से अवश्य मिला दो, क्योंकि वे इतने मुन्दर हैं कि उनके) मुखचन्द्र को देखते ही (तुम सभी उन पर) मुग्ध हो जाओगी । तुम कृष्ण पर न्योछावर हो जाओ और उनकी स्मृति को मत छोड़ो; अर्थात् निरन्तर उनका स्मरण करती रहो । अथवा इस पद में अनूढा नायिका और स्मरण अलंकार है ।

विशेष—इस पद में अनूढा नायिका और स्मरण अलंकार है :

१. अनूढा नायिका—अविवाहिता होते हुए जो नायिका किसी पुरुष से प्रेम करती है, उसे अनूढा नायिका कहते हैं । इस पद में 'पति-रूप में कृष्ण की वर रूप में कामना करने से' अनूढा नायिका है ।

२. स्मरण अलंकार—जहाँ किसी वस्तु को देखकर या सुनकर उसके समान किसी अन्य वस्तु की स्मृति आ जाती है, वहाँ स्मरण अलंकार होता है । 'लखि निस-पति मुरभावो' में चन्द्रमा को देखकर ब्रजचन्द कृष्ण की स्मृति हो आने का वर्णन होने से स्मरण अलंकार है ।

: ६३ :

उलटों रस सारंग-हित सजनी कबहू तीर न जैहों ।

बिन समुझै बिपरीत मालिका अंग न आपु लगैहों ॥

पग-रिपु लगत सघन घन ऊपर बूझत कहा बतैहों ।

ग्रह-बभु मिलत सम्भु की सेना चमकत चित न चितैहों ॥

मोहि आन वृषभान बबा की मैया मंत्र न लैहौ ।

सूर छेक तें गुप्त बात हू तोकों सरस सुभैहौ ॥१०॥

शब्दार्थ—उलटौ रस=सरोवर ('रस' का उलटा सर, सरोवर) । सारंग-हित=कमल के लिए । तीर=किनारा । बिपरीत मालिका=कलक (मालिका का उलटा कालिमा अर्थात् कलक) । पग-रिपु=कंटक । सघन घन=कठोर कुच (सघन मुद्द अर्थात् कठोर, घन पयोधर अर्थात् कुच) । ग्रह-वसु=मार्ग (वसु आठ होते हैं, ग्रह वसु आठवां ग्रह अर्थात् राहु, राहु का अर्थ हुआ राह अर्थात् मार्ग) । मम्भु की सेना - भूत, प्रेत, सर्प आदि । आन=शपथ । मन्त्र=मन्त्रणा, बात । छेक=(१) चतुर, (२) छेकापन्हुति अलंकार । गुप्त=(१) गुप्त, (२) गुप्ता नायिका ।

प्रसंग—गुप्ता नायिका (राधा) अपना अपराध छिपाने का प्रयास करती हुई अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखी !) मैं (अब) कमल लेने के लिए सरोवर के किनारे पर भी कभी नहीं जाऊँगी । (वहाँ जाकर) मूर्खतावश मैं अपने शरीर पर स्वयं ही कलंक नहीं लगाऊँगी । (नायिका अपने अधरक्षतों को छिपाने का प्रयास कर रही है । वह कहना चाहती है कि ये अधरक्षत किसी के दाँतों से नहीं, वरन कमल तोड़ते समय भौरे के काटने से हुए हैं) । मेरे कठोर कुचों पर (जब मार्ग के) काँटे लग जायेंगे (तब) बूझने पर क्या उत्तर दूँगी ? मार्ग में भूत, प्रेत, सर्प आदि के भय से भयभीत होने के कारण मेरा मन इतना भयग्रस्त हो जायेगा कि मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता । मैं बाबा वृषभानु की शपथ खाकर कहती हूँ कि (सरोवर में से कमल लाने के लिए मैं) मैं माँ की बात भी नहीं मानूँगी । मैंने तुझ चतुर सखी से अप्रन, गुप्त बात कह दी है, अतः तू (इस विषय में अपना) सरस सुभाव दे । अथवा इस पद में छेकापन्हुति अलंकार और गुप्ता नायिका है ।

विशेष—इस पद में गुप्ता नायिका और छेकापन्हुति अलंकार है :

१. गुप्ता नायिका—जो नायिका पर-पुरुष के द्वारा किए गए अपने शरीर के रतिचिन्हों को चतुरता से छिपाने का प्रयास करती है, उसे गुप्ता नायिका कहते हैं । इसके तीन भेद होते हैं—भूतगुप्ता नायिका, वर्तमानगुप्ता नायिका और भविष्यतगुप्ता नायिका । इस पद की नायिका भविष्यत गुप्ता नायिका है ।

२. छेकापन्हुति अलंकार—जहाँ वास्तविक बात को युक्तिपूर्वक छिपाने का वर्णन होता है, वहाँ छेकापन्हुति अलंकार होता है । इस पद में नायिका अपने रति-चिन्हों को छिपाकर अन्य बातें बताती है । अतः छेकापन्हुति अलंकार है ।

: ६४ :

सुरभी-रस रातौ नंदनंबन सुरभी-रस जिन रातौ ।

ग्रह-मुनि-पिता-पुत्रिका को रस अति अब्भुत गति मातौ ॥

सुत-कृसानु-सुत प्रबल भये मिलि चारि ओर तें आए ।

ते जिन जान घने तम के गज साजत सरस सवाए ॥

आजु मोहि मैया विचारि कं गैया ओर पठाई ।

निरविकार यह सूर पहनति बातन चतुर बताई ॥११॥

शब्दार्थ—सुरभी-रस=इन्द्रिय विलास । रातौ अनुरक्त होना । सुरभी-रस =गौ दुग्ध । ग्रह-मुनि-पिता-पुत्रिका=यमुना (ग्रह-मुनि सानवां ग्रह अर्थात् शनि, शनि का पिता सूर्य, सूर्य की पुत्रिका यमुना) । रस=जल । सुत-कृमानु-सुत=बादल (कृमानु अग्नि, उसका सुत धुआँ, उसका सुत बादल) । निरविकार (१) विकार-रहित, (२) शुद्ध । पहनति=(१) गुप्त, (२) अपन्हति अलंकार । बातन चतुर=(१) चतुर वाला ने बातें, (२) वाग्विदग्धा नायिका ।

प्रसंग—वाग्विदग्धता नायिका चतुराई से अपनी भोगनिप्सा को कृष्ण से कह रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! इन्द्रिय विलास में प्रयुक्त हो जाओ और गौ-दुग्ध की अनुरक्ति का त्याग कर दो । (देखो तो सही) यमुना का जल भी अत्यन्त अद्भुत गति से मतवाला होकर बह रहा है । चारों ओर से मिलकर प्रबल बादल इकट्ठे हो गए हैं । तुम इन्हें बादल मत समझो, वरन् ये तो गहन अंधकार के हाथी हैं जो अपने सरस साज से सुशोभित होकर ओर भी अधिक सजाए हुए हैं । आज मेरी माँ ने न जाने क्या सोचकर मुझे तुम्हारी गायों की ओर भेज दिया है । (इस प्रकार) उस चतुर बाला ने विकार-रहित रूप में कृष्ण से अपने मन की गुप्त बात कह दी । अथवा इस पद में सूरदास ने शुद्धापन्हति अलंकार और वाग्विदग्धा नायिका का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में वाग्विदग्धा नायिका और शुद्धापन्हति अलंकार है—

१. वाग्विदग्धा नायिका—जो नायिका वचनों की चतुराई से अपना अनुराग या रतिभाव व्यक्त करती है, उसे वाग्विदग्धा नायिका कहते हैं । इस पद में यमुना की धारा और बादलों के घिराव का वर्णन करके नायिका चतुराई से रति के उपयुक्त अवसर की ओर संकेत करती है । अतः वाग्विदग्धा नायिका है ।

२. शुद्धापन्हति अलंकार—जहाँ वास्तविक वस्तु का निषेध करके उसके स्थान पर किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाता है, वहाँ शुद्धापन्हति अलंकार होता है । यहाँ बादलों को बादल न मानकर गज माना गया है । अतः शुद्धापन्हति अलंकार है ।

: ६५ :

देखत ही वृषभान-दुलारी ।

नंदनदन आवत ब्रज-बीथिन भीर सँग लै भारी ॥

सिब-आनन लिखि चंद बिंदु बै कर निज कुचन मिलाए ।

भूषन स्वल्प क्रिया तैं सुन्दरि सूर स्याम समुझाए ॥१२॥

शब्दार्थ—वृषभान-दुलारी=राधा । ब्रज-बीथिन=ब्रज की गलियों में । सिव-आनन=शिव के पाँच मुख माने जाते हैं, अतः पाँच का अंक । स्वल्प=(१) थोड़े-से, (२) सूक्ष्म अलंकार । क्रिया=(१) कार्य, प्रयत्न; (२) क्रियाविदग्धा नायिका ।

प्रसंग—ब्रज की गलियों में जाते हुए कृष्ण से राधा ने क्रिया-चातुरी से अपनी रति-इच्छा प्रकट की । उसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) भारी भीड़ लिए हुए ब्रज की गलियों में कृष्ण को आता हुआ देखते ही राधा ने पाँच का अंक लिखकर उस पर चन्द्र बिन्दु लगाकर, अपने हाथ कुचों से मिलाये । (इस संकेत का भाव यह है—पाँच के अंक पर चन्द्र बिन्दु लगाकर राधा ने कृष्ण को यह बताया कि वह उससे चन्द्रोदय के पाँच घड़ी पश्चात् मिलेगी । कुचों से हाथ लगाकर यह बताया कि इस समय चक्रवा-चकवी दोनों मिले हुए हैं, अर्थात् दिन है, अतः अभी मिलन के लिए उपयुक्त अवसर नहीं आया है ।) उस सुन्दरी ने (इस प्रकार) थोड़े से प्रयत्न से ही कृष्ण को (अपनी इच्छा बताकर) समझा दिया अथवा इस पद में सूक्ष्म अलंकार और क्रियाविदग्धा नायिका है ।

विशेष—इस पद में क्रियाविदग्धा नायिका और सूक्ष्म अलंकार हैं—

१. **क्रियाविदग्धा नायिका**—जो नायिका क्रिया की चातुरी से अपने मनो-भावों को या रति-इच्छा को प्रकट करती है, उसे क्रियाविदग्धा नायिका कहते हैं । इस पद में 'सिव-आनन लिखि चद बिंदु दै कर निज कुचन मिलाए' से राधा ने मिलन समय का संकेत दिया है, अतः क्रियाविदग्धा नायिका है ।

२. **सूक्ष्म अलंकार**—शारीरिक संकेतों से मन के भावों को प्रकट करने में सूक्ष्म अलंकार होता है । नायिका ने संकेतों से अपने भावों को प्रकट किया है, अतः सूक्ष्म अलंकार है ।

: ६६ :

कुंज-भवन तें आज राधिका अलस अकेली आवत ।
 अंग अंग प्रति रंग रंग की सोभा सुख दरसावत ॥
 दिनपति-सुत-अरि-पिता-पुत्र-सुत सो निज करन सम्हारे ।
 मानहु कंज रिच्छ गहि तीजो कंचन-भू पर धारे ॥
 सीता-सत्रु-पिता-की-सेना पाट-छिद्र इमि खाए ।
 सिंधु-सत्रु-भख-पति-पितु मानौ रन तें घायल आए ॥
 बिथुर गयो सारंग-सुत सिंगरौ सो मन उपमा भासी ।
 गिरिजापति-भूषन पै मानहुँ मुनि-भख पंक प्रकासी ॥
 सम्भावन भूषन कर लच्छित सुघर सखी मुसकाई ।
 सूरदास वृषभान-नंदिनी मुरि घर चली लजाई ॥१३॥

शब्दार्थ—अलस=अलसाई हुई । दिनपति-सुत-अरि-पिता-पुत्र-सुत=अगद, एक आभूषण-विशेष (दिनपति सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका अरि अर्जुन, उसका पिता

इन्द्र, उसका पुत्र बाली, उसका सुत अंगद अर्थात् अंगद नामक आभूषण) । रिच्छ तीजी=तीसरा नक्षत्र अर्थात् कृत्तिका । कंचन-भू=स्वर्ण-भूमि । सीता-सन्तु-पिना-वी-सेना=कुच (सीता-सन्तु जयंत, उसका पिता इन्द्र, उसकी सेना बादल, जिसे पयोधर भी कहते हैं और पयोधर का अर्थ कुच भी होता है) । पाट-छिद्र=नव-प्रहार । त्रिधु-सन्तु-भख-पति-पितु = शिव (सिंधु उदधि या दधि, दधि दही, उसका शत्रु बिल्ली, उसका भक्ष्य चूहा, उसका पति गणेश, उसका पिता शिव) । मारंग-मृत्=काजल (मारंग दीपक, उसका सुत काजल) । गिरिजापति-भूषण = चंद्रमा (गिरिजापति शिव, उसका भूषण चंद्रमा) । मुनि-भख=समुद्र (मुनि अग्रस्य, उसका भक्ष्य समुद्र) । सम्भावन=(१) सम्भावना, (२) उत्प्रेक्षा अलंकार । लक्षित, (१) लक्षित (२) लक्षिता नायिका । सुधर=चतुर । मुरि=मुड़कर, अवहेलना करके ।

प्रसंग—राधा रति-चिह्नों को लेकर अपने घर लौट रही थी । उसके चिह्नों को देखकर उसकी सखी ने उसकी रति-क्रीड़ा जान ली । इसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज राधा (रतिजन्य श्रम के कारण) अलमाई हुई कुंज-भवन से अकेली आ रही थी । उसके प्रत्येक अंग से रग-विरगी शोभाओं का सुख दिखाई दे रहा था । (केलि के समय उतारे गये) अंगदों (बाजूबंदों) को अपने हाथों में सँभाल रही थी, अर्थात् पहन रही थी । (हाथों में पहिने हुए बाजूबंद ऐसे प्रतीत होते थे) मानो कमल कृत्तिका नक्षत्र को स्वर्ण-भूमि पर स्थापित कर रहा हो । उसके कुच नख-प्रहारों की चोट खाकर (ऐसे प्रतीत होते थे) मानो रण में घायल होकर शिव (वापिस) लौटे हों । (केलि-क्रीड़ा के कारण) उसके नेत्रों का सारा काजल (धुलकर मुख पर) फैल गया था । (उसे देखकर) मन में यह उपमा आती है, मानो चंद्रमा पर समुद्र की कीचड़ लग गई हो । (उसके रति-चिह्नों से उसकी केलि-क्रीड़ा की) सम्भावना लक्षित करके उसकी चतुर सखी मुस्कराई । (अपनी सखी के भाव को समझ कर) राधा मुड़कर लजाती हुई अपने घर को चली गई अथवा इस पद में सूरदास ने उत्प्रेक्षा अलंकार और लक्षिता नायिका का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में लक्षिता नायिका और उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

१. लक्षिता नायिका—रति-चिह्नों से जिस नायिका का प्रेम प्रकट हो जाता है, उसे लक्षिता नायिका कहते हैं । इस पद में रति-चिह्नों को देखकर नायिका की सखी ने उसका प्रेम-व्यापार जान लिया है । अतः लक्षिता नायिका है ।

२. उत्प्रेक्षा अलंकार—जहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना की जाये, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है । इस पद में 'दिनपति...धारे' और 'सीता-शत्रु...घायल आए' में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

: ६७ :

गृह तें चली गोप-कुमारि ।

खिरक ठाढ़ी देख अब्भुत एक अनुपम मार ॥

कमल ऊपर सरल कदली कदलि पर मृगराज ।

सिंह ऊपर सर्प दोई सर्प पर ससि साज ॥

मद्ध ससि के मीन खेलत रूप कांति सजुक्त ।

सूर लखि भई मुदित सुन्दरि करत आछी उक्त ॥१४॥

शब्दार्थ—गोप-कुमारि=राधा । खिरक=खरक, गायों को बाँधने का स्थान । मार=स्मर, कामदेव । कमल=चरण-कमल । कदली=जघा-रूपी केला । मृगराज=सिंह, कटि । सर्प दोई=दो साँप, दो भुजाएँ । ससि=चन्द्रमा, मुख । मीन=मछली, नेत्र । सजुक्त=संयुक्त, सहित । मुदित=(१) प्रमन्न, (२) मुदिता नायिका । रूप कांति सजुक्त=(१) रूप और कांति से युक्त, (२) रूपकातिशयोक्ति अलंकार । उक्त=युक्ति ।

प्रसंग—कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नायिका (राधा) अत्यंत प्रसन्न हुई । उसी का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(जब) राधा अपने घर से (बाहर के लिए) चली (तब उसने एक अद्भुत कामदेव (कृष्ण) को गायों के खरक के पास खड़े देखा । (कृष्ण के रूप की विलक्षणता यह थी कि) कमल (चरण) के ऊपर सीधा कदली (जघा) था । कदली (जघा) पर मृगराज (कटि) था । सिंह के ऊपर दो सर्प (भुजाएँ) थे । सर्पों (भुजाओं) पर चन्द्रमा (मुख) सुशोभित था । चन्द्रमा (मुख) के मध्य में मछलियाँ (नेत्र) खेल रही थीं जो रूप और कांति से संयुक्त थीं । (कृष्ण के अपार एवं विलक्षण रूप को) देखकर सुन्दरी (राधा) प्रसन्न हुई (और कृष्ण से मिलने के लिए) अच्छी युक्ति सोचने लगी अथवा इस पद में मुदिता नायिका और रूपकातिशयोक्ति अलंकार परिलक्षित है ।

विशेष—इस पद में मुदिता नायिका और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है :

१. मुदिता नायिका—नायक के सहसा मिलन से तथा अपनी अभिलाषा की पूर्ति के कारण प्रसन्न होने वाली नायिका को मुदिता नायिका कहते हैं । इस पद में कृष्ण के सहसा मिलन से प्रसन्न होने वाली नायिका है, अतः यह मुदिता नायिका है ।

२. रूपकातिशयोक्ति अलंकार—जहाँ केवल उपमानों का ही कथन किया जाये, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है । इस पद में कामदेव, कमल, कदली, मृगराज, सर्प, ससि, मीन आदि केवल उपमानों का कथन है । अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

: ६८ :

गिरजा-पति-पितु-पितु-पितु ह तें सौ गुन सी दरसावै ।

ससि-सुत-बेद-पिता-की-पुत्री आजु कहा चित चावै ॥

सूरज-सुत-माता-सुबोध-की-आपुन-आदि ठहावै ।

सूरज प्रभु मिलाप हित स्थानी अनमिल उक्ति गनावै ॥१५॥

शब्दार्थ—निसा-अंत-पति-सुत-सुभाव=सखी (निसा अत दिन, उसका पति सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका स्वभाव दानी, फारसी में 'दानी' को 'सखी' भी कहते हैं) । पुत्र-पुत्र=कृष्ण । सूरज-सुता=यमुना । हरि-गृह-जननी-हितन=कुच (हरि बन्दर, उसका गृह वृक्ष, वृक्ष की जननी पृथ्वी, पृथ्वी के हितकारी बादल, जिन्हें पयोधर भी कहते हैं और पयोधर का अर्थ कुच भी होता है) । सुरभी-सुतर=चदन का लेप । सारंग-सुत=काजल (सारंग दीपक, उसका सुत काजल) । नीकन=नेत्र ।

सर्प-बेलि = पान (सर्प नाग, बेलि बल्ली, नागबल्ली अर्थात् पान) । भानु = सूर्य । भानु सुत = यमराज । सुभानु = दाहक । पर आनंद दुखित = (१) दूसरे के आनंद से दुःखी होने वाली, (२) अन्यसम्भोगदुखिता नायिका । सजोगता = (१) सुयोग्यता, (२) नृत्ययोगिता अलंकार ।

प्रसंग—अपने प्रियतम के साथ रति करने वाली नायिका के रति-चिन्हों को देखकर तथा उनसे दुःखी होकर नायिका उम रमणी नायिका से कह रही है ।

अर्थ—हे मखि ! सुन, आज तू कहाँ से आ रही है ? तू कृष्ण के पास गई थी अथवा यमुना में स्नान करके लौट रही है ? बता तो सही, तूने अपने कुचों पर लगा चंदन-लेप कहाँ छुड़ा दिया ? तेरे नेत्रों से काजल कैसे छुट गया ? पान की लाली कैसे समाप्त हो गई ? मेरे ही कारण तूने सूर्य और यमराज के समान दाहक कमाई की है । सूरदास कहते हैं कि (हे सुन्दरि !) दूसरे के आनन्द से बाण-सदृश दुःखी होने की सुयोग्यता तूने कहाँ से प्राप्त की है ? अथवा इस पद में सूर ने अन्यसम्भोगदुखिता नायिका और तुल्ययोगिता अलंकार का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में अन्यसम्भोगदुखिता नायिका और नृत्ययोगिता अलंकार है :

१. अन्यसम्भोगदुखिता नायिका—अन्य स्त्री के शरीर पर अपने प्रियतम के द्वारा किये गये रति-चिह्नों या प्रीति-चिह्नों को देखकर दुःखी होने वाली नायिका को अन्यसम्भोगदुखिता नायिका कहते हैं । इस पद में अपनी सखी के कुचों का चंदन, नेत्रों का काजल और पान की लाली नष्ट हो जाने में नायिका अपनी सखी की अपने प्रियतम के साथ रति-केलि को जानकर दुःखी होती है, अतः अन्यसम्भोगदुखिता नायिका है ।

२. तुल्ययोगिता अलंकार—जहाँ अनेक वस्तुओं अथवा अप्रस्तुतों का एक ही धर्म बताया जाता है, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है । यहाँ सूर्य, यमराज और सखी को समान रूप से दाहक बताया गया है, अतः तुल्ययोगिता अलंकार है ।

: १०० :

बीथिन मिलौ नंदकुमार ।

उदित उत ते भयो सजनी रिच्छपति रचि-धार ॥

भालु-बसु-पुन-पंच दोऊ करें अद्भुत रूप ।

मोहि गहि लै गयो कुंजन मंजु मनसिज भूप ॥

निकसवी हम कौन मग हो कहो बारी वंस ।

मोह कौ यह गर्ब सागर भरो आइ अनैस ॥१७॥

शब्दार्थ—बीथिन = गलियों में । रिच्छपति = ऋक्षपति, चंद्रमा । रचि-धार = सुरचिपूर्ण । भालु-बसु-पुन-पंच = (१) भुजाग्रों, (२) किरणों (भालु ऋक्ष अर्थात् नक्षत्र ; बसु आठ होते हैं, पुन पंच अर्थात् आठ में पाँच मिलाने से तेरह हुए ;

तेरहवाँ नक्षत्र हस्त होता है। 'हस्त' को 'कर' भी कहते हैं। कर के दो अर्थ होते हैं—भुजा और किरण। करै = धारण किये हुए। मनभिज = कामदेव। बारी बैम = छोटी अवस्था। मोह कौ गर्व सागर = (१) प्रेम के गर्व का समुद्र, (२) प्रेमगर्विता नायिका। अनैस = बुरी तरह से।

प्रसंग—प्रेमगर्विता नायिका अपनी सखी से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि !) मुझे गलियों में कृष्ण मिला। उमी अवसर पर सुरुचिपूर्ण चन्द्रमा उदित हुआ। वे दोनों ही कृष्ण और चन्द्रमा अपने हाथों से तथा किरणों से अद्भुत रूप धारण किये हुए थे। वह कामदेव राजा-रूपी कृष्ण तब मुझे पकड़कर सुन्दर कुञ्जों में ले गया। मेरी अवस्था छोटी है, प्रेम के गर्व का समुद्र बुरी तरह से (कृष्ण के मन में) भरा हुआ था। अतः तुम्हीं बताओ, मैं उससे किस मार्ग से निकल सकती थी ?

विशेष इस पद में प्रेमगर्विता नायिका और दीपक अलंकार है, यद्यपि अलंकार का उल्लेख नहीं हुआ है :

१. प्रेमगर्विता नायिका—जो नायिका अपने प्रियतम के प्रेम का गर्व करती है, उसे प्रेमगर्विता नायिका कहते हैं। इस पद में 'मोहि गहि लै गयी कुञ्जन मंजु मनसिज भूप' से नायिका का प्रेम-गर्व लक्षित होता है।

२. दीपक अलंकार—जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की एक ही धर्मवाची क्रिया हो, वहाँ दीपक अलंकार होता है। यहाँ 'गान्-ग-ग-ग' दोऊ करै अद्भुत रूप' में भुजा और किरण दोनों की एक ही धर्मवाची क्रिया 'करै अद्भुत रूप' है, अतः दीपक अलंकार है।

: १०१ :

सिलीमुख सारंग निहारन करौ कौन उपाइ ।

बान भीर सुजान निकसत धरत धरनी पाइ ॥

चमक चहुँ दिस चलत चाही-सम्भु-भूषन भाइ ।

नंदनंदन बैठ हेरत रहत निस दिन गाइ ॥

हौं रही इह बिपत तैं री बिपति होहु सहाइ ।

सूर सरस सरूप गवित दीपकावत चाइ ॥१८॥

शब्दार्थ—सिलीमुख = सरोवर (सिलीमुख बाण, बाण को सर भी कहते हैं और सर का अर्थ सरोवर भी होता है)। सारंग = कमल। बान = भौरा (बाण को शिलीमुख भी कहते हैं और शिलीमुख का अर्थ भौरा भी होता है)। सुजान = चतुर। पाइ = पैर। सम्भु-भूषन = शिव का भूषण अर्थात् चन्द्रमा। चाही-सम्भु-भूषन = चन्द्रमा को चाहने वाला अर्थात् चकोर। सरूप गवित = (१) रूप से गवित, (२) रूप-गर्विता नायिका। दीपकावत = (१) दीपक को बुझाना, (२) आवृत्तिदीपक अलंकार।

प्रसंग—रूपगर्विता नायिका अपनी सखी से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि !) मैं सरोवर (मे उगे हुए) कमलों को देखने का क्या उपाय करूँ ? (क्योंकि) धरती पर पैर रखते ही चतुर भौरों का समूह निकल पड़ता है । भाव यह है कि भौरे मेरे मुख को कमल समझकर मुझ पर टूट पड़ते हैं । (मेरे मुख को चन्द्रमा समझकर) चकोर सभी दिशाओं से चौककर निकल आते हैं । रात-दिन मेरे रूप की प्रशंसा करते हुए कृष्ण बैठकर (मेरे रूप को) देखते रहते हैं । मैं (इस प्रकार से) इस विपत्ति में फँसी हुई हूँ । हे सखि ! तू ही इस विपत्ति में मेरी सहायता कर । इस तरह से वह अपने सुन्दर रूप से गर्वित होकर दीपक को बुझा देना चाहती है अथवा इस पद में रूपगविता नायिका और आवृत्तिदीपक अलंकार है ।

विशेष—इस पद में रूपगविता नायिका और आवृत्तिदीपक अलंकार है :

१. **रूपगविता नायिका**—जिस नायिका को अपने रूप पर गर्व होता है, उसे रूपगविता नायिका कहते हैं । इस पद में नायिका भौरों के समूह से, चकोरों के समूह से और कृष्ण-द्वारा की गई प्रशंसा से अपने रूप-गर्व को व्यक्त करती है, अतः रूप-गविता नायिका है ।

२. **आवृत्तिदीपक अलंकार**—जहाँ शब्द, अर्थ अथवा शब्दार्थ की आवृत्ति हो, वहाँ आवृत्तिदीपक अलंकार होता है । इस पद में 'हो रही इह विपत्ति तै री बिपत्ति होहु सहाइ' में 'बिपत्ति' शब्द की आवृत्ति होने से आवृत्तिदीपक अलंकार है ।

: १०२ :

माननि अजहूँ मान बिसारौ ।

प्राननाथ प्रतिपाल करन हित मानो कह्यो हमारौ ॥

दो-दो-पति-धर-तिया-पुत्र कहि अजहूँ बेगि सिधारौ ।

तीन-दोइ-दृग पाँच-सात-इक-गति मतिवंत बिचारौ ॥

दोइ-एक-करि-अंत-हीन मुहि सो दो बेर बिचारौ ।

प्रथम डार उपमान कहा मुख बंठी मंत्र सुधारौ ॥

अति गम्भीर बनौ पदमा-पितु सो बुधि उदर तिहारौ ।

सूरदास दृष्टांत पाँइ परि देखत नंद-दुलारौ ॥१६॥

शब्दार्थ—अजहूँ = अब भी । प्रतिपाल = रक्षा । दो-दो-पति-धर-तिया-पुत्र = गणेश (दो + दो = चार, चौथा नक्षत्र रोहिणी, रोहिणी का पति चन्द्रमा, उसको धारण करने वाला शिव, उसकी तिया पार्वती, उसका पुत्र गणेश) । तीन-दोइ-दृग = मृगनयनी (तीन + दोइ = पाँच, पाँचवाँ नक्षत्र मृगशिरा अर्थात् मृग, मृग + दृग मृग-नयनी) । पाँच-सात-इक-गति = गजगामिनी (पाँच + सात + इक = तेरह, तेरहवाँ नक्षत्र हस्ति, गज; गज + गति = गजगामिनी) । दोइ एक-करि-अन्त-हीन-मुहि सो दो बेर = कृतकृत्य (दोइ + एक = तीन, तीसरा नक्षत्र कृतिका, इसको अंतहीन करने से अर्थात् अन्त का 'का' हटाने से बना—कृति = कृत + कृत = कृतकृत अर्थात् कृतकृत्य) । प्रथम उपमान = धूँघट (प्रथम नक्षत्र अश्विनी, उसका उपमान धूँघट) । मंत्र = परामर्श । पदमा-पितु = सागर (पदमा लक्ष्मी, उसका पिता सागर) । उदर = हृदय । दृष्टांत = (१) दृष्टि का अन्त अर्थात् दूर ही से, (२) दृष्टांत नामक अलंकार ।

प्रसंग—मानवती नायिका से उसका मान-भंग करने के लिये उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—हे मानिनि ! अब भी अपना मान छोड़ दो । अपने प्रिय के प्राणों की रक्षा करने के लिये हमारा कहना मानो । भाव यह है कि यदि तुमने मान भग नहीं किया तो तुम्हारे प्राणनाथ इस दुख से मर जायेंगे । गणेश जी की स्तुति करके अब भी जल्दी से (अपने प्रियतम से मिलने के लिए) चलो । हे मृगनयनी ! हे गजगामिनी ! तुम बुद्धिमती हो, अतः मेरे कहने का विचार करो और (कृष्ण से मिलकर उन्हें) कृतकृत्य करो । तुम अपने मुख पर घूँघट डालकर क्यों बैठी हुई हो, मेरे परामर्श (पर विचार करके अपनी हठ को) सुधारो; अर्थात् मेरा कहना मानकर अपने मान की हठ छोड़ दो । जिस प्रकार सागर अत्यंत गम्भीर होता है, उसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि (भी गम्भीर होकर) तुम्हारे हृदय में है; अर्थात् तुम भी अत्यंत गम्भीर बनी हुई हो । (और) कृष्ण दूर से ही तुम्हारे पैरों में पड़ने के लिए (तुम्हारी राह) देख रहे हैं । अथवा इस पद में (मानवती नायिका और) दृष्टांत अलंकार है ।

विशेष—इस पद में मानवती नायिका (जो 'मानिनि' शब्द से स्पष्ट है) और दृष्टांत अलंकार है :

१. **मानवती नायिका**—किसी कारण से अपने प्रियतम से रूठकर उससे विमुख होने वाली नायिका को मानवती नायिका कहते हैं । इस पद में वर्णित नायिका मानवती है, जिसका मान-भंग करने के लिए उसकी सखी उसे परामर्श दे रही है ।

२. **दृष्टांत अलंकार**—जहाँ उपमान और उपमेय के साधारण धर्म में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है । यहाँ 'अति गम्भीर बनौ पदमा पितु, सो बुधि उदर तिहारौ' में सागर उपमान है, बुद्धि उपमेय है । दोनों के साधारणधर्म 'गम्भीर बनौ' में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, अतः दृष्टांत अलंकार है ।

: १०३ :

मानिनि अजहूँ छाँड़ी मान ।

तीन बिबि दधि-सुत उतारत राम-बल-जुत सान ॥

तीन-लल-बल करे तो संग कौन भल अलि जान ।

डेढ़-लल कल लेत नाँही प्रान प्रीतम प्रान ॥

तीन-कोकी रूप रति पति ब्रज न दूजी आन ।

लगी फिरत पचास-तति तब पास कर बर बान ॥

भूमि-सुत-जो-लियौ-गुन सो निबरसन मुख हान ।

सूरदास सुजान पाँइन परौ कारौ कान ॥२०॥

शब्दार्थ—तीन बिबि = छवि (तीन = तीन बार, बिबि = दो, तीन बिबि = तीन × दो = छः, इसमें 'बि' जोड़ने से 'छवि' शब्द बना) । दधि सुत = उदधि सुत

चन्द्रमा । राम-दल = नक्षत्र (राम-दल = रिक्ष, रिक्ष = नक्षत्र) । जुत = सहित । तीन-लल-वल छन-बल (तीन बार दो-दो ल = छः + ल = छल, छल + वल = छल बल) । डेढ़-लल = तिल (डेढ़ बार दो ल = तीन ल = तिल) । तीन कीकी = छकी (तीन बार दो की = छः + की = छकी) । पचाम-तिति = सौत (पचास बार दो ति = सौ + ति = सौति अर्थात् सौत) । बर = मनोरम । बान = बानिक, शृंगार । भूमि-सुत-गुन = जड़ता (भूमि सुत वृक्ष, उसका गुण जड़ता) । निदरसन = (१) दर्शन न करनेसे । (२) निदर्शना अलंकार । हान = हानि । कारौ कान = श्यामसुन्दर ।

प्रसंग—मानवती नायिका को उसकी सखी मान-विमोचन के लिए समझा रही है ।

अर्थ—हे मानिनी ! तू अब भी मान छोड़ दे । चन्द्रमा नक्षत्र सहित अपनी छवि उतार रहा है; अर्थात् अब रात बीतने वाली है, क्योंकि चन्द्रमा की और तारों की ज्योति फीकी पड़ गई है । हे अलि ! तू यह तो समझ कि कौन तेरे साथ छल-बल कर रहा है, और कौन तेरा हितैषी है । (तेरे मान से दुखी होकर) तेरे प्राणप्रिय तिल (क्षण) भर के लिए भी चैन नहीं पाते । (यह सच है कि) तू कामदेव जैसी शोभा से छकी है अर्थात् पूर्ण है और ब्रज में तेरे समान अन्य कोई नारी सुन्दर नहीं है तथापि आस-पास की मौतें शृंगार किये (तुम्हारे प्रियतम को आकर्षित करने के लिए) उनके पीछे फिरती है (अतः भय है कि तुम्हारे मान का लाभ उठाकर कही वे उन्हें अपनी ओर आकृष्ट न कर लें) । तेरे द्वारा (मानजन्य) जड़ता धारण किये जाने से और कृष्ण के मुख के दर्शन न करने से तेरी ही हानि है । हे सुजान ! श्यामसुन्दर तो तेरे पैरों में पड़ा हुआ है; अर्थात् अपना अपराध स्वीकार करके तुझ से क्षमा-प्रार्थी है । अथवा सूरदास ने इस पद में (मानवती नायिका और) निदर्शना अलंकार का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में मानवती नायिका और निदर्शना अलंकार है :

१. **मानवती नायिका**—किसी कारण से प्रियतम से रूठकर मान करने वाली नायिका को मानवती नायिका कहते हैं । इस पद की नायिका मानवती है ।

२. **निदर्शना अलंकार**—जहाँ उपमान उपमेय वाक्यों में सादृश्य वर्णित हो, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है । इसके तीन भेद होते हैं—

(क) **प्रथम निदर्शना**—जहाँ दो वाक्यों के अर्थ में सादृश्य हो । यथा—

‘तीन बिबि दधि सुत उतारत राम दल जुत सान’

इसमें नायिका के मुख की तथा चन्द्रमा की ज्योतिहीनता का वर्णन है ।

(ख) **द्वितीय निदर्शना**—जहाँ एक का गुण दूसरी वस्तु में स्थापित करके सादृश्य वर्णित हो । यथा—

‘तीन कीकी रूप रति पति ब्रज न दूजी आन’

इसमें रति-पति के रूप का आरोप राधा पर करके उसकी समता बताई गई है ।

(ग) तृतीय निदर्शना—किसी कार्य के परिणाम का वर्णन । यथा—
‘भूम-सुत जो लियौ गुन सौ निदरसन मुख हान ।’

: १०४ :

निस दिन पंथ जोबत जाइ ।

बधि-कौ-सुत-सुत-तासु-आसन बिकल हो अकुलाइ ॥

गंध-बाहन-सुत-सुबांधव-तासु-पतिनी-भाइ ।

कबे दुग भरि देखिवौ जू सबे दुख बिसराइ ॥

अजा-भख की हानि हमको अधिक ससि मुख चाइ ।

सूर प्रभु बितरेक बिरहिन कब दिखैहो पाइ ॥२१॥

शब्दार्थ—जोबत=देखते हुए । जाइ=व्यतीत हो रहे है । बधि-कौ-सुत-सुत-तासु-आसन=प्राण (बधि-कौ-सुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उसका आसन हंस अर्थात् जीव या प्राण) । गंध-बाहन-सुत-सुबांधव-तासु-पतिनी-भाइ=कृष्ण (गंध-बाहन पवन, उसका सुत भीम, उसका बांधव अर्जुन, उसकी पत्नी सुभद्रा, उसका भाई कृष्ण) । अजा-भख=पत्नी (अजा-भक्ष्य पत्नी अर्थात् पत्नी) । बितरेक=(१) अलग हुई, (२) व्यतिरेक अलंकार । बिरहिन=(१) बिरहिणी, (२) प्रोषितपतिका नायिका ।

प्रसंग—प्रोषितपतिका नायिका अपनी सखी से अपनी बिरह-व्यथा प्रकट कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) मेरे रात और दिन (प्रियतम) की राह देखते ही व्यतीत होने हैं । (उनके बिना मेरे) प्राण विकल होकर अकुलाते रहते हैं । (न जाने कब वह शुभ दिन होगा जब मैं) सारे दुःखों से छुटकारा पाकर कृष्ण को आँखें भरकर देखूँगी । मुझे तो उनकी पत्नी भी नहीं मिलती है जबकि चन्द्रमा से अधिक मुझे उनके मुख को देखने की लालसा है । सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु ! इस अलग हुई बिरहिणी को तुम कब अपने चरण दिखाओगे ? अर्थात् कब उमे दर्शन दोगे । अथवा इस पद में सूर ने प्रोषितपतिका नायिका और व्यतिरेक अलंकार का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और व्यतिरेक अलंकार है :

१. प्रोषितपतिका नायिका—प्रवासी प्रियतम के वियोग में दुखी होने वाली नायिका को प्रोषितपतिका नायिका कहते हैं

२. व्यतिरेक अलंकार—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय की उत्कृष्टता का वर्णन हो, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है । ‘अधिक ससि मुख चाइ’ में शशि की अपेक्षा मुख की उत्कृष्टता का वर्णन होने से यहाँ व्यतिरेक अलंकार है ।

: १०५ :

सखी रो, सुन परदेसी की बात ।

अरध बीख दें गए धाम को हरि-अहार चलि जात ॥

ग्रह-नक्षत्र-ग्रह-बेद-अरध-कर को बरजें मुहि खात ।

रबि-पंचम सँग गए स्याम घन तातें भन उकतात ॥

कह सहुक्त कब मिलै सूर प्रभु प्रान रहत न तु जात ॥२२॥

शब्दार्थ—अरघ धाम=पन्द्रह दिन (धाम का अर्ध आधा भाग जिसे पक्ष भी कहते हैं और पक्ष का अर्ध पखवाड़ा या पन्द्रह दिन भी होता है)। हरि-अहार=मास, महीना (हरि सिंह, उसका अहार मांस अर्थात् मास या महीना)। ग्रह-नक्षत्र-अरु-वेद-अरघ-कर=विष (ग्रह नौ नक्षत्र सत्ताईस+वेद चार=चालीस; इसका आधा बीस अर्थात् विष)। को बरजै=कौन रोक सकता है। रबि-पंचम=प्राण (रवि अर्थात् सूर्य से पाँचवाँ नक्षत्र वृहस्पति, जिसे जीव भी कहते हैं और जीव का अर्थ प्राण भी होता है)। सहुक्त=(१) भली बात, (२) सहोक्ति अलंकार।

प्रसंग—प्रोषितपतिका विरह-व्यथा से व्यथित होकर अपनी सखी से कह रही है।

अर्थ—हे सखि ! उस प्रवासी कृष्ण की बात तो सुनो। (जाते समय वे लौटने की) पन्द्रह दिन की अवधि बता गये थे (और अब तो) एक महीना बीत रहा है। (पर वे अभी तक वापिस नहीं आये)। मुझे अब विष खाने से कौन रोक सकता है ? अर्थात् कृष्ण के वियोग में अब मैं विष खाकर प्राण त्याग दूँगी, यह बात निश्चित है। मेरे प्राण और कृष्ण एक साथ गये थे, इस कारण से मेरा मन ऊब रहा है। मुझे कृष्ण के लौटने की भली बात कहो तो मेरे प्राण बच सकते हैं, अन्यथा ये चले जायेंगे। कहने का भाव यह है कि मैं कृष्ण के लौटने के शुभ समाचार से ही जीवित रह सकती हूँ। अथवा इस पद में सहोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और सहोक्ति अलंकार है :

१. प्रोषितपतिका नायिका—प्रवासी प्रियतम के वियोग में दुखी होने वाली नायिका को प्रोषितपति नायिका कहते हैं।

२. सहोक्ति अलंकार—सह अर्थ-बोधक शब्दों के प्रयोग से युक्त कथन में सहोक्ति अलंकार होता है। इस पद में 'रबि-पंचम सँग गए स्याम घन' में सहोक्ति अलंकार है।

: १०६ :

बीती जामिनी जुग चार ।

जातबेद सु मोहि मारी बीर-भूषन जार ॥

बनुज-पति-कौ-अनुज-प्यारी गई निपट बिसार ।

नाग-रिपु-भख लगत नाँही, हों रही पच हार ॥

कपट-हीन न मीन सर की मर न बिलुरत त्यार ।

सूर करत बिनोक्त भूचर-चरन करत पुकार ॥२३॥

शब्दार्थ—जामिनी=यामिनी, रात। जुग=युग। जातबेद=स्वर्ण, स्वर्ण-निर्मित आभूषण। बीर-भूषन=वीरों का आभूषण, अर्थात् चन्दन। जार=जलाना।

दनुज-पनि-नौ-अनुज-प्यारी = नींद (दनुज राक्षस, उसका स्वामी रावण, उगका अनुज कुम्भकर्ण, इसकी प्यारी नींद) । नाग-रिपु-भख = पलक (नाग हाथी, उसका रिपु सिंह, उसका भक्ष्य मांस, मांस या पल अर्थात् पलक) । पच = प्रयत्न । विनोक्त = (१) बिना उक्ति के अर्थात् मूक, (२) विनोक्ति अलंकार । भूचर-चरन = मुर्गा (भूचर कीड़े-मकोड़े, उन्हें खाने वाला अर्थात् मुर्गा) ।

प्रसंग—प्रोषितपतिका नायिका अपनी विरह-व्यथा का वर्णन अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि ! प्रियतम के वियोग में) रात चार युगों के समान व्यतीत हुई । स्वर्ण के आभूषणों ने (कुशकाय होने के कारण) मुझे मार डाला, चन्दन ने जला डाला । नींद भी मुझे पूर्णरूप से छोड़ गई है, अर्थात् मुझे रात-दिन कभी भी नींद नहीं आती । मैं प्रयत्न करके हार गई हूँ, पर मेरी पलक भी नहीं लगती । मैं सरोवर में निष्कपट रहने वाली मछली भी न बन सकी जो अपने प्रियतम जल से बिछुड़ने पर प्राण त्यागने को तैयार हो जाती है । (वह अपनी सखी से अपनी विरह-व्यथा कह रही थी कि प्रातःकाल हो गया और) मुर्गों की कूक ने उसे मूक बना दिया । अथवा इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और विनोक्ति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और विनोक्ति अलंकार है :

१. प्रोषितपतिका नायिका—प्रवासी प्रियतम के विरह में दुःखी होने वाली नायिका को प्रोषितपतिका नायिका कहते हैं ।

२. विनोक्ति अलंकार—जहाँ वर्णनीय पदार्थ की किसी अन्य वस्तु के अभाव में भी शोभा का वर्णन हो, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है । इस पद में 'कपटहीन न मीन सर की मरन बिछुरत त्यार' में विनोक्ति अलंकार है ।

: १०७ :

राधे कैसे प्राण बचावें ।

परी महान बिपत्ति सीस पर बीसन-ताप तचावें ॥

सेस-भारधर-जा-पति-रिपु-तिय-जलजुत कबहुं न हेरें ।

बा-निवास-रिपु-धर-रिपु लै सर सदा सूल-सुख पेरे ॥

बाचर नीतन तै सारंग अति बार-बार भर लावें ।

देखत भँवर कंज-रस छाखत आपन तै मुरभावें ॥

पन्नग-सत्रु-पुत्र-रिपु-पितु-सुत-हित-पति कबहुं न हेरें ।

समासोक्ति कर सूर शृंग कौ बार बार बर टेरें ॥२४॥

शब्दार्थ—बीसन-ताप = विष अर्थात् विरहानल की गर्मी । तचावें = जल रही है । सेस-भारधर-जा-पति-रिपु-तिय-जलजुत = वृन्दावन सेस — शेषनाग, भारधर जिसका भार धारण करता है पर्वत, पर्वत की जा पुत्री पार्वती, उसका पति शकर, शकर का रिपु जालंधर, उसकी तिय वृन्दा, जल बन, जुत युक्त, वृन्दा से युक्त बन अर्थात् वृन्दावन ।

बा-निवास-रिपु-धर-रिपु = कामदेव (बा जल, उसमें निवास करने वाला कमल, उसका रिपु चन्द्रमा, उसको धारण करने वाला महादेव, उसका रिपु कामदेव) । सूल-सुख = पीड़ा । बाचर = जल में विचरण करने वाली अर्थात् मछली । नीतन = नेत्र । सारंग = बादल । कंज-रस = कमल-रस । आपन तै मुरभावै = मूर्च्छित हो जाती है । पन्नग-सत्रु-पुत्र-रिपु-पितु-सुत-हित-पति = चन्द्रमा (पन्नग नाग, पर्वत को भी नाग कहते हैं, नाग अर्थात् पर्वत का शत्रु इन्द्र, उसका पुत्र अर्जुन, उसका रिपु कर्ण, उसका पिता सूर्य, उसका सुत सुग्रीव, उसका हितैषी जामवन्त जिसे ऋषि भी कहते हैं और ऋक्ष का अर्थ नक्षत्र भी होता है, नक्षत्रों का पति चन्द्रमा) । समासोक्ति = (१) संक्षिप्त कथन, (२) समासोक्ति अलंकार । भृंग = एक प्रकार का कीड़ा जिसे पतंग भी कहते हैं और पतंग का अर्थ सूर्य भी होता है ।

प्रसंग—विरहिणी राधा की दारुण दशा का वर्णन सखियां आपस में कर रही हैं ।

अर्थ—हे सखियो ! राधा अपने प्राणों को किस प्रकार बचाये, क्योंकि उसके सिर पर तो (प्रियतम के विदेश चले जाने के कारण) एक भारी विपत्ति आ पड़ी है जिससे वह विरहानल की गर्मी से जल रही है । विरह से संतप्त होने के कारण वह वृन्दावन की ओर कभी नहीं देखती । कामदेव अपने बाण से उसे सदा पीड़ा देता रहता है । मछली के समान नेत्रों से वह बादल की भाँति निरन्तर झड़ी लगाये रहती है । भौरों को कमल-रस का पान करते देखकर भावोद्दीप्ति के कारण वह मूर्च्छित हो जाती है । चन्द्रमा की ओर भी वह कभी नहीं देखती । सूरदास कहते हैं कि वह अपने संक्षिप्त कथन द्वारा सूर्य अथवा नायक को बार-बार बुलाती है । अथवा इस में (प्रोषितपतिका नायिका और) समासोक्ति अलंकार का वर्णन है ।

विशेष—इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और समासोक्ति अलंकार है ।

१. **प्रोषितपतिका नायिका**—प्रवासी प्रियतम के विरह से व्यथित होने वाली नायिका को प्रोषितपतिका नायिका कहने हैं ।

२. **समासोक्ति अलंकार**—जहाँ समान विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत का बोध हो, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है । इस पद में प्रस्तुत वर्णन सूर्य अथवा भृंग का है जिसे नायिका दिन निकलने के लिए बार-बार बुला रही है, किन्तु इससे नायक को बुलाने का बोध होता है । अतः समासोक्ति अलंकार है ।

: १०८ :

पलटि-बरन-बृषभानु-नंदिनी-जा-पति-हित-रिपु त्रास---

परी रहत ना कहत कबहुं कछु भरि-भरि ऊरध स्वास ॥

बात आदि औ जान अंत मिलि-रिपु-पति-पतिनी-तास---

पितु-दलपति लखि उदित जरत जनु महा-अग्नि के पास ॥

ताकत नहीं तरनिजा के तट तरुवर महा निरास ।

सूर स्याम घन मिलत छूटि है परकर ग्रीष्म फास ॥२५॥

शब्दार्थ—पलटि-बरन-वृषभान-नंदिनी-जा-पति-हित-रिपु = कामदेव (वृषभान-नंदिनी राधा, इसके वर्ण पलटने से बना धारा, अर्थात् जल, जल की जा पुत्री लक्ष्मी, उसका पति विष्णु, उसका हितू शिव, उसका रिपु कामदेव) । त्रास = व्यथा । ऊरध स्वास = लम्बी साँस । बात आदि औ जान अंत मिलि-रिपु-पति-पतिनी-तास-पितु दलपति = चन्द्रमा (बात पवन, इसका आदि अक्षर हुआ 'प,' जान यान रथ, इसका अंतिम अक्षर हुआ 'थ', प और थ मिलकर बना पथ, पथ का रिपु यमुना उसका पति कृष्ण उसकी पत्नी जाम्बवती, उसका पिता रिक्ष अर्थात् नक्षत्र, नक्षत्रों के दल का पति चन्द्रमा) । महा-अग्नि = दावानल । तरनिजा = यमुना । परकर = (१) साथ ही अर्थात् सखियाँ, (२) परिकर अलंकार ।

प्रसंग—राधा की विरह-व्यथा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) कामदेव द्वारा दी गई व्यथा के कारण राधा केवल पड़ी रहती है । वह कभी भी कुछ नहीं कहती और केवल लम्बी साँमें भरती रहती है । उदित चन्द्रमा को देखकर (वह उसकी शीतल किरणों से) इस प्रकार जलती है, मानो वह दावानल के पास हो । वह यमुना के किनारों की ओर भी नहीं देखती (और उस पर खड़े) वृक्षों को देखकर वह अत्यंत निराश होती है (क्योंकि उसे पिछली सयोग की सुखद घटनाएँ याद आ जाती हैं) । सूरदास कहते हैं कि वह कृष्ण-रूपी मेघ के आने पर ही सखियों-सहित ग्रीष्म (विरह-व्यथा) के पाश से छूट सकेगी । भाव यह है कि कृष्ण के दर्शनों से ही उसकी विरह-वेदना शांत होगी । अथवा इस पद में सूरदास ने (प्रोषितपतिका नायिका और) परिकर अलंकार का वर्णन किया है ।

विशेष—इस पद में प्रोषितपतिका नायिका और परिकर अलंकार है :

१. प्रोषितपतिका नायिका—प्रवासी प्रियतम के विरह से दुखी होने वाली नायिका को प्रोषितपतिका नायिका कहते हैं ।

२. परिकर अलंकार—जहाँ साभिप्राय विशेषण का प्रयोग होता है, वहाँ परिकर अलंकार होता है । यहाँ 'सूर स्याम घन मिलत छूटि है परकर ग्रीष्म फास' में 'स्याम घन' का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकर अलंकार है ।

: १०६ :

प्राननाथ तुम बिन ब्रजबाला हूँ गई सब अनाथ ।

ब्याकुल भई मीन सी तलफत छन छन मीजत हाथ ॥

ग्रहपति-सुत-हित-अनुचर-कौ-सुत जारत रहत हमेस ।

जलपति-भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस ॥

कुंज कुंज लखि नयन हमारे भंजन चाहत प्रान ।

सूरदास प्रभु परकर अंकुर बीज जीवन दान ॥२६॥

शब्दार्थ—प्राणनाथ=कृष्ण । तलफत=तड़पती हैं । मीजत हाथ=हाथ मलती हैं, पछताती हैं । ग्रहपति-सुत-हित-अनुचर-कौ-सुत=कामदेव (ग्रहपति सूर्य, उसका सुत सुग्रीव, उसका हितू राम, उसका अनुचर हनुमान, उसका सुत मकरध्वज, मकरध्वज कामदेव को भी कहते हैं) । जलपति-भूषण=चन्द्रमा (जल गो अर्थात् नन्दी, उसका पति शिव, उसका भूषण चन्द्रमा) । परकर अंकुर—(१) गोपी-रूपी अंकुर, (२) परिकरांकुर अलंकार । जीवन=(१) प्राण, (२) जल ।

प्रसंग—विरह-व्यथिता ब्रज-बलाओं की करुण दशा का वर्णन दूती कृष्ण से कर रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! तुम्हारे बिना सारी ब्रज-बालाएँ अनाथ हो गई हैं । (वे तुम्हारे वियोग में) व्याकुल होकर मछली की भाँति तड़पती हैं और पछताती हैं । कामदेव उनको सदैव जलाता रहता है । चन्द्रमा के उदित होते ही उन पर भयंकर विपत्ति टूट पड़ती है । प्रत्येक कुंज को देखकर हमारे नेत्र प्राणों को नष्ट करने पर उतार हो जाते हैं । भाव यह है कि उन कुंजों को देखकर, जिनमें तुम उनके साथ क्रीड़ाएँ किया करते थे, उन्हें मर्मांतक वेदना होती है । प्रभु ! तुम गोपी-रूपी अंकुरों को जल देकर उनकी रक्षा करो । अथवा इस पद में (प्रोषितपति नायिका और) परिकरांकुर अलंकार है ।

विशेष—इस पद में प्रोषितपति नायिका और परिकरांकुर अलंकार है :

१. **प्रोषितपति नायिका**—प्रवासी प्रियतम के विरह से दुखी होने वाली नायिका को प्रोषितपति नायिका कहते हैं ।

२. **परिकरांकुर अलंकार**—जहाँ साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग हो वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है । इस पद में 'दीजै जीवन दान' में 'जीवन' विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार है ।

: ११० :

चाहन-गंध बैरी बीर ।

आपनो हित चहत अनहित होत छाँड़त तीर ॥

नृत्य-भेद बिचार बा बिनु इन्द्रबाहन पास ।

सूर प्रस्तुत कर प्रसंसा करत खंडित नास ॥२७॥

शब्दार्थ—चाहन-गंध—सुगंधि को चाहने वाला अर्थात् भौरा । बीर=सखी । नृत्य-भेद=तालाब (नृत्य-भेद ताल, ताल से तालाब) । बा=जल । इन्द्र-बाहन=हाथी । प्रस्तुत कर प्रसंसा=(१) प्रशंसा प्रस्तुत करके, (२) अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार । खंडित=(१) भग्नहृदया, (२) खंडिता नायिका ।

प्रसंग—खंडिता नायिका प्रियतम के द्वारा अन्य नायिका के साथ किये गये रमण से दुखी होकर अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! (पुष्प-पुष्प की गन्ध चाहने वाला) भौंरा मेरा शत्रु है । य भौंरा अपना ही हित चाहता है और अपने हित में बाधा होते ही साथ छोड़ देता है वह तालाब के जल-विहीन होते ही हाथी के पास (उसका मद-जल पीने के लिये) चल जाता है । सूर कहते हैं कि उस नायक की प्रशंसा करना उस भग्नहृदय का नाश है अथवा इस पद में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार और खंडिता नायिका है ।

विशेष—इस पद में खंडिता नायिका और अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है :

१. खंडिता नायिका—जो नायिका अपने प्रियतम के शरीर पर अन्य नायिक के साथ रमण से आये रति-चिह्नों को देखकर दुखी होती है, उसे खण्डिता नायिक कहते हैं । इस पद में नायक को भ्रमर बताने से उसकी पर-स्त्री के साथ रमण का प्रवृत्ति का बोध होता है जिससे स्वकीया नायिका दुखी है । अतः खंडिता नायिका है

२. अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार—जहाँ अप्रस्तुत वर्णन से प्रस्तुत का बोध होता है वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है । यहाँ अप्रस्तुत भ्रमर की प्रवृत्तियों से तात्पर्य नायक की प्रवृत्तियों से है । अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है ।

: १११ :

देखत तू कत मान बिढायो ।

भू-सुत-सत्रु-नाथ-हित-पितु-त्रिय-प्रिय हिय बचन डिढायो ॥

नागसुता-पति-पितु-अरि-आधो-नाम सु बदन छपायो ।

सूर-सुता-अरि-बंधु-तात-अरि-भूषन बचन सवायो ।

सुरभी-तम-जा-सुत-सुत-की-जनु-माता तलफ बढ़ायो ।

सूर रोस परजाइ उक्त कत कंठ न स्याम लगायो ॥२८॥

शब्दार्थ—बिढायो = बढ़ाया, धारण कर लिया । भू-सुत-सत्रु-नाथ-हित-पितु त्रिय-प्रिय = कलह (भू पृथ्वी, उसका सुत केवाँच, उसका शत्रु बानर, उसका नाथ राम उसका हितू भरत, उसका पितु दशरथ, उसकी त्रिया कैकेयी, उसकी प्रिय कलह) नागसुता-पति-पितु-आदि-आधो-नाम = चन्द्र (नागसुता सुलोचना, उसका पति मेघनाद उसका पिता रावण, उसका अरि रामचन्द्र, उसका आधा नाम चन्द्र) । बदन = मुख सूर-सुता-अरि-बंधु-तात-अरि-भूषन = क्रोध (सूर सूर्य, उसकी सुता यमुना, उसका अरि बलराम, उसका बंधु कृष्ण, उसका तात बसुदेव, उसका अरि कस, उसका भूषण क्रोध) सुरभी-तम-जा-सुत-सुत-की-जनु-माता = मछली (सुरभी गो + तम, गौतम उसकी जा पुत्र अंजनी, उसका सुत हनुमान, उसका सुत मकरध्वज, उसकी माता मछली) । तलफ = तड़प । परजाइ उक्त—(१) कथन नष्ट हो जाये, (२) पर्यायोक्ति अलंकार । रो परजाइ = रोष पर दृढ़ अर्थात् कलहांतरिता नायिका ।

प्रसंग—कलहांतरिता नायिका की सखी उसकी भर्त्सना कर रही है ।

अर्थ—तूने (प्रियतम को) देखते ही क्यों मान धारण कर लिया ? (और फिर निरंतर) कलह से भरे वचनों को अपने हृदय में धारण किये रही । तूने अपना चन्द्र

मुख भी (अपने अंचल में) छिपा लिया । तेरे क्रोध-भरे वचन भी निरंतर अधिकाधिक होते गये । (जब तेरा प्रियतम तुझसे रूठकर चला गया है तो अब तू उसके विरह में) मछली की-सी तड़प बढ़ाये हुए है । तूने अपनी क्रोध-भरी उक्ति को नष्ट करके कृष्ण को अपने गले से क्यों नहीं लगाया ? अथवा इस पद में कलहांतरिता नायिका और पर्यायोक्ति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में कलहांतरिता नायिका और पर्यायोक्ति अलंकार है :

१. कलहांतरिता नायिका—अपने प्रियतम से कलह करके पछताने वाली नायिका को कलहांतरिता नायिका कहते हैं । इस पद की नायिका अपने प्रियतम से कलह करके फिर प्रायश्चित्त के रूप में मछली की भाँति तड़प रही है । अतः कलहांतरिता नायिका है ।

२. पर्यायोक्ति अलंकार—जहाँ अभीष्टार्थ की अभिव्यक्ति प्रकारांतर से की जाये, वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है । इस पद में सखी प्रकारांतर से नायिका की भर्त्सना कर रही है, अतः पर्यायोक्ति अलंकार है ।

: ११२ :

बैठी आज कुंजन ओर ।

तकत है वृषभान-नंदिनी बलित नंदकिसोर ॥

भानु-सुत-हित-सत्रु-पितु लगि उठत चहुँकत हेर ।

ह्वं गए सूर सूल सूरज बिरह अस्तुत फेर ॥२६॥

शब्दार्थ—वृषभान-नंदिनी = राधा । बलित = टेढ़े, धोखेबाज । भानु-सुत-हित-सत्रु-पितु = पवन (भानु-सुत कर्ण, उसका हितू दुर्योधन, उसका शत्रु भीम, उसका पिता पवन) । उठत चहुँकत = चौक उठती थी । हेर = देखकर । सूर = सुमन अर्थात् पुष्प । सूल = शूल, काँटे । बिरह अस्तुत = (१) अस्तुत निंदा, उसका विरह अभाव अर्थात् प्रशंसा (२) व्याजस्तुति अलंकार ।

प्रसंग—कुंजों में बैठी हुई राधा आकुलता से कृष्ण की प्रतीक्षा कर रही है । उसकी इसी दशा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—आज राधा कुंजों में बैठी हुई धोखेबाज कृष्ण की (आकुलता से) प्रतीक्षा कर रही थी । पवन द्वारा (हिलाये गये पत्तों की खड़खड़ाहट) सुनकर वह चौक उठती थी । (कृष्ण के संकेत-स्थल पर न पहुँचने के कारण) विरहावस्था में उसे पुष्प भी काँटों के समान निन्द्य बन गये थे; अर्थात् पुष्प उसे काँटों की-सी पीड़ा दे रहे थे । अथवा इस पद में (विप्रलब्धा नायिका और) व्याजस्तुति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में विप्रलब्धा नायिका और व्याजस्तुति अलंकार है :

१. विप्रलब्धा नायिका—संकेत-स्थल पर नायक को न पाकर उसकी अनुपस्थिति से दुखी होने वाली नायिका को विप्रलब्धा नायिका कहते हैं । इस पद में वर्णित नायिका (राधा) संकेत-स्थल पर जाकर नायक (कृष्ण) को न पा सकी है और

आकुलता से उसकी प्रतीक्षा कर रही है। अतः विप्रलब्धा नायिका है।

२. व्याजस्तुति अलंकार—जहाँ प्रशंसा में निदा, या निदा में प्रशंसा हो, वहाँ व्याजस्तुति अलंकार होता है। यहाँ प्रशंसा-योग्य पुष्पों को कांटों के समान दुखदाई बताकर उनकी निदा की गई है, अतः व्याजस्तुति अलंकार है।

: ११३ :

फिर-फिर उभकि भाँकत बाल ।

बन्निह-रिपु की उमड़ देखत करत कोटिन ख्याल ॥

१. भच्छ-बिधि के खरक फरकत अच्छ चारों ओर ।

केस ओर निहार फिर-फिर तकत उरज कठोर ॥

हों कहत ना जाउ उतका नंदनंदन बेग ।

सूर कर आछेप राखौ आजु के दिन नेग ॥३०॥

शब्दार्थ—उभकि भाँकत=उचक कर भाँकती है। बन्निह-रिपु=आग का शत्रु अर्थात् बादल। भच्छ-बिधि=पत्ता (बिधि ब्रह्मा, ब्रह्मा को 'अज' भी कहते हैं, अज बकरे को भी कहते हैं, बकरा का भक्ष्य पत्ता)। खरक=खड़खड़ाहट। अच्छ=अक्ष नेत्र। केस=द्वार (केस बार, बार का अर्थ द्वार भी होता है)। फिर-फिर=बार-बार उरज=कुच। उतका=(१) उस ओर, (२) उत्कंठिता नायिका। बेग=शीघ्र। आछेप=(१) व्यंग्य, (२) आक्षेप अलंकार। नेग=रीति।

प्रसंग—नायक से मिलने के लिए उत्कंठिता नायिका की उत्कंठा का वर्णन सखी नायक (कृष्ण) से कर रही है।

अर्थ—(हे कृष्ण ! तुमसे मिलने के लिए अत्यंत आतुर होकर वह) बाला बार-बार उचक कर (तुम्हारी राह) देखती है। बादलों को उमड़ा हुआ देखकर वह करोड़ों प्रकार के विचार करती है। पत्तों की खड़खड़ाहट होते ही (वह तुम्हारे आने की आशंका से) नेत्रों को चारों ओर फैलाती है। द्वार की ओर बार-बार देखकर वह अपने कठोर कुचों को देखती है। हे कृष्ण ! मैं तुमसे विनय करती हूँ कि तुम शीघ्रता से उस नायिका की ओर मत जाओ (ताकि उसकी उत्कंठा बनी रहे)। सूरदास कहते हैं कि इस रीति से आज के दिन उसने (सखी ने) व्यंग्य द्वारा (नायिका की) रक्षा की। अथवा इस पद में उत्कंठिता नायिका और आक्षेप अलंकार है।

विशेष—इस पद में उत्कंठिता नायिका और आक्षेप अलंकार है :

उत्कंठिता नायिका—संकेत-स्थल पर आतुरता से नायिका की प्रतीक्षा करने वाली नायिका को उत्कंठिता नायिका कहते हैं। इस पद में वर्णित नायिका उत्कंठा से केलि-स्थल पर नायक (कृष्ण) की प्रतीक्षा कर रही है। अतः उत्कंठिता नायिका है।

२. आक्षेप अलंकार—अभीष्ट अर्थ का निषेध-सा किये जाने में आक्षेप अलंकार होता है। यहाँ 'हों कहत ना जाउ उतका नंदनंदन बेग' में अभीष्टार्थ कृष्ण को तुरन्त नायिका के पास भेजना है। अतः आक्षेप अलंकार है।

: ११४ :

दुरद मूल के आदि राधिका बैठी करत सिंगार ।
 दधिसुत-सुत-सुत-सुत अरि-भख मुख करै बिमुख दुख भार ॥
 जलचर-जा-सुत-सुत सी नासा धरै अनासा हार ।
 बानर-हित-जा-पति-पतिनी से बांधे बार अबार ॥
 सारंग-सुत नीकन में सोहत मनो अनीक निकार ।
 सूरज प्रभु बिरोध सौ भासत बस परजंक बिचार ॥३१॥

शब्दार्थ—दुरद मूल के आदि = कुञ्ज (दुरद कुञ्जर, मूल जल, कुञ्जर और जल के आदि-अक्षर जोड़ने से बना—कुञ्ज) । दधिसुत-सुत-सुत-सुत-अरि भख = चन्द्रमा (दधिसुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उसका सुत सूर्य, उसका अरि राहु, उसका भक्ष्य चन्द्रमा) । बिमुख = सपत्नियाँ, साँतें । जलचर-जा-सुत-सुत = शुक, तोता (जलचर मत्स्य, उसकी जा मत्स्योदरी, उसका सुत व्यास, उसका सुत शुकदेव, शुक अर्थात् तोता) । अनासा = नाशहीन ; अर्थात् जीवनप्रद । बानर हित-जा-पति-पतिनी = यमुना (बानर हनुमान, उसका हितू जाम्बवन्त, उसका पति कृष्ण, उसकी पत्नी यमुना) से = समान । बार = बाल, केश । अबार = अभी-अभी । सारंग-सुत = काजल (सारंग दीपक, उसका सुत काजल) । नीकन मै = नेत्रों में । अनीक = नेजा । निकार = निखार, धार । बिरोध सौ भासत = (१) विरोध-सा लगता है, (२) विरोधाभास अलंकार । बस परजंक = (१) पलंग पर बैठकर, (२) वासकसज्जा नायिका ।

प्रसंग—राधा शृङ्गार किये हुए नायक (कृष्ण) की प्रतीक्षा कर रही है । उसी का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) कुञ्ज में बैठी हुई राधा (प्रियतम से मिलने के उल्लास में) शृङ्गार कर रही है । उसके चन्द्र-मुख ने सपत्नियों को दुःख से भर दिया है । उसकी शुक-जैसी नासिका है । वह जीवनप्रद हार धारण किये हुए है । यमुना के समान श्याम केश उसने अभी-अभी सँवार कर बाँधे हैं । उनके नेत्रों में काजल मुशोभित है (जो ऐसा प्रतीत होता है) मानो नेजा की धार हो । हे प्रभु ! (यद्यपि) यह (कथन) विरोध-सा लगता है (तथापि यह सत्य है कि वह नायिका) पलंग पर बैठकर (आपका ही) विचार कर रही है ; अर्थात् वह आपकी प्रतीक्षा कर रही है । अथवा इस पद में विरोधाभास अलंकार और वासकसज्जा नायिका है ।

विशेष—इस पद में वासकसज्जा नायिका और विरोधाभास अलंकार है :

१. वासकसज्जा नायिका—जो नायिका शृङ्गार से सज्जित होकर और प्रियतम का आना निश्चित जानकर सम्भोग-सामग्री एकत्र करके उसकी प्रतीक्षा करती है, उसे वासकसज्जा नायिका कहते हैं । इस पद में राधा शृङ्गार करके पलंग पर बैठकर कृष्ण के आने की प्रतीक्षा कर रही है, अतः वासकसज्जा नायिका है ।

२. विरोधाभास अलंकार—जहाँ विरोध का आभास हो, पर वास्तव में

विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है । इस पद में 'मुख करै बिमुख' 'नासा धरै अनासा हार', 'बाँधे बार अबार' और 'नीकन में सोहत मनो अनीक निकार' में विरोध-सा लगता है, पर वास्तव में विरोध नहीं है । अतः विरोधाभास अलंकार है ।

: ११५ :

हेरत हरष नंदकुमार ।

बिन दियै बिपरीत कबजा पगन लाली भार ॥

रंच उघरत देख नीकन मान उर बर भेद ।

परी सारँग-रिपु न मानत करत अद्भुत खेद ॥

निकस सारँग तैं सु सारँग हरत तन की ताप ।

सुधाधर मुख पे रखाई दई धौं किहि थाप ॥

श्री सु-तन तैं सरस सागर होत छन छन आज ।

कियो पति आधीन सूरज कै बिभावन व्याज ॥३२॥

शब्दार्थ—बिपरीत कबजा = कबजा का उल्टा जावक । रच = तनिक । नीकन = नेत्र । बर भेद = महान् रहस्य । सारँग-रिपु = वस्त्र, धूँघट (सारँग दीपक, उसका रिपु वस्त्र अर्थात् धूँघट) । सारँग = शंख, शंख जैसी ग्रीवा । सारँग = कोकिल, कोकिल की-सी मधुर वाणी । ताप = संताप, दुख । सुधाधर = चन्द्रमा । किहि = किसने । थाप = थापना, लगाना । श्री = कांति । सु-तन = सुन्दर शरीर । सरस सागर = रस का सागर । पति आधीन = (१) पति को वश में करना, (२) स्वाधीनपतिका नायिका । विभावन = (१) स्पष्टतः, (२) विभावना अलंकार ।

प्रसंग—नायिका (राधा) ने अपने पति (कृष्ण) को अपने वश में किया हुआ है । इसी का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) बिना जावक (महावर) लगे ही (राधा के) चरणों की भारी लाली को देखकर कृष्ण प्रसन्न हो रहे हैं । उनके नेत्रों को तनिक-सा उघड़ता हुआ देखकर ही वे अपने हृदय में इसे महान् रहस्य मानते हैं । वे अत्यन्त खेद करते हैं कि (राधा के मुख पर) पड़ा हुआ धूँघट क्यों नहीं हटता । (राधा की) शंख-जैसी ग्रीवा से कोकिल की-सी मधुर वाणी निकलकर उनके तन के संताप को दूर कर देती है । (वे निरन्तर यह सोचते रहते हैं कि) राधा के चंद्र-मुख पर न जाने किसने रखाई भर दी है । भाव यह है कि कृष्ण सदैव राधा की मधुर वाणी को सुनने के लिए लालायित रहते हैं पर राधा अपनी बातों से उन्हें तृप्त नहीं कर पाती । राधा के सुन्दर शरीर की कांति से आज क्षण-क्षण में रस का सागर उमड़ रहा है । स्पष्टतः ही उसने अपने प्रियतम को अपने वश में कर रक्खा है । अथवा इस पद में स्वाधीनपतिका नायिका और विभावना अलंकार है ।

विशेष—इस पद में स्वाधीनपतिका नायिका और विभावना अलंकार है :

१. स्वाधीनपतिका नायिका—जो नायिका अपने रूप-गुण से अपने पति को सदा अपने आधीन रखती है, उसे स्वाधीनपतिका नायिका कहते हैं। इस पद में कृष्ण राधा के सौन्दर्य के कारण उसके वश में हैं। अतः स्वाधीनपतिका नायिका है।

२. विभावना अलंकार—जहाँ कारण और कार्य के सम्बन्ध का चमत्कारिक वर्णन हो, वहाँ विभावना अलंकार होता है। इसके छः भेद होते हैं—

(क) पहली विभावना—जहाँ कारण के बिना कार्य का वर्णन हो। यथा—
'बिन दियँ बिपरीत कबजा, पगन लाली भार ।'

(ख) दूसरी विभावना—जहाँ कारण की अपूर्णता से भी कार्य की सिद्धि का वर्णन हो। यथा—

'रंच उघरत देख नीकन मान उर बर भेद ।'

(ग) तीसरी विभावना—जहाँ प्रतिबन्धक होते हुए भी कार्य की सिद्धि का वर्णन हो। यथा—

'परो सारँग-रिपु न मानत करत अदभुत खेद ।'

(घ) चौथी विभावना—जहाँ अकारण से कार्य की उत्पत्ति हो। यथा—
'निकस सारँग तै सु सारँग हरत तन की ताप ।'

(ङ) पाँचवीं विभावना—जहाँ विरोधी कारण से कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो। यथा—

'सुधाधर मुख पै ख्वाई, दई धौ किहि थाप ।'

(च) छठी विभावना—जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति हो। यथा—
'श्री सु-तन तै सरस सागर होत छन छन आज ।'

: ११६ :

सजनी, हौं न स्याम-मुख हेरौ ।

सूर-सुता-पितु-राग-गंध-पितु-प्रिय-जुत-आदि सकेरौ ॥

मुख-समूह-मानुस-ताही-बिधि करौ न कबहूँ फेरौ ।

पे निरजर-रिसनी कौं कबहूँ सबद न सुंदर पेरी ॥

ना जानौं अनुराग कहाँ तैं मोहि घने पन घेरी ।

भूषन-पति-अहार-सुत बेंरी बारत अंग उजेरी ॥

पलटत बान भानुजा तट में निरखत दुख बहुतेरी ।

सूर सुजान बिभावन पहिलौ किंकर कर मन चेरी ॥३३॥

शब्दार्थ—हौं=मैंने । हेरौ=देखा । सूर-सुता-पितु-राग-गंध-पितु-प्रिय-जुत आदि सकेरौ=यशोदा (सूर सूर्य, उसकी सुता यमुना; पितु राग राग का पिता अर्थात् सुर; गंध पितु, गंध का पिता अर्थात् मलय; उसका प्रिय तनु; 'यमुना', 'सुर', 'मलय' और 'तनु' शब्दों के आदि वर्णों को मिलाकर बना—यसुमत अर्थात् यशोदा) । मुख-

समूह-मानुस-ताही बिधि करी=आंगन (मुख आनन; समूह गण, मानुस नर; इन्हें भी पूर्वोक्त विधि से करने पर अर्थात् आनन, गण, नर का आदि वर्ण मिलाने से 'आंगन' शब्द बना) । पै निरजर रिसनी=बांसुरी (पै पय बारि; निरजर निर्जर सुर, रिसनी रीसनी; बारि, सुर और रीसनी के आदि वर्ण मिलाने से 'बांसुरी' शब्द बना) । घने घन=अधिकता से । भूषन-पति-अहार-सुत=चन्द्रमा (भूषन मुद्रा लोपामुद्रा, उसका पति अगस्त्य, उसका अहार समुद्र, उसका सुत चन्द्रमा) । बारत=जलाता है । उजेरी=उजाला, प्रकाश । पलटत बान=लता (बान बाण, इसे सर भी कहते हैं । सर का अर्थ ताल भी होता है । ताल का उल्टा लता) । भानुजा=यमुना । बिभावन पहिलौ=(१) पहला निर्णय, (२) पहली विभावना ।

प्रसंग—कृष्ण के प्रति अनुरागवती नायिका अपनी मनोदशा का वर्णन अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मैंने तो कृष्ण का मुख भी नहीं देखा । (कभी) यशोदा के आंगन के चक्कर भी नहीं लगाये और न कृष्ण की बांसुरी का मधुर शब्द ही सुना । मैं नहीं जानती कि (कृष्ण के) अनुराग ने मुझे इतनी अधिकता से कहाँ से घेर लिया है । (इसी अनुराग तथा कृष्ण से वियोग के कारण) वैरी चन्द्रमा का प्रकाश मेरे अंग जलाता है और यमुना तट की लताओं को देखकर मुझे बहुत अधिक दुख होता है । सूरदास कहते हैं कि बुद्धिमानों का पहिला निर्णय यही होना चाहिए कि वे मन को अपना दास बनाकर वश में कर लें । अथवा इस पद में प्रथम विभावना अलंकार (और पूर्वानुरागिनी नायिका) है ।

विशेष—इस पद में पूर्वानुरागिनी नायिका और विभावना प्रथम अलंकार है :

१. पूर्वानुरागिनी नायिका—श्रवण, दर्शन आदि से नायक के प्रति अनुराग करने वाली नायिका को पूर्वानुरागिनी नायिका कहते हैं । इस पद की नायिका का अनुराग स्वप्नजन्य है ।

२. प्रथम विभावना अलंकार—जहाँ कारण के बिना ही कार्य की सिद्धि का वर्णन हो, वहाँ प्रथम विभावना अलंकार होता है । इस पद में कारण के बिना ही कार्य (अनुराग) की सिद्धि का वर्णन है । अतः प्रथम विभावना अलंकार है ।

: ११७ :

जसुमत देख अनौ प्रान ।

वर्ष सर को भयो पूरन अबै ना अनुमान ॥

हीन-सुत कौ हरष हर कै कियो सो सब जान ।

भान सुन सो जीब निसि गुन प्रथम जोर बलान ॥

सिधुजा गुन लवन कीन्हो अंत तै पहिचान ।

बूधा ब्रज की नारि नित प्रति देत उरहन आन ॥

तोहि अपनौ लाल प्यारी, हमें कुल की कान ।

सूर समझ बिभावना है दूसरी परमान ॥३४॥

शब्दार्थ—प्राण=प्राण, कृष्ण । सर=पाँच (सर बाण, बाण पाँच है) । हीनसुत=पूतना नामक राक्षसी (सुत पूत, हीन ना, पूत+ना=पूतना) । भान सुन सो जीव निसि गुन प्रथम जोर बखान=तृणावर्त नामक राक्षस (भानु त्रिमूर्ति; सुन शून्य नाक; जीव बृहस्पति; निसि गुन तम; त्रिमूर्ति नाक, बृहस्पति और तम शब्दों के प्रथम अक्षरों को जोड़ने से 'त्रिनावृत' बना, अर्थात् तृणावर्त) । सिन्धुजा गुन लवन कीन्हौ अंत तै पहिचान=मारा (सिन्धुजा रमा; लवन का गुण खारा; रमा और खारा के अंतिम अक्षरों के जोड़ने से बना—मारा) । उरहन=उलाहना । परमान=प्रमाण, मान्य ।

प्रसंग—कृष्ण की शरारतों से तंग आकर ब्रज-बालाएँ यशोदा से कह रही हैं ।

अर्थ—हे यशोदा ! अपने कृष्ण को देखो, अर्थात् उसकी शरारतों पर ध्यान दो । अभी तो वह अनुमान से भी पाँच वर्ष का नहीं हुआ है, फिर भी सब लोग जानते हैं कि उसने पूतना राक्षसी के हृष का हरण कर लिया है; अर्थात् उसे जान से मार डाला है । उसने तृणावर्त नामक राक्षस को भी मार दिया है । तुम्हें व्यर्थ ही प्रतिदिन आ-आकर ब्रज की नारियाँ उलाहना देती हैं (क्योंकि तुम उनकी बातों पर ध्यान ही नहीं देती) । यदि तुम्हें अपना पुत्र प्यारा है तो हमें भी अपने कुल की मर्यादा प्यारी है । सूरदास कहते हैं कि यद्यपि ब्रज-नारियों का यह निर्णय स्पष्ट है (तथापि) दूसरी बात भी मान्य है । अथवा इसमें द्वितीय विभावना अलंकार है ।

विशेष—इस पद में द्वितीय विभावना अलंकार है :

द्वितीय विभावना अलंकार—कारण के अपूर्ण होने पर भी जहाँ कार्य की सिद्धि का वर्णन किया जाता है, वहाँ द्वितीय विभावना अलंकार होता है । इस पद में वर्णित कृष्ण की पाँच वर्ष की आयु अपूर्ण कारण है, पर पूतना, तृणावर्त आदि का वध कार्य की पूर्णता है । अतः द्वितीय विभावना अलंकार है ।

: ११८ :

तात तात पै जात अकेली ।

दुती-समूह-दिवस-पति-नंदनि संग न सुख सहेली ॥

उरज अनूप उठे चारो दिसि सिब-सुत-बाहन-खाद ।

सम्भ-सेन से मारी डोलत पग पग पग-रिपु साद ॥

तदपि न उरत कूल कालिंदी धारौ औचित माँझ ।

सूर स्याम संग बिसेषोक्ति कहि आई अबसर साँझ ॥३५॥

शब्दार्थ—तात तात=कृष्ण । दुति-समूह-दिवस-पति-नंदनि=राधा (दुति द्वितीय, समूह राशि, द्वितीय राशि अर्थात् वृष; दिवस पति सूर्य जिसे भानु भी कहते

हैं; वृष + भानु + नंदनि = वृषभानु नन्दिनी अर्थात् राधा) । सुरुच = चतुर । उरज = पयोधर अर्थात् बादल । सिब-सुत-बाहन-खाद = सर्प (सिब सुत कार्तिकेय, उमका बाहन मोर, उसका खाद्य सर्प) । सम्भु सैन = शिव की सेना, भूत-प्रेत आदि । पग-ग्निपु = काँटा । साद = विषाद, दुख । औचित = चित्त में । विशेषोक्ति = (१) विशेष बात, (२) विशेषोक्ति अलंकार ।

प्रसंग—अभिसारिका नायिका (राधा) कृष्ण से मिलने के लिए मंकेत स्थल पर जा रही है । उसी का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) राधा कृष्ण से मिलने के लिए अकेली जा रही है । उसके साथ उसकी कोई चतुर सखी भी नहीं है । गहन बादल चारों ओर उमड़ रहे हैं । वह सर्प, भूत, प्रेत आदि (के भय से) मारी-मारी घूम रही है । पैरों में लगे काँटे उसे दुःख दे रहे हैं । तथापि वह यमुना के किनारे जाती हुई भयभीत नहीं हो रही है, (क्योंकि उसने वहाँ पहुंचने का संकल्प अपने) चित्त में धारण कर रक्खा है । मूरदास कहते हैं कि वह सायंकाल में ही यह विशेष बात कह आई थी (कि सायंकाल में ही मिलने का अवसर उचित है) । अथवा इस पद में (अभिसारिका नायिका और) विशेषोक्ति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में अभिसारिका नायिका और विशेषोक्ति अलंकार है :

१. अभिसारिका नायिका—कामातुर होकर नायक से निश्चित समय और स्थान पर मिलने के लिए जाने वाली नायिका को अभिसारिका नायिका कहते हैं । इस पद में प्रयुक्त 'तात तात पे जात अकेली' से अभिसारिका नायिका का संकेत है ।

२. विशेषोक्ति अलंकार—कारण के होते हुए भी कार्य के न होने के वर्णन में विशेषोक्ति अलंकार होता है । यहाँ रति-केल के कारण मेघ आदि तो है, पर रतिकेलि का कार्य सम्पन्न नहीं हुआ है । अतः विशेषोक्ति अलंकार है ।

: ११६ :

अब रथ देख परत न धूरि ।

बूरि बढ़िगो स्याम सुंदर ब्रज-सजीवन-मूरि ॥

भूमि-सुत की देख करनी आदि तें कर हीन ।

परे जीवन मध्य नाहीं रह न पावत मीन ॥

अष्टसुर इनकों पठाये कंस नृप के आस ।

ति पीपी पल माँझ कोन्ही निपट जीव निरास ।

कलहनी-पति-पिता-पुत्री तकत बनत न आज ।

कौन जानत रहे यह बिन सम्भवन को काज ॥

आइहै क कहौ सजनो सकल मोहि जनाइ ।

सूर समुझै गमनपतिका करत सुरत सुभाइ ॥३६॥

शब्दार्थ—धूरि=धूल। ब्रज-सजीवन-मूरि=ब्रजवासियों को जीवन-दान देने वाला। भूमि-सुत=अक्रूर (भूमि पृथ्वी, उसका सुत अंकुर अर्थात् अक्रूर)। करनी आदि तँ कर हीन क्रूर-कार्य (करनी कार्य, आदि तँ कर हीन=अक्रूर के आदि-वर्ण 'अ' को हटाने से 'क्रूर' शब्द बना)। अष्ट-सुर=बसुदेव (अष्ट वसु+सुर देव=वसुदेव)। त्रास=भय। ति पीपी=गोपी (तीन पीपी=छः+पी छपी अर्थात् गोपी। कलहनी-पति-पिता-पुत्री=यमुना (कलहनी का पति शनि, उसका पिता सूर्य, उसकी पुत्री यमुना)। बिन सम्भवन=(१) सम्भावना के बिना अर्थात् असम्भव, (२) असम्भव अलंकार। गमन-पति-का (१) पति का जाना, (२) गच्छतपतिका नायिका।

प्रसंग—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर सखी सखी से राधा तथा गोपियों की व्यथा का वर्णन कर रही है।

अर्थ—ब्रजवासियों को जीवन-दान देने वाले कृष्ण का रथ इतनी दूर चला गया है कि अब तो (उससे उठने वाली) धूल भी दिखाई नहीं देती। अक्रूर का यह क्रूर कार्य तो देखो (कि वह कृष्ण को यहाँ से ले गया है)। जल के अन्दर न रहने के कारण (जिस प्रकार) मछली जीवित नहीं रह पाती (उसी प्रकार अक्रूर ने कृष्ण को ले जाकर) एक क्षण में ही गोपियों को पूर्णतया जीवन से निराश कर दिया है; अर्थात् वे अब जीवन न रह सकेंगी। (कृष्ण के बिना) आज तो यमुना की ओर देखा भी नहीं जाता। कौन जानता था कि यह असम्भव कार्य भी होकर रहेगा। हे सजनी! तुम सब मुझे यह बताओ कि क्या कभी वे लौटकर भी आयेंगे। सूरदास कहते हैं कि पति के जाने की स्मृति वह नायिका (राधा) स्वभाविक रूप से करती है। अथवा इस पद में गमनपतिका (गच्छतपतिका) नायिका और असम्भव अलंकार है।

विशेष—इस पद में गच्छतपतिका नायिका और असंभव अलंकार है :

१. **गच्छतपतिका नायिका**—जिस नायिका का प्रियतम विदेश चला गया है, उसे गच्छतपतिका (अथवा प्रोषितपतिका) नायिका करते हैं। इस पद में वर्णित नायिका (राधा) का पति (कृष्ण) विदेश चला गया है। अतः गच्छतपतिका नायिका है।

२. **असंभव अलंकार**—जहाँ सम्भावना के बिना ही कार्य की मिद्धि हो, वहाँ असम्भव अलंकार होता है। इस पद में प्रयुक्त 'कौन जानत रहै यह बिन सम्भवन कौ काज' में असम्भव अलंकार है।

: १२० :

बन तँ आज नंद किसोर ।

अली आवत करत मुरली की महा धनधोर ।

दूगन तें कछु करत बातें भौह तें दिन-अंत ।

जंगमनि तें सुर सुनावत सरस सुखमावत ॥

देख हुलसत हीय सबके निरखि अद्भुत रूप ।

सुर असंगत जतावत अयो पतिका रूप ॥३७॥

शब्दार्थ—घनघोर=बादल की घोर । दिन-अन्त=दिन का अन्त अर्थात् रात्रि । जंगमनि=चलने वाले जंगम, अर्थात् चरण । सुखमावत=सुषमा से युक्त अर्थात् सुन्दर । असंगत=(१) बे-मेल बातें, (२) असंगति अलंकार । अयो पतिका=(१) आये हुए पति का, (२) आगमपतिका नायिका ।

प्रसंग—वन से मुरली बजाते हुए आने वाले कृष्ण की चेष्टाओं का तथा उनके सौन्दर्य का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मुरली का बादल की घोर के समान शब्द करते हुए आज कृष्ण वन से लौट रहे थे। नेत्रों के सकेतों से कुछ बातें कर रहे थे और भौहों से रात्रि का सकेत कर रहे थे; अर्थात् भौहों के सकेतों से वे नायिका को रात्रि में मिलने के लिए कह रहे थे । वे अपने चरणों (के नूपुरों) से सरस और सुन्दर शब्द सुना रहे थे । उनके अद्भुत सौन्दर्य को देखकर सबके हृदय उल्लसित हो उठे थे । मूरदास कहते हैं कि आये हुए पति का यह स्वरूप बेमेल की वानों से युक्त है । अथवा इस पद में असंगति अलंकार और आगमपतिका नायिका है ।

विशेष—इस पद में आगमपतिका नायिका और असंगति अलंकार है ।

१. आगमपतिका नायिका—जो नायिका अपने पति के लौटने पर हर्षित होती है, उसे आगमपतिका (या आगतपतिका) नायिका कहते हैं । 'देख हुलसत हीय सबके' में नायिका का हर्ष भी सम्मिलित है । अतः आगमपतिका नायिका है ।

२. असंगति अलंकार—कारण और कार्य की असंगति में असंगति अलंकार होता है । इस में मुरली के स्वर को महा घनघोर, नेत्रों से बातें करना, भौहों से रात्रि आदि बताने में संगति नहीं है । अतः असंगति अलंकार है

: १२१ :

जब तें हों हरि रूप निहारौ ।

तब तें कहा कहौं री सजनी लागत जग अंधियारौ ॥

तम-हर-सुत-गुन-आदि-अंत कवि का मतिबंत बिचारौ ।

मेरे जान अनीतन इन कौ कोनों बिधि गुन-बारौ ॥

खचर-खिलौना-खोर-आदि-मिलि मुख सम बदन सम्हारौ ।

लाग गयो याही तें इनकी रथ-खा-दुज-तिय-बारौ ॥

पूषन-सुत-सहाइ-सिव-आनन का लखि नयन बिचारौ ।

सूरदास अनुराग प्रथम तें विषम बिचार बिचारौ ॥३८॥

शब्दार्थ—हो=मैंने । तम-हर-सुत-गुन-आदि-अन्त=कामदेव (तमहर दीपक, उसका सुत काजल; गुन रस्सी, जिसे 'दाम' भी कहते हैं; 'काजल' का आदि-वर्ण और 'दाम' का अन्त-वर्ण मिलाने से 'काम' अर्थात् कामदेव शब्द बना) ।

मतिबन्त = बुद्धिमान् । अनीतन = नेत्रहीन, अंधा । गुन-बारी = गुणवान् । खचर-खिलौना-खीर-आदि-मिलि = चन्द्रमा (खचर आकाश, उसका खिलौना पतंग जिसे 'चंग' भी कहते हैं ; खीर दधि, 'चंग' और 'दधि' के आदि-वर्णों को मिलाकर बना चंद, अर्थात् चंद्रमा), रथ-खा-दुज-तिय-बारी = कलंक (रथ; खा आकाश जिसे 'दिशि' भी कहते हैं; 'रथ' और 'दिशि' को मिलाकर बना दशरथ, उसकी दुज तिय दूसरी स्त्री कैकयी, बारी वाला; कैकयी वाला अर्थात् कैकयी से सम्बद्ध = कलंक) । पूषन-सुत-सहाय-सिब-आनन = मृग (पूषन सूर्य, उसका सुत सुग्रीव, उसका सहायक जाम्बवन्त जिसे ऋक्ष भी कहते हैं और ऋक्ष नक्षत्र को भी कहते हैं; सिब-आनन = पाँचवाँ अर्थात् पाँचवाँ नक्षत्र मृगशिरा अर्थात् मृग) । अनुराग प्रथम = (१) पहले ही अनुराग करके, (२) पूर्वानुराग । विषम विचार = (१) विषम जलमय विचार अर्थात् मृग-तृष्णा, (२) विषम अलंकार ।

प्रसंग—पूर्वानुरागिनी नायिका कृष्ण के प्रति अपने अनुराग का वर्णन अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सजनी! जब से मैंने कृष्ण के सौंदर्य को देखा है, क्या कहूँ; तभी से यह संसार मुझे अधकारमय दिखाई दे रहा है । बुद्धिमान् कवियों ने न जाने क्या सोचकर कृष्ण की समता कामदेव से की है ? (इस समता को देखकर) मुझे तो ऐसा लगता है कि गुणवान् विधाता ने कवियों को अंधा (मूर्ख) बनाया है । (कवियों ने कृष्ण के) मुख को चंद्रमा के समान बताया है । (लगता है कि) इसी कारण इसको कलंक लग गया है । मृगों में (न जाने) क्या देखकर (कवियों ने कृष्ण के) नेत्रों को मृग के समान बताया है । (यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि कृष्ण तो) पहले से ही अनुराग करके मृगतृष्णा में उलझे हुए है । अथवा इस पद में पूर्वानुराग और विषम अलंकार है ।

विशेष—इस पद में पूर्वानुराग और विषम अलंकार है :

१. पूर्वानुराग—दर्शजन्म्य अनुराग से उत्पन्न मिलनातुरता को पूर्वानुराग कहते हैं । इस पद में नायिका का अनुराग दर्शजन्म्य ही है—'जब तैं हौं हरि-रूप निहारी', पर उसमें मिलन की विशेष उत्कठा है, जिसको वह अपनी सखी से प्रकट करती है । अतः यहाँ पूर्वानुराग है ।

२. विषम अलंकार—दो पदार्थों के सम्बन्ध की कल्पना को अनुचित बताने में विषय अलंकार होता है । यहाँ कृष्ण के सौंदर्य की कामदेव से, मुख की चंद्रमा से और नेत्रों की मृग से समता को अनुचित बताया गया है । अतः विषम अलंकार है ।

: १२२ :

सजनी, नंदनंदन आज ।

खिरक ठाड़ी हेर आई हरष बाढ़ी साज ॥

ताल नब की ओर चितवत लेत है मन मोल ।

चमक नाने चलत चहुँदिस कहत अमृत बोल ॥

टकमु लटकन देख सजनी करत सुख विपरीत ।

सूर स्याम सुजान सम बस भई है रस-रीत ॥३६॥

शब्दार्थ—खिरक=खरक, गायों को बाँधने का स्थान । हेर आई=देख आई । ताल=लता ('ताल' शब्द का विपरीत रूप) । नानै=नैना ('नानै' शब्द का विपरीत रूप) । टकमु=मुकट (विपरीत रूप करके) । सम=(१) बराबर, (२) सम अलंकार । रस-रीत=(१) रस की रीति, (२) पूर्वानुराग ।

प्रसंग—कृष्ण के सौंदर्य पर मुग्ध हुई नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सजनी ! आज मैं कृष्ण को खरक में खड़ा हुआ देखकर आई हूँ । (उसके सौंदर्य को देखकर मेरे हृदय में) अत्यधिक हर्ष की वृद्धि हुई है । वे नवीन लताओं की ओर देखकर ही मन को मुग्ध कर लेते हैं । उनके चमकीले नेत्र (चंचलता के कारण) चारों दिशाओं में चलते रहते हैं । वे अमृत-वाणी बोलते हैं । हे सखि ! उनके मुकट की लटकन देखकर (मन में अत्यधिक) सुख होता है । सूरदास कहते हैं कि वह चतुर नायिका इस रीति के कारण बराबर (पूर्णरूप से) कृष्ण के वश हो गई है । अथवा इस पद में सम अलंकार और पूर्वानुराग है ।

विशेष—इस पद में पूर्वानुराग तथा सम अलंकार है :

१. पूर्वानुराग—दर्शनजन्य अनुराग के कारण मिलानानुरता को पूर्वानुराग कहते हैं । इस पद की नायिका का कृष्ण के प्रति जो अनुराग है, वह दर्शनजन्य ही है ।

२. सम अलंकार—परस्पर दो योग्य पदार्थों की समानता के वर्णन में सम अलंकार होता है । इस पद में मनोहारिणी चित्रवन, चमकीले नेत्र, अमृत बोल आदि योग्य पदार्थों का समन्वय हुआ है । अतः सम अलंकार है ।

: १२३ :

बंसीबट के निकट आजु हौं नैक स्याम मुख हेरौ ।

नटनागर-पट पै तब ही तैं लटक रह्यौ मन मेरौ ॥

सिब-रिपु-तिय-घट-मनुज-गिरा-रस-आदि-बरन-जा-केरौ—

सुत-बाहन सिर धरें आपु सुचि निज कर लस निरबेरी ॥

नीर-देव-वो-कोप-सहित-कर प्ररब रीति बसेरी ।

भू-सुत-तृतीय तलफ सकरी भौ बार-हीन तन धेरी ॥

सूरज चितैं नीच जल ऊँचो लियो बिचित्र बसेरी ॥४०॥

शब्दार्थ—नैक=थोड़ा-ही । नटनागर-पट=कृष्ण का वस्त्र, अर्थात् पीताम्बर । लटक रह्यौ=लटक रहा है, मोहित हो गया है । सिब-रिपु-तिय-घट-मनुज-गिरा रस-आदि-बरन-जा-केरौ सुत-बाहन=मोर-मुकुट (सिब शकर, उसका रिपु जालन्धर, उसकी तिय वृंदा अर्थात् तुलसी; घट हीन; मनुज नर, गिरा तथा रस; तुलसी, हीन, गिरा और रस के आदि-वर्णों को मिलाकर बना—तुहीन गिर=हिमालय, हिमालय

की जा पार्वती, पार्वती के सुत (कार्तिकेय) का बाहन मोर, मोर-पंख से बना हुआ मोर-मुकुट) । सम=श्रम, परिश्रम । निरबेरी=निवारण किया, ठीक किया । नीर-देव-वो-कोप-सहित-कर=बाँसुरी (नीर बा, देव सुर, वो और कोप रिस; बा+सु+रि=बाँसुरी) । पूरब रीति=पहले की भाँति । भू-सुत-वृत्ति=प्राण (भू सुत मंगल, मंगल से तीसरा ग्रह बृहस्पति जिसे जीव भी कहते हैं, जीव=प्राण) । सफरी=मछली । बार-हीन=जल-रहित । चितै=(१) देखकर, (२) दर्शनजन्य अनुराग अर्थात् पूर्वानुराग । विचित्र=(१) अद्भुत, (२) विचित्र अलंकार ।

प्रसंग—वंशीवट के निकट कृष्ण को देखकर तथा उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर पूर्वानुरागिनी नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) वंशीवट के पास मैंने आज थोड़ा ही कृष्ण का मुख देखा था, तभी से कृष्ण के पीताम्बर पर मेरा मन मुग्ध हो गया है । उन्होंने परिश्रमपूर्वक अपने ही हाथों से ठीक किया हुआ मोर-मुकुट धारण कर रखा था । उनकी बाँसुरी पहले की भाँति (ही मधुर शब्द निकाल रही थी) । (मेरा) शरीर (कृष्ण के अनुराग से) घिरा हुआ है (और उनके बिना) मेरे प्राण जल-रहित मछली की भाँति तड़प रहे हैं । सूरदास कहते हैं कि उसने नीचे जल को देखकर ऊँचे पर अपना अद्भुत आश्चर्य बना लिया है । भाव यह है—नीचे जल में मछली को सुख मिलता है और ऊँचे (उथले) जल में दुःख । इसी प्रकार वह नायिका भी कृष्ण से अनुराग करके और इसी कारण अपना मुख खोकर दुखी हो रही है । अथवा इस पद में पूर्वानुराग और विचित्र अलंकार का वर्णन है ।

विशेष—इस पद में पूर्वानुराग और विचित्र अलंकार है :

१. पूर्वानुराग—दर्शनजन्य प्रेम को पूर्वानुराग कहते हैं ।

२. विचित्र अलंकार—जहाँ फल की प्राप्ति से विपरीत प्रयत्न का वर्णन हो, वहाँ विचित्र अलंकार होता है । 'सूरज चितै नीच जल ऊँचो लियो बिचित्र बसेरो' में विचित्र अलंकार है ।

: १२४ :

मोहन मो मन बसगो माई ।

को जानें कुल-कान कहाँ है मात तात गृह भाई ॥

ज्यों सारंग सारंग के कारन सारंग सहत न डोलें ।

रम्भा-पति-सुत-सत्रु-पिता ज्यों नय-अहि-अंत न तोलें ॥

तन-पय-नीत-आदि-सुत-सुत-की-जननी प्रीतम मांहीं ।

रहत तजत परबस प्रहार त्यों आस तजत तन नाहीं ॥

नृप-भूषन-कपि-पितु-गज-पहिलो आस खचर की छोड़ें ।

तिथि-नछत्र के हेत सदा ही महा बिपत तन ओढ़ें ॥

त्यों मम प्रानन बान सबन की आन ऐंच सो राखी ।

सूरदास अधिक का कहियें करों सत्रु-सिब साखी ॥४१॥

शब्दार्थ—मो मन बसगो=मेरे मन में बस गया है। कुल-कान कुल की मर्यादा। सारंग=मृग। सारंग=संगीत। सारंग=बाण। रम्भा-पति-सुत-सत्रु-पिता=पतंग, परवाना (रम्भा पति इन्द्र, उसका सुत अर्जुन, उसका शत्रु कर्ण, उसका पिता सूर्य जिसे पतंग भी कहते हैं और पतंग का अर्थ शलभ या परवाना भी होता है)। नय-अहि-अन्त=दीपक (नय नदी, अहि साँप; नदी और साँप शब्दों के अंतिम अक्षरों को मिलाने से बना—दीप अर्थात् दीपक)। तन-पय-नीत-आदि-सुत-मुत-की-जननी=मछली (तन अंग; पय जल+नीत; अंग, जल और नीत के आदि वर्णों को मिलाने से 'अंजनी' शब्द बना; अंजनी का सुत हनुमान, उसका सुत मकरध्वज, उसकी जननी मछली)। प्रीतम=जल (मछली का प्रिय जल)। नृप-भूषण-कपि-पितु-गज-पहिलौ=चातक (नृप-भूषण चँवर, या चामर; कपि हनुमान, हनुमान का पिता रुद्र या त्रिमूर्ति; गज करि; चामर, त्रिमूर्ति और करि के प्रथम वर्णों को जोड़ने से बना चात्रिक अर्थात् चातक)। खचर=बादल (ख आकाश, चर विचरण करने वाले अर्थात् बादल)। तिथि-नछत्र=स्वाति (तिथि पद्वह, नछत्र नक्षत्र, पंद्रहवाँ नक्षत्र अर्थात् स्वाति)। हेत=हेतु, लिए। ओढ़=ओढ़ता है, सहन करता है। बान=आदत, स्वभाव। आन=सीमा। ऐच=खीचना। अधिक=(१) ज्यादा, (२) अधिक अलंकार। सत्रु-सिव=शिव का शत्रु अर्थात् कामदेव। साखी=साक्षी, गवाह।

प्रसंग—नायिका कृष्ण को देखकर उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गई है। अपनी इसी दशा का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! कृष्ण तो मेरे मन में ही बस गया है। (कृष्ण से अनुराग होने पर तो) मैंने कुछ की मर्यादा, माँ, बाप, गृह और बांधव सभी को छोड़ दिया है। जैसे मृग संगीत के कारण (उस पर मुग्ध होकर) बाण को सहन करते हुए भी विचलित नहीं होता, जैसे परवाना दीपक (की लौ का आलिंगन करते समय) अपनी मृत्यु का भी भय नहीं करता, जैसे जल में रहने वाली मछली विवश होकर जल को छोड़ने पर (और उससे मिलन की) आशा छूटने पर जीवित नहीं रहती, जैसे चातक बादलों की आशा छोड़कर भी स्वाति नक्षत्र की बूँद के लिए अपने शरीर पर भारी विपत्तियों को सहन करता है, उसी प्रकार मेरे प्राणों ने भी इन सबका स्वभाव लेकर एक सीमा खींच सी ली है। मैं इससे अधिक और क्या कहूँ (मैं ये सब बातें) कामदेव को साक्षी बनाकर ही कह रही हूँ। अथवा इस पद में (पूर्वानुराग और) अधिक अलंकार है।

विशेष—इस पद में पूर्वानुराग और अधिक अलंकार है :

१. पूर्वानुराग—दर्शनजन्य अनुराग को पूर्वानुराग कहते हैं।

२. अधिक अलंकार—जहाँ आधार से आधेय अधिक हो, वहाँ अधिक अलंकार होता है। कृष्ण आधेय है और नायिका आधार, जो कृष्ण की अपेक्षा छोटी है। अतः आधेय के अधिक होने से यहाँ अधिक अलंकार है।

: १२५ :

कुंज-मग में आज मोहन मिलो मोकों बीर ।

चली आवत ही अकेली भरै जमुना नीर ॥

गहै सारंग-करन सारंग-सुर सम्हारत बीर ।

नैन-सारंग सैन मो तन करी जान अधीर ॥

आठ-रवि तै देख तब तैं परत नाहि गम्भीर ।

अल्प सूर सुजान कासों कहों मन की पीर ॥४२॥

शब्दार्थ—कुंज-मग=कुंजों का पथ । बीर=सखी । सारंग-करन=कर-कमल । सारंग सुर=सारंग नामक राग का सुर । नैन-सारंग=नेत्ररूपी बाण । सैन=कटाक्ष । मो तन=मेरी ओर । आठ रवि=राह (रवि से आठवाँ ग्रह राहु, अर्थात् राह) । गम्भीर=शान्ति । अल्प=(१) क्षुद्र, (२) अल्प अलंकार । पीर=पीड़ा, वेदना ।

प्रसंग—अनुरागवती नायिका अपनी सखी से अपनी मनोदशा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! आज कुंज-पथ में आता हुआ मुझे कृष्ण मिल गया । मैं यमुना से पानी भरकर अकेली ही चली आ रही थी । हे सखि ! वह कर-कमलों में बाँसुरी लिये हुए सारंग-राग का सुर बजा रहा था । मुझे अधीर जानकर उसने मेरी ओर नेत्ररूपी बाणों से कटाक्ष किया । मैंने जब से उन्हें राह में देखा है, तबसे मुझे शान्ति नहीं मिल रही है । हे चतुर ! मैं तो क्षुद्र हूँ, अतः किससे अपने मन की वेदना कहूँ । अथवा इस पद में (पूर्वानुराग और) अल्प अलंकार है ।

विशेष—इस पद में पूर्वानुराग और अल्प अलंकार है :

१. पूर्वानुराग—दर्शनजन्य अनुराग को पूर्वानुराग कहते हैं ।

२. अल्प अलंकार—छोटे आधेय की अपेक्षा वस्तुतः बड़े आधार का भी छोटा वर्णन होने में अल्प अलंकार होता है । इस पद में 'मन की पीर' आधेय और नायिका आधार है, अतः आधेय छोटा (क्योंकि पीर नायिका में है) और आधार बड़ा है । नायिका इस पीर को व्यक्त करने में असमर्थ है; अर्थात् छोटा आधेय बड़ा और बड़ा आधेय छोटा हो गया है । अतः अल्प अलंकार है ।

: १२६ :

आजु अली लखि अचरज एक ।

सुत-सुत लखति ति पीपी गोपी सुत सुत बांधें टेक ॥

पग-रिपु अंग अंग दोहुन के भरत छार कन नीक ।

राग-मूल भों सिब-प्रिय देखत पेखत नाहि नजीक ॥

बोळ लगत दोहुन तैं सुन्दर भले अन्योन्या आज ।

सात्युक सूर देखि दोहुन को कर न सकत हैं लाज ॥४३॥

शब्दार्थ—अली=सखी । अचरज=आश्चर्य । सुत-सुत=कृष्ण । ति पीपी= (तीन तीन पी=छः पी अर्थात् छपी=गोपी अर्थात् राधा) । पग-रिपु=रोमांच (पग रिपु कंटक अर्थात् रोमांच) । धार कन=धारा के कण अर्थात् अश्रुबिन्दु । नीक=नेत्र । राग-मूल=राग का मूल अर्थात् स्वर । सिव-प्रिय=शिव की प्रिय भंग, अर्थात् खंडित । पेखत=देखते हैं । नजीक=नजदीक, निकट । अन्योन्या=(१) परस्पर, (२) अन्योन्य अलंकार । सात्युक=(१) शुद्ध प्रेम, (२) सात्त्विक भाव ।

प्रसंग—राधा और कृष्ण एक-दूसरे को देखकर मुग्ध हो गये । उनकी उसी मुग्धावस्था का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! आज मैंने एक आश्चर्य (की बात) देखी । कृष्ण राधा को और राधा कृष्ण को टकटकी लगाकर देख रही थी । दोनों के शरीरावयव रोमान्चित हो रहे थे (और दोनों के) नेत्रों से अश्रु-बिन्दु भर रहे थे । (एक दूसरे को देखकर) उनके स्वर खंडित (भंग) हो गये थे और वे निकट (के व्यक्तियों को भी) नहीं देख पा रहे थे । आज वे परस्पर दोनों एक-दूसरे से सुन्दर लग रहे थे । सूरदास कहते हैं कि उन दोनों के शुद्ध प्रेम को देखकर कोई उन्हें लज्जित नहीं कर सकता था । अथवा इस पद में अन्योन्य अलंकार और सात्त्विक भाव का वर्णन है ।

विशेष—इस पद में सात्त्विक भाव और अन्योन्य अलंकार है :

१. **सात्त्विक भाव**—सतो गुण से उत्पन्न सात्त्विक अंग विकारों को सात्त्विक भाव कहते हैं । इस पद में वर्णित रोमांच, अश्रुपात, स्वर-भंग आदि सात्त्विक भाव हैं ।

२. **अन्योन्य अलंकार**—एक ही क्रिया द्वारा दो वस्तुओं की परस्पर कारणता होने के वर्णन को अन्योन्य अलंकार कहते हैं । इस पद में राधा और कृष्ण का प्रेम एक ही क्रियाओं से वर्णित है । अतः अन्योन्य अलंकार है ।

: १२७ :

सजनी जो तन बूथा गँवायो ।

नंदनंदन अजरारज कुँवर सौं नाहक नेह लगायो ॥

दधि-सुत-धर-रिपु सहै सिलीमुख मुख सब अंग नसाए ।

सिब-सुत-बाहन-रिपु-भख-सुत तें सब तन ताप तचाए ॥

घर आंगन दिसि बिदिसि सूरजा-तट वह मूरत देखी ।

सूरज प्रभु तें कियो चाहियत है निरबेद बिसेषी ॥४४॥

शब्दार्थ—नाहक=व्यर्थ ही । नेह=स्नेह, प्रेम । दधि-सुत-धर-रिपु=कामदेव (दधि-सुत चन्द्रमा, उसको धारण करने वाला शिव, उसका रिपु कामदेव) । सिलीमुख=बाण । नसाए=नष्ट किये । सिब-सुत-बाहन-रिपु-भख-सुत=चन्द्रमा (सिब-सुत गणेश, उसका बाहन चूहा, उसका रिपु बिल्ली, उसका भक्ष्य दूध या दधि, दधि उदधि, उदधि-सुत चंद्रमा) । सूरजा-तट=यमुना का किनारा । निरबेद=(१)

विरक्ति, (२) निर्वेद संचारी भाव । बिसेषी—(१) अधिक, (२) विशेष अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण मे अनुरक्त नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! नंदनंदन ब्रजराज कृष्ण से मैंने व्यर्थ में ही प्रेम करके इस शरीर को निष्फल खो दिया है । (इस प्रेम के कारण) मैंने कामदेव के बाण सहकर अपने शरीर के सब सुख नष्ट किये, चंद्रमा से अपने शरीर को जलाया भी । घर, आंगन, सभी दिशाओं मे वह मूर्ति खोजी (पर वह कहीं भी नहीं मिली) । सूरदास कहते है (इसी कारण यह नायिका) कृष्ण से अधिक विरक्ति करना चाहती है अथवा इस पद मे निर्वेद संचारी भाव और विशेष अलंकार है ।

विशेष—इस पद में निर्वेद संचारी भाव और विशेष अलंकार है ।

१. निर्वेद—इष्ट की प्राप्ति न होने से जो क्षणिक विरक्ति होती है, उसे निर्वेद संचारी भाव कहते है । इस पद मे नायिका की विरक्ति का वर्णन होने से निर्वेद संचारी भाव है ।

२. विशेष अलंकार—जहाँ एक ही वस्तु अथवा व्यक्ति का अनेक स्थलों पर वर्णन किया जाये, वहाँ विशेष अलंकार होता है । इस पद में प्रयुक्त 'घर आंगन दिसि बिदिसि सूरजा-तट वह मूरत देखी' मे कृष्ण के अनेक स्थानों पर होने का उल्लेख किया गया है । अतः विशेष अलंकार है ।

: १२८ :

धिग धिग मोहि तोहि सुन सजनी धिग जेहि हेत बुलाई ।

धिग सारंग सारंग मैं सजनी सारंग अंग समाई ॥

सारंग-माल लगत सारंग-सी सारंगिन जो फूलो ।

सारंगिन दें दोस सूर बयघातिन समझ न भूलो ॥४५॥

शब्दार्थ—धिग=धक्कार । हेत=हेतु, कारण । सारंग=चन्द्रमा । सारंग=रात्रि । मैं=मय, सहित । सारंग=कामदेव । सारंग-माल=कमल-माला । सारंग-सी सर्प-सी । सारंगिन=कुमुदिनी । सारंगिन=सखी को । बयघातिन=(१) बाधा, (२) व्याघात अलंकार ।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सजनी ! सुनो, मुझे धक्कार है, तुझे धक्कार है, जिस कारण तुझे बुलाया है, उस कारण को धक्कार है । रात्रि-सहित चंद्रमा को धक्कार है । मेरे अंगों में कामदेव समाया हुआ है (इसी कारण मुझे) कमल-माला सर्प-सी (दुखदाई) लगती है । जिस (चंद्रमा को देखकर) कुमुदिनी फूली हुई है (उसी चंद्रमा को देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ) । सूरदास कहते है कि सखी को दोष तो दो, पर यह न भूलो (कि नायक के तुम्हारे पास आने में कोई) बाधा आ गई है अथवा इस पद में (ग्लानि संचारी भाव और) व्याघात अलंकार है ।

विशेष—इस पद में ग्लानि संचारी भाव और व्याघात अलंकार है ।

१. ग्लानि—अभीष्ट वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति न होने पर जो मानसिक या शारीरिक शिथिलता होती है, उसे ग्लानि कहते हैं। इस पद में प्रयुक्त 'धिग' शब्दों की आवृत्ति नायिका के ग्लानि-भाव की सूचक है।

२. व्याघात अलंकार—जिस उपाय से किसी व्यक्ति द्वारा कुछ कार्य सिद्ध किया जाये, उसी उपाय से दूसरे किसी व्यक्ति द्वारा वह कार्य अन्यथा (विपरीत) किये जाने को व्याघात अलंकार कहते हैं। सखी, चंद्रमा, रात्रि आदि मिलन के साधक कारण है, पर यहाँ उन्हें बाधक मानकर धिक्कारा गया है। अतः व्याघात अलंकार है।

: १२६ :

रवि-दो-धर-रिपु प्रथम बिकासी ।

ताने निज पतिनी मेरे मन करि सारंग प्रकासी ॥

पतिनी लै सारंगधर सजनी सारंगधर मन खँचौ ।

ग्रह-नछत्र-अरु-बेद-सबन-मिलि तन प्रन करिकँ बेचौ ॥

सो तन हानि होन चाहत है बिना प्रानपति पाये ।

करि संका कारन की माला तेहि पहिराउ सुभाये ॥४६॥

शब्दार्थ—रवि-दो-धर-रिपु=कामदेव (रवि से दूसरा नक्षत्र चन्द्र, उसको धारण करने वाला शिव, उसका शत्रु कामदेव)। ताने=उसने, कामदेव ने। निज पतिनी=प्रेम (कामदेव की पत्नी रति, रति का अर्थ प्रेम होता है)। सारंग=सरस रस अर्थात् शृङ्गार-रस। पतिनी लै सारंगधर=बाँसुरी लेकर (सारंगधर कृष्ण, उसकी पत्नी बाँसुरी, उसे लेकर)। सारंगधर=कामी (सारंग कामदेव, उसको धारण करने वाला अर्थात् कामी)। ग्रह-नछत्र-अरु-बेद-सबन-मिलि=मन (ग्रह नौ + नक्षत्र सत्ताईस + वेद चार = चालीस सेर अर्थात् मन)। संका=(१) शका, (२) शका संचारी भाव। कारन की माला=(१) विविध कारणों की माला, (२) कारणमाला अलंकार।

प्रसंग—कृष्ण से न मिलने पर दुःखी होकर नायिका अपनी सखी से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि !) प्रथम तो (मेरे मन में) कामदेव का अर्थात् काम-भावना को जन्म देने वाला यौवन विकसित हुआ। फिर उसने (मेरे मन में) प्रेम को उत्पन्न करके शृङ्गार-रस का प्रकाश किया। (शृङ्गार-रस के धारण करने वाले) कृष्ण ने फिर अपनी बाँसुरी लेकर मेरा मन (अपनी ओर) खींचा। फिर मन ने प्रण करके मेरे शरीर को ही बेच दिया। प्राणपति (कृष्ण) को प्राप्त न करने से वही शरीर (अब) नष्ट होना चाहता है। इसलिए शंका (को जन्म देने वाले) विविध कारणों की माला बनाकर उसे सहज भाव से मुझे पहिनाओ। अथवा इस पद में शका संचारी भाव और कारणमाला अलंकार है।

विशेष—इस पद में शंका संचारी भाव और कारणमाला अलंकार है।

१. शंका—अन्य व्यक्ति की क्रूरता से अपने अनिष्ट का आशंका में शंका संचारी भाव होता है। यहाँ कृष्ण की क्रूरता से (न मिलने से) नायिका के मर जाने की आशंका व्यक्त की गई है, अतः शंका संचारी भाव है।

२. कारणमाला अलंकार—पूर्व कहे हुए पदार्थ जहाँ उत्तरोत्तर कहे हुए पदार्थों के कारण कहे जाते हैं, वहाँ कारणमाला अलंकार होता है। यहाँ पहले कामदेव का विकाम हुआ, फिर उससे प्रेम उत्पन्न हुआ, फिर शृङ्गार की भावना जगी, फिर मन कृष्ण की ओर आकृष्ट हुआ, फिर तन बिका। ये सभी कार्य उत्तरोत्तर कार्यों के कारण बनते गये हैं, अतः कारणमाला अलंकार है।

: १३० :

बयोचन-सुत-कौ-सुभाव सुन जब ही जान पठाई।

तब ही तव संग चंद-भाग गौ सब सुख देख नवाई ॥

चंद-भाग संग गयो सुआखर-रिपु सब सुख बिसराई।

एक अबल करि रही असूया सूर सुतन कह चाई ॥४७॥

शब्दार्थ—बयोचन-सुत-कौ-सुभाव = सखी (बयोचन विरोचन, उसका सुत बलि, उसका स्वभाव दानी, फारसी में दानी का अर्थ सखी है)। तव संग = तेरे साथ। नवाई = नत हुए, नष्ट होने वाले। चंद-भाग = भाग्य-रूपी चंद्रमा। सुआखर-रिपु = सौभाग्य (सुआखर सुअक्षर सुवर्ण अर्थात् सोना, उसका रिपु सुहागा अर्थात् सुहाग सौभाग्य)। एक अबल = (१) एक निर्बल, (२) एकावली अलंकार। असूया = (१) ईर्ष्या, (२) असूया संचारी भाव। सुतन = सुन्दर शरीर। चाई = चाहना करना।

प्रसंग—नायक के साथ रमण करके लौटी सखी के शरीर पर रति-चिह्नों से उसका रमण जानकर नायिका उसकी भर्त्सना कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! जब मैंने तुझे सखी (स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख देने वाली) जानकर नायक के पास भेजा था, तभी मेरे सुखों को नत देखकर (नष्टप्राय देखकर) मेरा भाग्य-चन्द्र भी तेरे ही साथ चला गया था। भाग्य-चन्द्र के साथ ही सब सुखों को छोड़कर मेरा सौभाग्य भी गया। सूरदास कहते हैं कि (जब) एक निर्बल स्त्री ईर्ष्या कर रही है (तब वह) अपने सुन्दर शरीर की क्या चाहना करेगी ; अर्थात् वह जीवित न रहेगी। अथवा इस पद में असूया संचारी भाव और एकावली अलंकार है।

विशेष—इस पद में असूया संचारी भाव और एकावली अलंकार है :

१. असूया—दूसरे का सौभाग्य, ऐश्वर्य, विद्या आदि का उत्कर्ष देखने या सुनने से उत्पन्न चित्तवृत्ति या जलन को असूया कहते हैं। सखी का सौभाग्य देखकर नायिका को ईर्ष्या हुई है, अतः असूया संचारी भाव है।

२. एकावली अलंकार—पूर्व-पूर्व में कही हुई वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर कथित

वस्तु के विशेषण-भाव से बहुत बार स्थापन अथवा निषेध किये जाने को एकावली अलंकार कहते हैं। इस पद में पहले सखी, फिर नायिका के मोभाग्य और फिर सौभाग्य के जाने का कथन है जो पूर्व-कथित वस्तुओं के कारण-स्वरूप तथा उत्तरोत्तर-कथित वस्तुओं के कार्य-स्वरूप है। अतः एकावली अलंकार है।

: १३१ :

राधे आज मदन मदमाती ।

सोहत सुन्दर संग स्याम के खरचत कोट काम-कल थाती ।

अंतरिच्छ-श्रीबंधु लेत हरि त्योंहीं आप आपनी घाती ॥

ग्रीषम-पवन लेत हरि हरि कर ग्रीषम-पवन लेत निज छाती ॥

यह कोतिक बिलोकि सुन सजनी माला दीपक की चित चाती ।

सूरदास बलि जात दुहुन की लखि लखि हृदय-कथा चित-पाती ॥४८॥

शब्दार्थ—मदन = कामदेव । मदमाती = मस्त हो रही है । काम-कल = काम-कला । थाती = पूँजी, धरोहर । अंतरिच्छ-श्रीबंधु = अधरामृत (अंतरिच्छ, अंतरिक्ष अधर, श्रीबधु लक्ष्मी का बधु अर्थात् अमृत, अधर + अमृत = अधरामृत) । ग्रीषम-पवन = लिपटना, आलिंगन (ग्रीषम-पवन गर्मी की वायु अर्थात् लपट, लपट = लिपटना, आलिंगन) । कोतुक = कौतिक । मालादीपक = (१) दीपों का समूह, (२) मालादीपक अलंकार । पाती = पत्री ।

प्रसंग—राधा और कृष्ण सुरति में संलग्न हैं । उनकी सुरति का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज राधा कामदेव से मरत हो रही है । वह सुंदर कृष्ण के साथ शोभायमान है और काम-कला की अपार पूँजी को खर्च कर रही है । जैसे ही कृष्ण उसके अधरामृत का पान करते हैं, वैसे ही घात लगाकर राधा भी उनके अधरो का चुम्बन लेती है । जब कृष्ण उसका आलिंगन करते हैं तो वह भी उन्हें (जोर से) अपनी छाती से लिपटा लेती है । हे सजनी ! सुन, यह कौतुक देखकर (मेरे) चित्त में दीपों के समूह की चाह होती है; अर्थात् आनंदपूर्वक दीपावली मनाने को मन चाह रहा है । सूरदास कहते हैं कि सखियाँ (राधा और कृष्ण) दोनों की हृदय-कथा अपनी चित्त-पत्री पर देख-देखकर (उन पर) न्यूँछावर हो रही है । अथवा इस पद में मद संचारी भाव और मालादीपक अलंकार है ।

विशेष—इस पद में मद संचारी भाव और मालादीपक अलंकार है :

१. मद—उन्मत्तता और आनंद के मिश्रण में मद संचारी भाव होता है । इस पद में मदोन्मत्त राधा की विविध चेष्टाओं का वर्णन होने से मद संचारी भाव है ।

२. मालादीपक अलंकार—जहाँ पूर्व-कथित वस्तु उत्तर-कथित वस्तु की उपकारिणी होती है, वहाँ मालादीपक अलंकार होता है । यहाँ कृष्ण का अधर-चुम्बन

और आलिंगन उत्तर-कथित राधा के चुम्बन और आलिंगन का उपकारी है, अतः मालादीपक अलंकार है ।

: १३२ :

देखि आज बृषभान-दुलारी ।

दिनपति-सुत-भ्राता-पितु-पितु-जा-पति-सुत-सुत-प्रिय-पितु-हितकारी —

सत्रु-प्रिया करि महा थकित हो रही सम्भार न अँग बिचारी ।

नीकन अधिक अधिक दीपत दुत तातें अंतरिच्छ छबि भारी ॥

मेघन मद्ध नखा-जातिक प्रिय डारत तीन लोक छबि वारी ।

भूषन सार सूर स्रम सीकर सोभा उमड़त अमल उज्यारी ॥४६॥

शब्दार्थ—बृषभान-दुलारी = राधा । दिनपति-सुत-भ्राता-पिता-पितुजा-पति-सुत-सुत-प्रिय-पितु-हितकारी-सत्रु-प्रिय = रति (दिनपति-सुत कर्ण, उसका भ्राता युधिष्ठिर, उसका पिता धर्मराज = यमराज, उसका पिता सूर्य उसकी जा यमुना, उसका पति कृष्ण, उसका सुत प्रद्युम्न, उसका सुत अनिरुद्ध, उसकी प्रिय ऊषा, उसका पिता वाणासुर, उसका हितकारी शिव, उसका शत्रु कामदेव, उसकी प्रिया रति) । रही सम्भार न = सँभाल नहीं पा रही है । नीकन = नेत्र । दीपत दुति = द्युति दीप्त हो रही है । अन्तरिच्छ = अन्तरिक्ष, अधर । मेघ = पयोधर, कुच । सखा-जातिक = नखों से उत्पन्न अर्थात् नख-क्षत । प्रिय - सुन्दर । भूषन सार = (१) शोभा का सार, (२) सार अलंकार । स्रम = (१) परिश्रम, (२) श्रम संचारी भाव । सीकर = बूँदें । अमल = निर्मल । उज्यारी = उजली, उज्ज्वल ।

प्रसंग—नायिका (राधा) की रति-क्रीड़ा के पश्चात् की शोभा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ — (हे सखि !) आज राधा (की शोभा) को देखो । वह रति के कारण इतनी थकी हुई है कि बेचारी अपने अँगों को भी नहीं सँभाल पा रही है । उसके नेत्रों की द्युति अधिकाधिक दीप्त हो रही है और उससे भी अधिक उसके अधर की शोभा है । उसके कुचों पर सुन्दर नख-क्षत हैं जिनकी शोभा पर तीनों लोकों की शोभा न्योछावर है । सूरदास कहते हैं कि (रति-केलि से उत्पन्न) पसीने की बूँदें सभी शोभा का सार है, जिसकी निर्मल और उज्ज्वल शोभा (राधा के शरीर में) उमड़ रही है । अथवा इस पद में सार अलंकार और श्रम संचारी भाव है ।

विशेष—इस पद में श्रम संचारी भाव और सार अलंकार है ।

१. श्रम—अत्यन्त रति-केलि अथवा किसी अन्य कारण से जो शारीरिक थकान होती है, उसे श्रम संचारी भाव कहते हैं । इस पद में 'रही सम्भार न अँग बिचारी' और 'स्रमसीकर' से श्रम संचारी भावों का उल्लेख है ।

२. सार अलंकार—जहाँ पूर्व-कथित पदार्थ की अपेक्षा उत्तर-कथित पदार्थ के अपेक्षा अधिक उत्कर्ष का वर्णन किया जाये, वहाँ सार अलंकार होता है । यहाँ नेत्रों की अधर-छवि के आधिक्य का वर्णन होने से सार अलंकार है ।

: १३३ :

राधा बार-बार जमुहात ।

जलचर जलसुत कीर बिम्बफल है रसाल के सात ॥

द्विग मुख देख नासिका अधरन ठोड़ी ठीक लखात ।

सारंग-सुत छवि बिन नयुनी रस बिंदु बिना अधिकात ॥

सूरज आलस यथासंख कर बूझ सखी कुसलात ॥५०॥

शब्दार्थ—जमुहात=जम्माई लेती है । जलचर=मछली । जलसुत=चन्द्रमा । कीर=तोता । रसाल=ग्राम । सात=साथ, सहित । सारंग-सुत=काजल (सारंग दीपक, उमका सुत काजल) । आलस=(१) आलस्य, (२) आलस्य संचारी भाव । यथासंख=(१) क्रम से, (२) यथासंख्य अलंकार ।

प्रसंग—राधा की सुरतांत दशा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि ! देखो, रति-जन्य श्रम के कारण) राधा बार-बार जम्माई लेती है । (उसके नेत्र) मीन, (मुख) चन्द्रमा, (नासिका) तोता, (अधर) बिम्बफल ठोड़ी ग्राम के साथ सुशोभित है । उसके नेत्रों की शोभा बिना काजल के, मुख की शोभा बिना छवि के, नासिका की शोभा बिना नयुनी के, अधरो की शोभा बिना सरमता के और ठोड़ी की शोभा बिना बिन्दु (गोदना) के ही अधिक सुगोभित हो रही है । सूरदास कहते हैं कि (नायिका के) आलस्य को क्रम से जानकर भी (उसकी) सखी उससे कुशलता पूछती है । अथवा इस पद में आलस्य संचारी भाव और यथासंख्य अलंकार है ।

विशेष—इस पद में आलस्य संचारी भाव और यथासंख्य अलंकार है :

१. आलस्य—श्रम, गर्भ, व्याधि आदि के कारण कार्य से विमुख होने के कारण आलस्य कहने हैं । यहां राधा का जम्माई लेना उसके आलस्य को व्यक्त करता है ।

२. यथासंख्य अलंकार—जहाँ अनेक वस्तुओं का वर्णन उनके रूप, गुण, धर्म, क्रिया आदि के क्रम से हो, वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है । इस पद में—

‘द्विग, मुख, देख नासिका, अधरन, ठोड़ी, ठीक लखात ।

सारंग-सुत, छवि बिन, (बिन)नयुनी, रस (बिना) बिंदु बिना अधिकात ।’ में द्वग आदि का काजल आदि के साथ क्रम से वर्णन होने में यथासंख्य अलंकार है ।

: १३४ :

नंदनदन बिन ब्रज में ऊधौ सब बिपरीत भई ।

खगपति-व्यास बचन सम कोकिल बोलत जहरमई ॥

भू-सुत-सत्रु-गेह में काहू बिपत बवार बई ।

पंथ-सत्रु-पति-सुत सुधार सर करि तन सूल-सई ॥

सिब-सुत-बाहन-सन्नु-भोग-सुत-रिपु-भख बान लई ।

बा-जा-पति-बाहन-की-सैना बोलत जहरमई ॥

अब की बेर मिलावहु ब्रजपति जीवन-मूर जई ।

सूर बहुर परजाइ दीन हर कुब्जा कूर हई ॥५१॥

शब्दार्थ—नंदनंदन=कृष्ण । सब बिपरीत भई=सारी बातें उलटी हो गई है । खगपति-व्यास=काक, कौआ (खगपति गरुड़, व्यास कथा सुनाने वाला, गरुड़ को कथा सुनाने वाला काकभुगुंडी अर्थात् काक या कौआ) । जहरमई=विषैली । भू-गुत-सन्नु-गेह=वृक्ष (भू-सुत केवाँच, उसका शत्रु बानर, उसका गेह वृक्ष) । दवार=दावाग्नि । पंथ-सन्नु-पति-गुन=कामदेव (पंथ-सन्नु यमुना, उसका पति कृष्ण, उसका पुत्र प्रद्युम्न अर्थात् कामदेव) । सूल-सई=शूल-सहित, पीड़ित । सिब-सुत-बाहन-सन्नु-भोग-सुत-रिपु-भख=सूर्य (सिब-सुत गणेश, उसका बाहन मूषक, उसका शत्रु विल्ली, उसका भोग दधि, दधि-मुन चंद्रमा, उसका रिपु राहु, उसका भक्ष्य सूर्य) । बान=स्वभाव । बा-जा-पति-बाहन की सैना=पक्षी-समूह (बा जल या सागर, उसकी जा यमुना, उसका पति कृष्ण अर्थात् विष्णु, उसका बाहन गरुड़, उसकी सेना पक्षी-समूह) । जीवन-मूर=जीवन-दाता । बहुर=फिर । परजाइ=(१) प्रजा, (२) पर्याय अलंकार दीन=(१) दुखी, (२) दीनता संचारी भाव । कूर=कूर । हई=हनन की हुई, पीड़ित की हुई ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह-दशा का वर्णन करती हुई उनसे कृष्ण को मिलाने की विनय कर रही है ।

अर्थ—हे उद्धव ! कृष्ण के बिना ब्रज में सारी बातें उलटी हो गई है । कोयल कौआ के समान विषैली बाणी बोलती है । पत्र-विहीन वृक्ष (ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी ने उनमें) दावाग्नि लगा दी हो । कामदेव अपने बाणों की अच्छी धार बनाकर (उनकी मार से) हमारे शरीर को पीड़ित कर रहा है । चंद्रमा ने सूर्य का स्वभाव ले लिया है; अर्थात् वह सूर्य के समान हमें जलाता है । पक्षी-समूह विषैले स्वरो में बोलता है । (हे उद्धव ! हम तुमसे विनय करती है कि) अबकी बार हमें जीवनदाता कृष्ण से मिला दो और फिर कूर कुब्जा के द्वारा पीड़ित की हुई दुखी जनता के दुख का हरण करो । अथवा इस पद में पर्याय अलंकार और दीनता संचारी भाव है ।

विशेष—इस पद में दीनता संचारी भाव और पर्याय अलंकार है :

१. दीनता—दुःख, दरिद्रता, मनस्ताप आदि से उत्पन्न दुर्दशा के दैन्य वर्णन में दीनता संचारी भाव होना है । यहाँ कृष्ण के वियोग में दुःखी गोपियों ने अपनी दीन दशा का वर्णन किया है, अतः दीनता संचारी भाव है ।

२. पर्याय अलंकार—जहाँ एक वस्तु की क्रमशः अनेकों में स्वतः स्थिति हो या दूसरों के द्वारा की जाये, वहाँ पर्याय अलंकार होता है । इस पद में कोयल का कौआ की भाँति बोलना, वृक्षों में दावानल, कामदेव का बाण-प्रहार आदि ॥५१॥

क्रमशः एक ही आधार में—गोपियों में—वर्णित है। अतः पर्याय अलंकार है।

: १३५ :

ब्रज में करो कौन उपाइ ।

भई जो बिपरीत ताकों समुझ सूल सुभाइ ॥

चार-पद-पति-के-सुभूषण तें निकासी संक ।

ति पीपी उर डार दीनीं प्रान-बारी-रंक ॥

रटन सारंग तें निकासी नाग-समर मिलाइ ।

डार दीनीं सुमुख तिनकें कहा धौं चित चाइ ॥

यहै चिन्ता दहै छाती काम घाती बीर ।

करत है पर-संख काहे समुझ ताकत तीर ॥५२॥

शब्दार्थ—बिपरीत = प्रतिकूलता, अस्त-व्यस्तता। सूल = शूल, कटदायक। सुभाइ = स्वभाव से ही। चार-पद-पति-के-सुभूषण = शशांक (चार-पद पशु, उसका पति पशुपति अर्थात् महादेव, उसका सुभूषण चंद्रमा जिसे 'शशांक' भी कहते हैं)। संक = शंका। ति पीपी = गोपी (तीन तीन पी = छः पी = छपी अर्थात् गोपी)। प्रान-बारी-रंक = रंचक प्राण वाली, मृतप्राय। सारंग = पपीहा। नाग-समर = गोपियाँ (नाग अहि, समर रण; अहि + रण अहिरण अहीरनियाँ अर्थात् गोपियाँ)। चिन्ता = (१) चिन्ता, (२) चिन्ता संचारी भाव। काम = कामदेव। घाती = घात करने वाला, आक्रमण करने वाला। बीर = सखी। पर-संख = (१) पर-शंका, शत्रु की शंका, (२) परिसंख्या अलंकार।

प्रसंग—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज की गोपियाँ बहुत दुःखी हुईं। इस पद में सखी सखी से गोपियों की विरह-दशा का वर्णन कर रही है।

अर्थ—(हे सखि !) ब्रज में (बसने के लिए और जीवित रहने के लिए) क्या उपाय किये जायें, (क्योंकि कृष्ण के चले जाने पर यहाँ) जो अस्त-व्यस्तता आई है उसे स्वभाव से ही कष्टदायक समझो। (यहाँ) शशांक मे से 'शंका' को निकालकर उसे मृतप्राय गोपियों के हृदय में डाल दिया गया है; अर्थात् अब शंका कही नहीं रही, चंद्रमा मे भी नहीं रही, केवल गोपियों के हृदयों मे रही है। न जाने जिसने पपीहा के मुख से 'पी-पी' की रटन निकाल कर और चाहना करके गोपियों के मुख में डाल दी है; अर्थात् अब यहाँ कोई भी पी-पी नहीं करता, केवल विरह-व्यथिता गोपियाँ ही अर्हनिश पी-पी पुकारती रहती है। हे सखि ! (यहाँ) कामदेव आक्रमण-कारी बना हुआ है, यही चिन्ता हमारी छाती को जलाती रहती है। पर तू इस शत्रु की शंका ही क्यों करती है, क्योंकि वह तो केवल अपने बाणों की ओर निहार रहा है। अथवा इस पद में चिन्ता संचारी भाव और परिसंख्या अलंकार है।

विशेष—इस पद में चिन्ता संचारी भाव और परिसंख्या अलंकार है :

१. चिन्ता—जहाँ इष्ट के वियोग में उसकी चिन्ता बनी रहती है, वहाँ चिन्ता

संचारी भाव होता है। यहाँ 'ब्रज मैं करौ कौन उपाइ' से गोपियों की चिंता स्पष्ट ही है।

३. परिसंख्या अलंकार—जहाँ एक वस्तु का एक स्थान से निषेध करके दूसरे स्थान पर आरोपण किया जाये, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है। इस पद में शंका, का चंद्र और पीपी का पपीहा से निषेध करके गोपियों में आरोपण है। अतः परिसंख्या अलंकार है।

: १३६ :

भू-सुत आइगो एहि बेर ।

लेन सुत सुत हाय सजनी समुझ आप सबेर ॥

पंडु-सुन-पित-तात होकें लेहिगौ री प्रान ।

कैं सँजीवन मूरि लैंकें हरेंगौ तन-सान ॥

मोहि यह संदेह सजनी परो बिकलप आन ।

सूर समुझ उपाय करि कछु देहु जीवन-दान ॥५३॥

शब्दार्थ—भू-सुन = अक्रूर (भू पृथ्वी, उसका सुत अंकुर अर्थात् अक्रूर)। सुन-सुत = कृष्ण। सबेर = शीघ्र, यथासमय। पंडु-सुत-पित-तात = यम (पंडु-सुत कर्ण, उसका पिता सूर्य, उसका तात अर्थात् पुत्र यम)। सँजीवन-मूरि = जीवनदाता अर्थात् कृष्ण। तन-सान = शरीर की कांति। मोहि = (१) मुझको, (२) मोह संचारी भाव। बिकलप = (१) असमजस, द्विविधा; (२) विकल्प अलंकार।

प्रसंग—कृष्ण को लेने के लिए आये हुए अक्रूर को देखकर सारे ब्रज में चिंता व्याप्त हो गई। अपनी चिंता का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हाय सजनी ! तू स्वयं यथासमय इस बात को समझ ले कि इस बार (कृष्ण को लेने के लिए) अक्रूर आ गया है। यह यम बनकर हमारे प्राण लेगा, या कृष्ण को लेजाकर हमारे शरीर की कांति का हरण करेगा। हे सखि ! मुझको यह संदेह है और मैं इस द्विविधा में पड़ी हुई हूँ। तू इसे समझकर कुछ उपाय कर और मुझे जीवन-दान दे। अथवा इस पद में मोह संचारी भाव और विकल्प अलंकार है।

विशेष—इस पद में मोह संचारी भाव और विकल्प अलंकार है :

१. मोह—भय, दुःख, घबराहट, चिंता आदि के कारण उत्पन्न हुई चित्त की व्यग्रता को मोह कहते हैं। इस पद में गोपी ने अक्रूर द्वारा कृष्ण को ले जाने पर चिंता प्रकट की है, अतः मोह संचारी भाव है।

२. विकल्प अलंकार—जहाँ अनिश्चय की स्थिति होती है, वहाँ विकल्प अलंकार होता है। अक्रूर यम बनकर प्राणों का हरण करेगा या कृष्ण को ले जायेगा आदि से अनिश्चय की स्थिति होने से विकल्प अलंकार है।

: १३७ :

द्विगजा-पति-पतिनी-पति सुत के देखतह मुरझानी ।

उठि उठि परत धरनि पर सुन्दर मंदिर भई अयानी ॥

सारंग बचन सुनत जीवन की कछु आस उर आनी ।

भूतनया-रिपु-पितु-सैना-की-संगिन मति गति ठानी ॥

कासों कहीं समूचे भूषन सुमिरन करत बखानी ।

सुरबास प्रभु बिन ब्रज ह्वै है कहिये कहा समानी ॥५४॥

शब्दार्थ—द्रिगजा-पति-पतनी-पति-सुत = चंद्रमा (द्रिग = लोचन अर्थात् लोइन, लोइन मैना; उसकी जा पार्वती, उसका पति महादेव, उसकी पत्नी गंगा, उसका पति समुद्र, उसका सुत चंद्रमा) । अग्रानी = अज्ञान । सारंग-बचन = पपीहा की पी-पी । भूतनया-रिपु-पितु-सैना की संगिन = विजली (भूतनया सीता, उसका रिपु जयंत, उसका पिता इंद्र, उसकी सेना मेघ, उसकी संगिनी विजली) । मति = बुद्धि । समूचै भूषन = (१) सारी सरस बातें, (२) समुच्चय अलंकार । सुमिरन = (१) याद, (२) स्मरण संचारी भाव ।

प्रसंग—कृष्ण का स्मरण करके विरह-विदग्धा गोपी अपनी कथा का वर्णन अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) चंद्रमा को देखते ही (कृष्ण के मुख का स्मरण आ जाने से) मैं मूर्च्छित होजाती हूँ और अज्ञान बनकर सुंदर भवन की भूमि पर उड़-उठकर गिर पडती हूँ । पपीहा के 'पी-पी' शब्द को सुनकर (प्रियतम के आगमन की सम्भावना से) हृदय में कुछ आशा का संचार होता है । विजली ने भी बुद्धि की गति पकड़ी हुई है ; अर्थात् विजली को देखकर मुझे कृष्ण के पीताम्बर का स्मरण हो आता है । (हे सखि !) मैं अपनी सारी सरस बातों को किससे कहूँ ? (फिर भी कृष्ण का) स्मरण होने से ये सब बातें कह रही हूँ । अथवा इस पद में समुच्चय अलंकार और स्मरण संचारी भाव का वर्णन है । हे बुद्धिमती सखि ! तुम ही बताओ कि कृष्ण के बिना इस ब्रज का क्या होगा ? अर्थात् कृष्ण के बिना इस ब्रज में रहना व्यर्थ है ।

विशेष—इस पद में स्मरण संचारी भाव और समुच्चय अलंकार है :

१. स्मरण—भूले गये पदार्थ की किसी वस्तु के सादृश्य के कारण याद आने में स्मरण संचारी भाव होता है । इस पद में चंद्रमा, पपीहा की पी-पी और विजली को देखकर कृष्ण की सुधि आ जाने से स्मरण संचारी भाव है ।

२. समुच्चय अलंकार—किसी कार्य को करने के लिए जहाँ एक साधक के होते हुए दूसरे साधक का भी वर्णन किया जाये वहाँ समुच्चय अलंकार होता है । इस पद में कृष्ण का स्मरण दिलाने के लिए चंद्रमा के साधक होते हुए पपीहा और विजली का भी कथन किया गया है । अतः समुच्चय अलंकार है ।

: १३८ :

बोल न बोलिए ब्रजचंद ।

कीन है संतोष सब मिलि जान आप अनद ॥

कहै सारंग-सुत-बदनि सुन रही नीचें हेर ।
 निरख सारंग-बदन सारंग सुमुख सुन्दर फेर ॥
 गहत सारंग रिपु-सु-सारंग दियौ सारंग सीस ।
 कियौ भूषन पुत्र-सारंग सँग सारंग दीस ॥
 उदय सारंग जान सारंग गयो अपने देस ।
 सूर स्यःम सुजान सँग ह्वं चली विगत-कलेस ॥१५॥

शब्दार्थ—अनन्द = आनन्दित । संतोष = (१) संतोष, (२) धृति संचारी भाव । सारंग-सुत-बदनि = चन्द्रमुखी (सारंग गमुद्र, उसका मुत चन्द्र, चन्द्र + बदनी चन्द्रबदनी = चन्द्रमुखी) । नीचें हेर = नीचे की ओर देखना । सारंग-बदन = बिगड़ा हुआ मुख, दोषपूर्ण मुख (सारंग कुरंग, कुरंग का अर्थ बिगड़ा हुआ भी होता है + बदन = मुख) । सारंग = नायिका । सारंग = कमल, कमल-चरण । रिपु-सु-सारंग = मान (रिपु है जो कामदेव का; अर्थात् मान) । सारंग = नायिका । पुत्र-सारंग = (१) काजल (सारंग दीपक, उसका पुत्र काजल), (२) कारक दीपक अलंकार । सँग = सहवास, रति-क्रीड़ा । सारंग = मन । सारंग = सूर्य । सारंग = चन्द्रमा । विगत-कलेस = क्लेशों को नष्ट करके, सुखी होकर ।

प्रसंग—इस पद में नायिका के मान-मोचन का वर्णन है ।

अर्थ—(मानवती नायिका कृष्ण से कहती है कि) हे ब्रजनन्दन ! हमसे मत बोलिये, क्योंकि हमने (इसी दशा से) संतोष करके स्वयं को आनन्दित मान लिया है । (कृष्ण के कुछ) कहने पर चन्द्रमुखी नीचे की ओर देखकर सुनती रही (और फिर) कृष्ण के दोषपूर्ण (अन्य नायिका के रति-चिह्नों से युक्त) मुख को देखकर नायिका ने (नायक की ओर से अपना) सुन्दर मुख फेर लिया । (कृष्ण द्वारा) कमल-चरण पकड़ते ही नायिका ने मान को सिर झुकाया, नमस्कार किया; अर्थात् मान का त्याग कर दिया । (मान का परित्याग करके उमने) आभूषण पहिने, काजल लगाया (और अपना) मन सहवास को अर्पित किया, अर्थात् शृंगार करके रति-क्रीड़ा में संलग्न हो गई । सूर्योदय जान कर चन्द्रमा अपने देश को चला गया—अस्त हो गया । (रति-क्रीड़ा से निवृत्त होकर नायिका) सुखी होकर चतुर कृष्ण के साथ चल दी ।

विशेष—इस पद में धृति संचारी भाव और कारकदीपक अलंकार है :

१. धृति—लोभ, मोह, भय आदि से उत्पन्न होने वाले उपद्रवों को दूर करने वाली चित्त-वृत्ति को धृति संचारी भाव कहते हैं । 'बोल न.....अनन्द' में धृति संचारी भाव है ।

२. कारकदीपक अलंकार—बहुत-सी क्रियाओं में एक ही कारक के प्रयोग में कारकदीपक अलंकार होता है । इस पद में नीचे देखना, मुख फेर लेना, मान छोड़ना, शृंगार करना आदि क्रियाओं का एक ही कारक (नायिका) है । अतः कारकदीपक अलंकार है ।

: १३६ :

मानिन तजौ नाहीं मान ।

करत कोटि उपाइ थाको सुघर सुन्दर स्याम ॥

इंद्र-दिसि-के-आदि-राखौ आदि-दरपन-बान ।

दो हकार उचार थाकौ रहे काढ़त प्रान ॥

हेम पितु सुन सबद सेना लगी आप लजाइ ।

जोगि-प्रिय भूषन सँभारत सूर अति सुख पाई ॥५६॥

शब्दार्थ—मुघर = चतुर । इंद्र-दिसि-के-आदि-राखौ = चरण (इन्द्र पाक-शामन; इंद्र की दिशा ईशान; पाकशामन और ईशान शब्दों के आदि वर्णों के मिलाने से बना—पाइ, पाइ = पैर = चरण) । आदि-दरपन-बान = शीश (दरपन शीशा, बान शर; शीशा और शर के आदि-वर्णों के मिलाने से बना—शीश) । दो हकार = हा-हा । हेम-पितु-सेना = बादल (हेम सुवर्ण अर्थात् अर्जुन, उसका पिता इंद्र, उसकी सेना बादल) । लजाइ = (१) लज्जित होना, (२) ब्रीड़ा संचारी भाव । जोगि-प्रिय = (१) योगी का प्रिय मौन, (२) योगी की प्रिय समाधि, अर्थात् समाधि अलंकार ।

प्रसंग—मानिनी नायिका के मान-मोचन का वर्णन मन्वी मन्वी में कर रही है ।

अर्थ—(हे मन्वि !) चतुर कृष्ण कंगोड़ों उपाय करने-करने थक गये, पर मानिनी नायिका (राधा) ने मान नहीं छोड़ा । (कृष्ण ने उनके) चरणों में अपना शीश भी रख दिया, हाहाकार करते-करते थक गये, अपने प्राण भी देने को उतारू हो गये (पर राधा ने तब भी मान नहीं छोड़ा । तभी अकस्मात्) बादलों की गर्जना सुनाई दी जिसे सुनकर वह लज्जित हो गई । सूरदास कहते हैं कि अत्यन्त प्रसन्न होकर (उमने अपना) मौन समाप्त कर दिया । अथवा इस पद में ब्रीड़ा संचारी भाव और समाधि अलंकार है ।

विशेष—इस पद में ब्रीड़ा संचारी भाव और समाधि अलंकार है :

१. ब्रीड़ा संचारी भाव—किसी कारण से उत्पन्न होने वाली लज्जा को ब्रीड़ा कहते हैं । इस पद में वर्णित नायिका को बादलों की गर्जना सुनकर अपने मान पर लज्जा हुई, अतः ब्रीड़ा संचारी भाव है ।

२. समाधि अलंकार—किसी आकस्मिक कारण के उपस्थित होने से जहाँ कार्य की अनायास सिद्धि का वर्णन होता है, वहाँ समाधि अलंकार होता है । यहाँ बादल की आकस्मिक गर्जना से नायिका के मान-मोचन का वर्णन है, अतः समाधि अलंकार है ।

: १४० :

सजनी, निरख अचरज एक ।

जल हरि-हित-रिपु-सैन पराजित ह्वं गये वज्र तजि टेक ॥

सो उर राखि साज सजि आइ समौ पाइ बिन नाथ ।

व्याकुल कै बृषभान-नंदिनी आप भई रचि-साथ ॥

हरष-हरष करषन चित चाहत तिहि तें का प्रति नीक ।

सूरज प्रभुहिं मुनाबत हारौ है को कहु चित ठीक ॥५७॥

शब्दार्थ—निरुखि=देख । हरि-हित-रिपु-सैन=बादल (हरि बानर, उसका हितू पर्वत, उसका रिपु इन्द्र, उसकी सेना बादल) । टेक=मर्यादा । समौ पाइ=समय गकर, अवसर पाकर । व्याकुल=(१) दुखी, (२) आवेग संचारी भाव । रुचि-साथ=प्रसन्न । अरषन=आकर्षित करना । प्रतिनीक=(१) अच्छा बदला, (२) प्रत्यनीक अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण मथुरा चले गये हैं । ब्रज पर बादल घुमड़ते हैं । उन्हें देखकर सखी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सजनी ! एक आश्चर्य (की बात) देख । जल से भरे हुए जो बादल (कृष्ण के द्वारा) पराजित होकर अपनी मर्यादा त्यागकर ब्रज से चले गये थे, वे ही अपनी पराजय को हृदय में रखे हुए कृष्ण के बिना अवसर पाकर तथा (अच्छी तरह) साज सजाकर आ गये हैं । इन्होंने राधा को व्याकुल करके स्वयं प्रसन्नता प्राप्त की है । वे प्रसन्न हो-होकर हमारे प्राणों को कर्षित करना चाहते हैं, हमें मार डालना चाहते हैं । इससे अच्छा बदला इनके लिए और क्या हो सकता है ? सूरदाम कहते हैं कि कृष्ण को (इस विपत्ति को) मुनाने वाला क्या कोई है ? (यह बात) खूब विचार करके बताओ । अथवा इस पद में आवेग संचारी भाव और प्रत्यनीक अलंकार है ।

विशेष—इस पद में आवेग संचारी भाव तथा प्रत्यनीक अलंकार है :

१. आवेग संचारी—भयकारक उत्पान, प्रिय एवं अप्रिय बातों आदि के सुनने से चित्त में जो घबराहट उत्पन्न होती है, उसे आवेग संचारी भाव कहते हैं । इस पद में मेघों के भयकारी उत्पान को देखकर राधा की व्याकुलता का वर्णन होने से आवेग संचारी भाव है ।

२. प्रत्यनीक अलंकार - साक्षात् शत्रु के जीतने में असमर्थ होने के कारण शत्रु के सम्बन्धी का तिरस्कार किये जाने को प्रत्यनीक अलंकार कहते हैं । यहाँ कृष्ण को जीतने में असमर्थ मेघ उनकी अनुपस्थिति में उनकी प्रिया राधा को व्याकुल कर रहे हैं । अतः प्रत्यनीक अलंकार है ।

: १४१ :

बाम-बाम जिन सजनी कोन्ही ।

तिनकों ऊधौ कहा बात बड़ हम हित जोग जुगत चित चीन्ही ॥

पुष्पन-पति-बाहन-भल हम सँग खात न तनिक लाज गति भीनी ।

बृच्छ-भाग धर फिरे सबन कौ कबन आप तब समझ न भीनी ॥

भनित अर्थ भूषन उनही हित की न भरत चित चाह नबीनी ।

सूर कहो जो तुम्हें रुचें हम सीखन जो न मीन गति हीनी ॥५८॥

शब्दार्थ—बाम-बाम = टेढ़ी नारी अर्थात् कुब्जा । सजनी = प्रियतमा । हम हित = हमारे लिए । जोग जुगत = योग-युक्ति । चीन्ही = उचित समझी । पुष्पन-पति-बाहन-भक्ष = सभी खाद्य पदार्थ (पुष्पन सुमन देवता, उनका पति गणेश, उसका बाहन मूषक, उसका भक्ष्य सभी खाद्य पदार्थ) । वृच्छ-भाग = कंधा । भीनी = कम । भनित अर्थ = (१) उक्ति, (२) भणित काव्य, काव्य + अर्थ अर्थात् काव्यार्थापत्ति अलंकार ।

प्रसंग—उद्धव के योग-सदेश से दुखी होकर गोपियाँ उससे कहती हैं ।

अर्थ—हे उद्धव ! जिन्होंने (कृष्ण ने) कुब्जा को अपनी प्रियतमा बनाना और हमारे लिए अपने मन में योग-युक्ति उचित समझी (जिसके कारण तुम्हें योग का उपदेश देने के लिए यहाँ भेजा) उनके लिए क्या बड़ी बात है ? अर्थात् वे सभी कुछ कर सकते हैं, अतः उनके इस अनुचित कार्य पर भी न तो हमें दुःख है और न आश्चर्य । हमारे साथ सभी कुछ खाने में उन्होंने तनिक भी लज्जा नहीं की; अर्थात् हमारे साथ उन्होंने खूब घनिष्ठता बढ़ाई । वे हम सभी को अपने कंधों पर लिए फिरे; अर्थात् हम से भारी स्नेह किया, तब वे क्या कम समझ के थे ? हमने उन्हीं के लिए उक्तियों के भूषण किये हैं; अर्थात् उनसे रस एवं प्रेम-भरी बातों की है, अब किसी नवीन इच्छा से मन नहीं भरता । कहने का भाव यह है कि हमें तो कृष्ण के साथ सरस बातें करके और उनकी सुनकर ही सतोष हो सकता है । (हे उद्धव !) तुम्हें जो अच्छा लगे (वही बात हमसे कहो, हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि) हमारी दशा तो मछली की दशा से भी हीन है (क्योंकि मछली तो जल के विरह में जीवित ही नहीं रहती, पर हम कृष्ण के विरह में भी जावित हैं) । अथवा इस पद में (चपलता संचारी भाव और) काव्यार्थापत्ति अलंकार है ।

विशेष — इस पद में चपलता संचारी भाव और काव्यार्थापत्ति अलंकार है :

१. **चपलता**—मात्सर्य, अमर्ष, द्वेष, ईर्ष्या, अनुराग आदि से चित्त का अस्थिर होना चपलता संचारी भाव कहलाता है । इस पद में कुब्जा गोपियों की ईर्ष्या का कारण है जिससे उनके मन में अस्थिरता है । अतः चपलता संचारी भाव है ।

२. **काव्यार्थापत्ति अलंकार**—जिसके द्वारा कठिन कार्य सिद्ध हो सकता है, उसके द्वारा सुगम कार्य सिद्ध होना क्या बड़ी बात है; जहाँ ऐसा वर्णन होता है वहाँ काव्यार्थापत्ति अलंकार होता है । यहाँ बताया गया है कि जिस कृष्ण ने कुब्जा को प्रियतमा बनाकर कठिन कार्य सिद्ध कर लिया, उसके लिए योग-युक्ति का कार्य करना कोई बड़ी बात नहीं है । अतः काव्यार्थापत्ति अलंकार है ।

: १८२ :

देख री नृषभानजा की बसा आज अनूप ।

बनत नाहीं कहत देखत सरस बिरह स्वरूप ॥

नोकनन तैं दिबस डारत परत घन पे हेर ।

बेद धरत न सुन्न-गुन के नखत टार न फेर ॥

सुकुबाहन सी सुखानी बिना जीवन देख ।

चंदभाग पठाइ दीनौ प्रानपति संग लेख ॥

पंच-ग्रह राखनि बिचारौ बहै सारंग एक ।

भनित-चिन्ह बिचार अबरन राखु सूरज टेक ॥५६॥

शब्दार्थ वृषभानजा = वृषभानु की पुत्री; अर्थात् राधा । अनूप = अनुपम । नीकनन तें = नेत्रों से । दिबस = वारि (दिवस वार अर्थात् वारि) । घन = कुच (घन पयोधर अर्थात् कुच) । वेद = कान (वेद श्रुति अर्थात् कान) । सुन्न-गुन = शब्द (सुन्न-शून्य = आकाश, उसका गुण शब्द) । नखत = आँखों की पुतलियाँ (नखत नक्षत्र = तारे = आँखों की पुतलियाँ) । सुकबाहन = मेंढक (सुक शुक्र, उसका बाहन मेंढक) । जीवन = (१) जल, (२) जीवनदाना कृष्ण । चंदभाग = मन (निरुक्त में चन्द्रमा के दो भाग बताये गये हैं—चंदोमाता और चांद्र मानम्; मानम् अर्थात् मन) । पंचग्रह = जीव (पाँचवा गृह बृहस्पति अर्थात् जीव) । सारंग = पपीहा । भनित-चिन्ह = (१) कही हुई बात का चिन्ह, (२) भणित = काव्य, चिन्ह = लिंग; काव्य + लिंग अर्थात् काव्यलिंग अलंकार । अबरन = (१) आभरण, भूषण (२) अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण के विरह में राधा की जो दयनीय दशा हो गई है, उसी का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे (सखि ! कृष्ण के वियोग में) राधा की अनुपम दशा देखो । उसकी विरहावस्था का सरस स्वरूप देखकर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । देखो, वह नेत्रों से आँसू निकाल कर अपने कुचों पर डाल रही है । उसके कान कोई शब्द नहीं सुनते (और उसकी) आँखों की पुतलियाँ फिरती नहीं हैं; अर्थात् स्थिर बनी हुई है । देखो, वह जलहीन मेंढक की भाँति कृष्ण के विरह में सूख गई है । (अपने) मन को उसने कृष्ण के साथ भेज दिया है । (अब तो) केवल पपीहा ही उसके आश्रयहीन जीव का रक्षक है (पपीहा के पी-पी बोलने पर उसे प्रियतम के आगमन की कुछ आशा बँधती है, इसी कारण वह जीवित है) । सूरदास कहते हैं कि इस कही हुई बात को चिन्ह-स्वरूप भूषण समझ कर हठपूर्वक रख लो । अथवा इस पद में (जड़ता संचारी भाव और) काव्यलिंग अलंकार है ।

विशेष—इस पद में जड़ता संचारी भाव और काव्यलिंग अलंकार है :

१. जड़ता—जहाँ इष्ट वस्तु के वियोग अथवा नाश से शारीरिक और मानसिक जड़ता आ जाती है, वहाँ जड़ता संचारी भाव होता है । इस पद में आँसू बहने का, कानों से कुछ न सुनने का, आँखों की पुतलियाँ न फिरने का कथन करके राधा की जड़ता को व्यक्त किया गया है ।

२. काव्यलिंग अलंकार—जहाँ कही हुई बात का समर्थन किसी ज्ञापक कारण के द्वारा किया जाता है, वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है । 'सुकबाहन सी सुखानी बिना जीवन देख' में कथितार्थ का ज्ञापक कारण से समर्थन होने से काव्यलिंग अलंकार है ।

: १४३ :

आबत सुनौ नंद किसोर ।
 आजु मेरी गली होकं करत बंसी-सोर ॥
 लगे हुलसन मेघ मंगल भरे बियक सजोर ।
 करन चाहत राख रोके काम कलबल छोर ॥
 अत तै कर हीन फरकत फनिग बाई और ।
 नीत बिन बलवान सीखत नीक जानत जोर ॥
 काज आपन समुझ कैं किन करै आप अथोर ।
 वाच्य-अन्तर-आदि-जप कर सूर भूपन तोर ॥६०॥

शब्दार्थ—बंसी-सोर=बाँसुरी बजाते हुए । लगे हुलसन=उल्लसित होने लगे । मेघ=कुच (मेघ पयोधर=कुच) । मंगल=आनन्द । बियक=मोह । सजोर=बलपूर्वक । करन=कर्ण, कान । कलबल=युक्तिपूर्वक । छोर=छोड़ । अत तै कर हीन फनिग=भुजा (फनिग भुजग, भुजग से अन्त वर्ण निकालने पर बना भुज अर्थात् भुजा) । नीत बिन=नयन (नीत नय, बिन न, नय +न=नयन) । नीत बिन=नीति-रहित । नीक=ठीक, उचित । जोर=शक्ति । किन=क्यों । अथोर=अधिक । वाच्य-अन्तर-आदि-जप=(१) अर्थ के बीच और आदि में वर्णित, (२) वाच्य अर्थ, अन्तर, आदि जप तप का आदि न्यास, अर्थ+अन्तर+न्यास=अर्थान्तरन्यास, एक अलंकार-विशेष ।

प्रसंग—कृष्ण के आगमन से उल्लसित होकर नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) मैंने सुना है कि कृष्ण बाँसुरी बजाते हुए आज मेरी गली में होकर आ रहे हैं । (उनके आगमन के समाचार से) मेरे कुच उल्लसित होने लगे हैं (और वे) बलपूर्वक आनन्द तथा मोह से भर गये हैं । (मेरे) कान अन्य कामों को छोड़कर युक्तिपूर्वक (उनकी बाँसुरी के स्वरों को) रोके रहना चाहते हैं । (प्रिय के आगमन का भावी संकेत देने वाली मेरी) बाईं भुजा फड़कने लगी है । नीति-रहित नयन शक्ति को ही ठीक मान रहे हैं, क्योंकि बलवान यही सीखते हैं । (फिर भला) वे इसे अपना काम समझकर अधिक शक्ति से क्यों न करें ? सूरदास कहते हैं कि इस (पद के) अर्थ के बीच और आदि में जो वर्णित है, उनका जप करो; अर्थात् कुच, कान और नयनों को प्रियतम के प्रति समर्पित कर दो तथा अन्य भूषणों को तोड़ दो । अथवा इस पद में (हर्ष संचारी भाव और) अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

विशेष—इस पद में हर्ष संचारी भाव और अर्थान्तरन्यास अलंकार है :

१. **हर्ष**—इष्ट की प्राप्ति आदि से जो प्रसन्नता होती है, उसे हर्ष संचारी भाव कहते हैं । इस पद में वर्णित नायिका कृष्ण के आगमन से प्रसन्न है, अतः हर्ष संचारी भाव है ।

२. अर्थान्तरन्यास अलंकार—जहाँ सामान्य वाक्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाये, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इस पद में 'आवत सुनौ नदकिशोर' वाक्य का समर्थन 'लगे हुलसन'.....'जानत जोर' इन विशेष श्रावकों से किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

: १४४ :

सिब-भख ग्रह सारँग सी जोत ।

कहत सदा याही बिधि प्रति दिन प्रिय मन सकुच न होत ॥

दधिसुत में दधितिया दिपत सी मृदु मुख तैं मुसकात ।

सुन्दर आखर नग पै नगपति घन कहि लजत न गात ॥

सुनि सुनि प्रौढ़ उक्ति अस उनकी मन की कहौ न जात ।

सूर स्याम कों कों समुभाबत तो बिन ललिता बात ॥६१॥

शब्दार्थ—सिब-भख=सोना (शिव का भस्म धतूरा जिसे कनक कहते हैं और कनक का अर्थ 'सोना' भी होता है)। ग्रह=गृह, भवन। सारँग=दीपक। जोत=ज्योति। सकुच=सकोच। दधि-सुत=चन्द्रमा। दधितिया=गंगा। सुन्दर आखर=स्वर्ण (सुन्दर=सु, आखर वर्ण; सुवर्ण अर्थात् स्वर्ण) नग=पर्वत। नगपति=महादेव। घन=कुच (घन पयोधर=कुच)। प्रौढ़ उक्ति=(१) बड़ी बात, (२) प्रौढ़ोक्ति अलंकार। ललिता=राधा की सखी।

प्रसंग—राधा अपनी सखी ललिता से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि!) 'तुम्हारा रंग सोने के भवन में दीपक की ज्योति के समान हैं' प्रिय कृष्ण सदा इस प्रकार प्रतिदिन कहते हैं (और इस प्रकार कहते हुए उनके) मन में सकोच नहीं होता। 'तुम्हारे मुख से (निकली हुई) मुस्कान चंद्रमा में गंगा के समान चमकती है; तुम्हारे कुच (मानो) स्वर्ण-पर्वत पर महादेव हैं' यह कहते हुए भी उनका शरीर लज्जित नहीं होता। उनकी बड़ी-बड़ी बातें सुनकर (मैं) इतनी विमूढ़ हो गई हूँ कि अपने मन की बात नहीं कह सकती। हे ललिता! तुम्हारे बिना कृष्ण को कौन समझा सकता है (कि इस प्रकार की बातें नहीं कहनी चाहिए)। अथवा इस पद में (गर्व संचारी भाव और) प्रौढ़ोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस पद में गर्व संचारी भाव और प्रौढ़ोक्ति अलंकार है :

१. गर्व—रूप, धन, विद्या आदि से उत्पन्न हुए अभिमान को गर्व कहते हैं। यहाँ नायिका (राधा) को अपने रूप का अभिमान है, जिसे वह प्रकारांतर से ललिता से कह रही है, अतः गर्व संचारी भाव है।

२. प्रौढ़ोक्ति अलंकार—जिस वस्तु के उत्कर्ष का जो हेतु नहीं है, उसे उसके हेतु वर्णन में प्रौढ़ोक्ति अलंकार होता है। इस पद में दीपक-ज्योति, चंद्रमा में गंगा की धारा, स्वर्ण-पर्वत पर महादेव नायिका की सुन्दरता के वर्णन में उत्कर्ष के हेतु नहीं है, तथापि इन्हें हेतु बताया गया है। अतः प्रौढ़ोक्ति अलंकार है।

: १४५ :

फल-सूचक का कहिकें जये ।

जो जहँ बिपति परी तन ऊपर सो का कहि समुझये ॥

दधि-सुत-रिपु-भख-सुत-सुभाव पै इत उन मोहि बुलाई ।

गिरजापति-भख बीच कौन सो ह्वंगे मोकों माई ॥

भू-सुत-सत्रु-थान किन हेरत लखत भोहि मन मारै ।

मुनि-रिपु-पुत्र-बधू किन बैरिन मोकों देत सवारै ॥

तीन-सुन्न-इक करी होइकें तितनै मुख मुख पावौं ।

नंदनंदन की कीरत सूरज तो सम्भावन गावौं ॥६२॥

शब्दार्थ—फल-सूचक=घर (शुभ-अशुभ फलों का सूचक ग्रह अर्थात् गृह या घर) । दधि-सुत-रिपु-भख-सुत-सुभाव=सखी (दधि-सुत चंद्रमा, उसका रिपु राहु, उसका भक्ष्य सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका स्वभाव दानी अर्थात् सखी, क्योंकि फारसी में 'दानी' को 'सखी' कहते हैं) । गिरजापति-भख=विष (गिरजापति महादेव.उसका भक्ष्य विष) । भू-सुत-सत्रु-थान=वृक्ष (भू-सुत केवाच, उसका शत्रु बदर, उसका स्थान वृक्ष) । किन हेरत=क्यों नहीं देखती । मुनि-रिपु-पुत्र-बधू=ऊषा (मुनि-रिपु कामदेव, उसका पुत्र अनिरुद्ध, उसकी बधू ऊषा अर्थात् ऊषाकाल) । सवारै=सवाद, समाचार । तीन सुन्न इक=एक हजार (१०००) । करी=शेषनाग (करी हाथी जिसे नाग भी कहते हैं, नाग का अर्थ शेषनाग भी होता है) । कीरत=कीर्ति । सम्भावन=(१) सम्भवतः, (२) सम्भावना अलंकार ।

प्रसंग—नायिका (राधा) नायक (कृष्ण) से मिलने के लिए चली, पर बीच में ही बाधा आ जाने से वह उनसे न मिल सकी । अपने दुःख का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि ! प्रिय से भेंट भी न हो सकी और देर हो गई, अतः) मैं अब घर जाकर क्या करूँगी । मेरे शरीर पर जो विपत्ति पड़ी है, उसे किस प्रकार तुमको समझाऊँ ? उन्होंने सखी के द्वारा मुझे बुलाया ही था कि तभी (यह बाधा) मेरे लिए विष हो गई ; अर्थात् विष के समान कष्टदायक बन गई । हे सखि ! तू मुझको तो मन मारकर देख रही है, पर वृक्षों को क्यों नहीं देखती । बैरिन ऊषा ने भी मुझको यह क्या समाचार दिया है । (इसमें कृष्ण का दोष तो कुछ भी नहीं है, क्योंकि) उनकी कीर्ति (तो इतनी अधिक है कि) यदि मैं शेषनाग बनकर एक हजार मुख वाली बन जाऊँ, तब सम्भवतः उनकी कीर्ति का वर्णन कर सकूँ अथवा इस पद में (विषाद संचारी भाव और)सम्भावना अलंकार है ।

विशेष—इस पद में विषाद संचारी भाव और सम्भावना अलंकार है :

१. विषाद—किसी असफलता के कारण जो दुःख होता है, उसे विषाद-संचारी भाव कहते हैं । इस पद में, नायिका को नायक से न मिल सकने के कारण दुःख हुआ है, अतः विषाद संचारी भाव है ।

२. सम्भावना अलंकार—‘यदि ऐसा होता तो ऐसा हो जाता’ जहाँ इस प्रकार का वर्णन हो, वहाँ सम्भावना अलंकार होता है। यहाँ नायिका के इस कथन में ‘यदि उसके सहस्रमुख होते तो वह कृष्ण की कीर्ति का वर्णन कर सकती’ में सम्भावना अलंकार है।

: १४६ :

सोवत कुंज-भवन में दोउ ।

श्री बृषभान कुमारि लाड़िली नंदनंदन ब्रजभूपन सोउ ॥

हाथन-पितु-सुत-हित-मुनि-षट धर एक एक ऊपर सुच सोउ ।

अंतरिच्छ सारंग-सुत उनके उन उन रग बिन नीकन होउ ॥

यह सुख मधुर सुनत खवनन में रहत सेष आनंद भर जोउ ।

सूरदास प्रभु की यह लीला मिथ्या करत ब्रह्म सुख धोउ ॥६३॥

शब्दार्थ—दोउ = दोनों ; राधा और कृष्ण । हाथन पितु-मुन-हित-मुनि-षट = हाथ (हाथन करन कर्ण, उसका पिता सूर्य, उसका सुत सुभीक, उसका हितृ ऋक्ष = नक्षत्र ; मुनि सात + षट = तेरह, तेरहवाँ नक्षत्र हस्त अर्थात् हाथ) । सुच = शुचि, पवित्र । अंतरिच्छ = अंतरिक्ष, अधर । सारंग-सुत = काजल (सारंग दीपक, उसका सुत काजल) । नीकन = नेत्र । खवनन मै = कानों में । सेष शेषनाग । मिथ्या = (१) झूठ, (२) मिथ्याध्यवसिति अलंकार ।

प्रसंग—सुरति के पश्चात् राधा और कृष्ण के सुखपूर्वक सोने का वर्णन है ।

अर्थ—राधा और कृष्ण दोनों (सुरति के पश्चात्) कुञ्ज-भवन में सोये हुए थे । उनके पवित्र हाथ एक-दूसरे के ऊपर रखे हुए थे । (परस्पर चुम्बन के कारण) कृष्ण के अधर काजलयुक्त और राधा के नेत्र काजल विहीन हो गये थे । इस मधुर सुख को (अपने हजारों) कानों में सुनकर शेषनाग पूर्ण आनंद से भरे रहते हैं । कृष्ण की यह लीला ब्रह्म-सुख अर्थात् ब्रह्मानंद को भी झूठा करती है; अर्थात् इस लीला को देखने से जो आनंद मिलता है, वह ब्रह्मानंद से भी महान् है । अथवा इस पद में (निद्रा संचारी भाव और) मिथ्याध्यवसिति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में निद्रा संचारी भाव और मिथ्याध्यवसिति अलंकार है:

१. निद्रा—सुप्त अवस्था के वर्णन में निद्रा संचारी भाव होता है । यहाँ राधा और कृष्ण की सुप्तावस्था का वर्णन होने से निद्रा संचारी भाव है ।

२. मिथ्याध्यवसिति अलंकार—किसी झूठी बात का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिए जहाँ अन्य मिथ्या अर्थ की कल्पना की जाती है, वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलंकार होता है । इस पद में शेषनाग के कानों की (क्योंकि उसके कान नहीं होते) मिथ्या कल्पना को सिद्ध करने के लिए उसके सुनने की मिथ्या कल्पना की गई है । अतः मिथ्याध्यवसिति अलंकार है ।

: १४७ :

मेरी कही न मानत राधे ।

ये अपनी मत समुझत नाहीं कुमति कहा पन नाथे ॥

दधिसुत-सुत-सुत-के-हितकारी सज-सज सेज बिछावें ।

ता पर पौढ़ चहत है आपन भल बल को समुझावें ॥

ग्रह-नक्षत्र-ग्रह-बेद-ग्रह-करि खात हरष मन बाढ़ौ ।

ताते चहत अमरपन तन कौ समुझि समुझ चित काढ़ौ ॥

जग-प्रिय घटें देखि निज नैनन आपन रँग बनावें ।

सूर ललित सब बात समुझ कै को कहि कहा रिभावें ॥६४॥

शब्दार्थ - मत = सिद्धान्त, भला-बुरा । कुमति = दुर्बुद्धि । पन = प्रण, प्रेम-प्रतिज्ञा । नाथे = ठान लिया है । दधिसुत-सुत-सुत-के-हितकारी = अग्नि (दधिसुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उमका सुत वशिष्ठ, उमका हितकारी अग्निदेव अर्थात् अग्नि) । पौढ़ = चढ़कर, शयन करके । भल = भला । बल = बाला । ग्रह-नक्षत्र-ग्रह-बेद-ग्रह-करि = विष (ग्रह नौ + नक्षत्र सताईस + वेद चार = चालीस, इनका आधा बीस अर्थात् विष) । चित काढ़ौ = चित्त से निकालो । जग-प्रिय लोक-प्रियता । रँग बनावें = रंग बनाती है, अभिनय करती है । ललित = (१) सुन्दर, व्यंग्यार्थ असुन्दर, (२) ललित अलंकार ।

प्रसंग—राधा कृष्ण से प्रेम करती है जिससे उसकी वदनामी हुई । उसकी हितकारिणी सखियों ने उसे बहुत समझाया, पर उसने किसी की भी बात नहीं मानी । उसकी इसी हठ का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) राधा मेरा कहना मानती ही नहीं है । वह अपनी दुर्बुद्धि को (किसी भी प्रकार) समझ नहीं रही है । वरन् (कृष्ण से प्रेम बनाये रखने का उसने) प्रण ठान लिया है । वह सजा-सजाकर अग्नि पर (अपनी) सेज बिछाती है और उस पर शयन करके अपना भला चाहती है । उस बाला को कौन समझाये (कि प्रेम करने से किसी को भी सुख नहीं मिला करता) । (उसका भोलापन तो देखो कि) विष खाकर वह अपने मन में हर्षित होती है और उसी से अपनी देह का अमरपन चाहती है । (उसकी इस दुर्बुद्धि को) समझकर कोई उसके चित्त से यह बात निकाल दे (कि प्रेम का मार्ग कंटकों से भरा हुआ है) । अपनी ही आँखों के सामने अपनी लोक-प्रियता घटती देखकर वह इस प्रकार का अभिनय करती है (जैसे उसे इस बात का बिल्कुल भी पता नहीं है) । गुरुदास कहते हैं कि इन सब असुन्दर बातों को समझकर भी उसे (राधा को) क्या कहकर प्रसन्न किया जाये ? भाव यह है कि राधा को किसी भी प्रकार प्रसन्न करके कृष्ण के प्रेम से विमुख नहीं किया जा सकता । अथवा इस पद में (अमर्ष संचारी भाव और) ललित अलंकार है ।

विशेष—इस पद में अमर्ष संचारी भाव और ललित अलंकार है :

१. अमर्ष—दूसरे की निंदा, आक्षेप, अपमान आदि से उत्पन्न चित्त-वृत्ति का वर्णन होने से अमर्ष संचारी भाव है ।

२. ललित अलंकार—जहाँ वर्णनीय वृत्तांत के प्रतिबिम्ब का वर्णन हो, वहाँ ललित अलंकार होता है । यहाँ वर्णनीय विषय है प्रेम के मार्ग की कठिनाइयाँ, पर उन्हें प्रत्यक्ष न कहकर अग्नि की शैया पर सोना, विष खाना आदि प्रतिबिम्बात्मक वाक्यों से कहा गया है । अतः ललित अलंकार है ।

: १४८ :

हौं जल गई जमुना लैन ।

मदन-रिस-के-आदि-तै-मिल मिली गुन-गन-ऐन ॥

कहन लागी कमल-पितु-पति-भगिनि की सब बात ।

पलक नैक उधार देखत अयौ सुन्दर गात ॥

सुरन-सारँग के सम्भारत सरस सारँग-नैन ।

सूरदास सदा प्रहर्षन सुरुच सारँग-बैन ॥६५॥

शब्दार्थ—हौं = मैं । लैन = लेने के लिए । मदन रिस के आदि तै मिल = सखी (मदन स्मर या समर ; रिस क्रोध या खीस ; 'समर' और 'खीम' शब्दों के आदि वर्णों से मिलकर 'सखी' बना) । गुन-गन ऐन = गुणों के समूह का भंडार, अर्थात् परम गुणवती । कमल-पितु-पति-भगिनि = कृष्ण (कमल का पिता जल जिसे 'क' भी कहते हैं ; पति भगिनि पति की बहिन अर्थात् ननद ; 'क' और 'ननद' के आदि वर्णों को मिलाने से बना—कन = कान्हू अर्थात् कृष्ण) । अयौ सुन्दर गात = सुन्दर शरीर वाला कृष्ण आ गया । सुरन सारँग = सारंग-राग के स्वर । सारँग नैन = कमल नयन । प्रहर्षन = (१) आनंद, (२) प्रहर्षण अलंकार । सारँग-बैन = कोयल वाणी ।

प्रसंग—यमुना पर जल लेने के लिए गई हुई नायिका की भेंट अकस्मात् कृष्ण से हो गई । उसी का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) मैं यमुना पर जल लेने के लिए गई थी कि (वहाँ पर अचानक मुझे) परम गुणवती सखी मिली । वह मुझ से कृष्ण की सारी बातें बताने लगी । (उसकी बातों को सुनकर जब मैंने) तनिक पलक उठाड़कर देखा तो मुझे सुन्दर शरीर वाला कृष्ण आया हुआ दिखाई दिया । वह सरस एव कमलनयन कृष्ण सारँग-राग के स्वर बजा रहा था । सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार नायिका ने) सुरुचि और आनंद से कृष्ण की कोयल की भाँति मधुर वाणी को सुना । अथवा इस पद में (श्रोतसुख संचारी भाव और) प्रहर्षण अलंकार है ।

विशेष—इस पद में श्रोतसुख संचारी भाव और प्रहर्षण अलंकार है :

१. जहाँ किसी कार्य या किसी से मिलन के लिए मन बहुत ही उत्सुक हो जाए, वहाँ श्रोतसुख संचारी भाव होता है । इस पद में कृष्ण की बातें सुनकर उनसे

मिलने के लिए नायिका की उत्सुकता का व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है। अतः श्रौत्सुक्य संचारी भाव है।

२. प्रहर्षण अलंकार—जहाँ बिना किसी बाधा अथवा प्रयाम के ही मनोवांछित फल की प्राप्ति का वर्णन हो, वहाँ प्रहर्षण अलंकार होता है। यहाँ नायिका का बिना प्रयास के ही कृष्ण से मिलने का वर्णन होने से प्रहर्षण अलंकार है।

: १४६ :

हौं अलि ! कितने जतन बिचारौं ।

यह मूरत वाके उर अंतर बसो कौन बिधि टारौं ॥

जब हौं कहत लाज की बातें, तब अति व्याकुल होई ।

चंद-चौथ निकसत सौ मोकों, जान परत बल सोई ॥

सुरभी-तम-जा-सुत-पित नाहीं चलत हार चित हेरौं ।

अपसमार जहँ सूर समारत बढ़ बिषाद उर पेरौं ॥६६॥

शब्दार्थ—कितने = कितने ही, अनेक। जतन = यत्न, उपाय। यह मूरत = कृष्ण की मूर्ति। टारौं = हटाऊँ। चंद-चौथ = प्राण (चंद्रमा से चौथा ग्रह वृहस्पति, जिसे जीव भी कहते हैं और 'जीव' का अर्थ प्राण भी होता है)। सुरभी-तम-जा-सुत-पित = साँस (सुरभी गौ + तम = गौतम, उसकी जा अंजनी, उसका सुत हनुमान, उसका पिता पवन अर्थात् मांग)। अपसमार = (१) मूर्च्छा, (२) अपस्मार संचारी भाव। बिषाद = (१) दुःख, (२) बिषादन अलंकार।

प्रसंग—कृष्ण के वियोग से राधा बहुत व्यथित है। उसकी व्यथा का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे मखि ! मैंने अनेक उपाय किये हैं (पर समझ में नहीं आता कि) उसके (राधा के) हृदय में कृष्ण की जो मूर्ति बसी हुई है, उसे किस प्रकार हटाऊँ। कहने का भाव यह है कि मैंने अनेक यत्न किए कि राधा कृष्ण से विमुख हो जाये, पर मेरे सारे ही प्रयत्न निष्फल हुए। मैं जब भी उससे लज्जा की बातें करती हूँ (उसे यह बताती हूँ कि कृष्ण से प्रेम करने के कारण उसकी बहुत बदनामी हो गई है) तब वह अत्यंत व्याकुल हो जाती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे (किसी भी समय) बलपूर्वक उसके प्राण निकल जायेंगे। (उसके प्राण-त्याग की आशंका से जब मैं) मन में हारकर उसे देखती हूँ तो (प्रतीत होता है जैसे उसकी) साँस ही नहीं चल रही है। सूरदास कहते हैं कि राधा के हृदय में बहुत दुःख है, इसलिए उसे मूर्च्छा आ जाती है। अथवा इस पद में अपस्मार संचारी भाव और विषादन अलंकार है।

विशेष—इस पद में अपस्मार संचारी भाव और विषादन अलंकार है :

१. अपस्मार—वियोग, भय, क्षोभ आदि से उत्पन्न व्याधि को अपस्मार कहते हैं। यहाँ नायिका की साँस रुक जाने का तथा मूर्च्छित हो जाने का वर्णन होने से अपस्मार संचारी भाव है।

२. विषादन अलंकार—जहाँ मनोवांछित फल के विपरीत फल का वर्णन हो, वहाँ विषादन अलंकार होता है। इस पद में सखी का मनोवांछित फल है नायिका को कृष्ण से विमुख करना, पर फल है नायिका का मूर्च्छित होना। अतः विषादन अलंकार है।

: १५० :

सोवत थी मैं सजनी आज ।

तब-लग सुपन एक यह देखौ कहत अचम्भो साज ॥

सिब-भूषन-रिपु-भख सुत-बैरी-पितु-अरि-केर-सुभाव ।

आइ गी जहँ सुत-सुत बैठे हँसत बढ़ाये चाव ॥

हौं चाहै तासों सब सीखब रस-बस-करिबौ कान ।

जाग उठी सुन सूर स्याम सँग का उल्लास बखान ॥६७॥

शब्दार्थ—तब लग = तभी। सिब-भूषन-रिपु-भख-सुत-बैरी-पितु-अरि-केर-सुभाव = सखी (सिब-भूषन चंद्रमा, उसका रिपु राहू उसका भक्ष्य सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका बैरी अर्जुन, उसका पिता इंद्र, उसका अरिबलि बलिका स्वभाव दानी अर्थात् सखी, क्योंकि फारसी में दानी को सखी भी कहते हैं)। सुत-सुत = कृष्ण। सीखब = सीख ली। रस-बस-करिबौ = रस के वशीभूत करना। कान = कान्ह, कृष्ण। उल्लास = (१) आनन्द, (२) उल्लास अलंकार।

प्रसंग—नायिका (राधा) स्वप्न में कृष्ण से मिली। उसी घटना का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है।

अर्थ—हे मजनी ! आज (रात) मैं (जब) सोई हुई थी तभी मैंने यह स्वप्न देखा जिसे बताते हुए मुझे आश्चर्य होता है। (स्वप्न में मैंने देखा कि) जहाँ बैठे हुए कृष्ण हँसते हुए चाह बढ़ा रहे थे, वहाँ एक सखी आ गई। (तब मैंने) कृष्ण के रस के वशीभूत करने की सारी तरकीबें उससे सीख ली। (हे सखी !) सुन, तभी मैं जाग पड़ी, अतः कृष्ण के साथ (जो आनन्द मुझे मिला था, अब उस) आनन्द का क्या वर्णन करूँ ? अथवा इस पद में (स्वप्न संचारी भाव और) उल्लास अलंकार है।

विशेष इस पद में स्वप्न संचारी भाव और उल्लास अलंकार है :

१. स्वप्न—जहाँ निद्रावस्था में घटित किसी घटना का वर्णन होता है, वहाँ स्वप्न संचारी भाव होता है। यहाँ नायिका के स्वप्न में कृष्ण से मिलने और आनन्द प्राप्त करने का वर्णन होने से संचारी भाव है।

२. उल्लास—एक के गुण अथवा दोष से दूसरे के गुण अथवा दोष की प्राप्ति के वर्णन में उल्लास अलंकार होता है। इस पद में कृष्ण को वशीभूत करने का सखी का गुण नायिका द्वारा प्राप्त बताया गया है। अतः उल्लास अलंकार है।

: १५१ :

ऊधो ! तब तें अब अति नीकी ।

लागत हमें स्यामसुन्दर बिन नाहिन ब्रज अति फीकी ।

वायस शब्द अजा की मिलवन कीनो काम अनूप ।

सब दिन राखत नीकन आगें सुन्दर स्याम सरूप ॥

दोइ-जनम-कौ-राजा बेरी का बिधि आप बनावें ।

करत अनुज्ञा भूषन मोकों सूर स्याम चित आवैं ॥६८॥

शब्दार्थ—तब तै—संयोगावस्था से । अब = वियोगावस्था । नीकी = अच्छी । वायस शब्द अजा की मिलवन—कामैं, कामदेव ने (वायस कौवा, उमका शब्द काँय, अजा बकरी, उमका शब्द मै, का + मैं = कामैं, कामदेव ने) । कीनो काम = कार्य किया है । नीकन आगें = आँखों के आगे । सरूप = स्वरूप । दोइ-जनम-कौ-राजा = चन्द्रमा (दोइ-जनम को द्विज, राजा राज, द्विज + राज = द्विजराज अर्थात् चन्द्रमा) । अनुज्ञा = (१) मनाही, (२) अनुज्ञा अलंकार ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से कह रही है ।

अर्थ—हे उद्धव ! संयोगावस्था की अपेक्षा वियोगावस्था (हमारे लिए) बहुत अच्छी है । कृष्ण के बिना ब्रज हमें बहुत अधिक फीका नहीं लगता । कामदेव ने (कृष्ण के यहाँ से जाने के पश्चात्) यह अद्भुत कार्य किया है कि वह कृष्ण के स्वरूप को सदा हमारी आँखों के सामने बनाये रखता है । (चन्द्रमा भी उनके जाने के बाद ही हमारा शत्रु बना है अन्यथा उनके सामने) वह किस प्रकार स्वयं को शत्रु बना सकता था । (स्वप्नों द्वारा) कृष्ण को मन में लाने की भी, उनका स्मरण करने की भी मनाही है । यही हमारा भूषण है । अथवा इस पद में (उग्रता संचारी भाव और) अनुज्ञा अलंकार है ।

विशेष—इस पद में उग्रता संचारी भाव और अनुज्ञा अलंकार है :

१. उग्रता—अपमान आदि के कारण हृदय में जो दया का अभाव उत्पन्न होता है, उसे उग्रता संचारी भाव कहने है । यहाँ अपमानित गोपियों का कृष्ण के प्रति निष्ठुरतापूर्ण कथन है, अतः उग्रता संचारी भाव है ।

२. अनुज्ञा अलंकार—जहाँ दोष को भी गुण मानकर वर्णन किया जाये, वहाँ अनुज्ञा अलंकार होता है । यहाँ गोपियाँ वियोगावस्था को संयोगावस्था की अपेक्षा अधिक सुखदाई बता रही है, अतः अनुज्ञा अलंकार है ।

: १५२ :

बालम कौन सीखी बान ।

सुतन मोकों सकुच आवत सुनत उनकी ठान ॥

देख भाजन होत कबहूँ कहूँ दीप समान ।

सम्भु-सुत-भूषन बतावत बदन आप प्रमान ॥

रंग-बद के सदृश सब दिन करत नीकन जान ।

अन्तरिच्छन सिन्धु-सुत से कहत का अनुमान ॥

राहु-भख-के-बंधु से हैं तब कपोल सुभान ।

कहत सारंग-बैन सुलगत हृदय सुन सुन तान ॥

रहत हैं जहँ जीव इतने समुझ इनकों आन ।

सूर प्रभु की बाँसुरी में लेस भूषन कान ॥६६॥

शब्दार्थ—वान=आदत । सुनन=सुन्दर शरीर वाली अर्थात् नायिका । सकुच=सकोच । ठान=हठ । भाजन=घटना, कम होना (भाजन पात्र जिसे 'घट' भी कहते हैं और 'घट' शब्द का अर्थ घटना या कम होना भी होता है) । दीप=बढ़ना (दीप के बुझाने को 'बढ़ना' कहते हैं) । सम्भु-सुत-भूषन=चन्द्रमा (सम्भु महादेव, उनका पुत्र गणेश, उनका भूषन चन्द्रमा) । बदन=मुख । रंग-बद=हिरन (रंग-बद बदरंग अर्थात् कुरंग=हिरन) । नीकन=नेत्र । अन्तरिच्छन=ओष्ठ । सिन्धु-सुत=अमृत । राहु-भख-के-बंधु=कमल (राहु का भक्ष्य सूर्य, उसका बंधु कमल) । सुभान=सुन्दर । । सारंग-बैन=कोयल के सदृश मीठी वाणी । लेस= (१) थोड़ा, (२) लेश अलंकार ।

प्रसंग—रूपगविता नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मेरे प्रियतम ने यह कैसी विलक्षण आदत सीख ली है कि उनकी हठ को सुनकर ही मुझे लज्जा आती है । वे उस चन्द्रमा को जो घटता-बढ़ता रहता है, मेरे मुख के समान बताते हैं । मेरे नेत्रों को सदैव (बदरंग) हिरन के समान मानते हैं । मेरे ओष्ठों को (खारी सागर से निकलते हुए अमृत के समान अनुमानित करते हैं) । मेरे सुन्दर कपोल को (कीचड़ में उगे हुए) कमल के समान कहते हैं । उनकी निरन्तर यह रटन सुनकर (कि मेरी वाणी) कोयल-वाणी की भाँति मधुर है, मेरा हृदय सुलगता रहता है (क्योंकि काली कोयल की वाणी मेरी वाणी की समता किस प्रकार कर सकती है) । जहाँ (एक साथ) इतने जीव रहते हैं, वहाँ उनकी आन को क्या समझा जाए । कृष्ण की बाँसुरी का थोड़ा स्वर भी मेरे कान का भूषण होता है । अथवा इस पद में (अवहित्था संचारी भाव और) लेश अलंकार है ।

विशेष—इस पद में अवहित्था संचारी भाव और लेश अलंकार है :

१. अवहित्था—जहाँ वास्तव भाव को छिपाया जाता है, वहाँ अवहित्था संचारी भाव होता है : इस पद में नायिका का वास्तविक भाव गर्व है, पर वह उसको छिपाकर क्रोध को प्रकट कर रही है, अतः संचारी भाव है ।

२. लेश—जहाँ गुण में दोष या दोष में गुण की कल्पना की जाती है, वहाँ लेश अलंकार होता है । चन्द्रमा, हिरन, अमृत, कमल, और कोयल के गुणों में दोष की कल्पना होने से लेश अलंकार है ।

: १५३ :

कत मो गये सों लपटात ।

समुझ मधुकर परत नाहीं मोहि तुम्हरी बात ॥

हेमजोही है न जो सँग रहै दिन परयात ।

कुमुदनी सँग जाहु करके केसरी कौ गात ॥

सेबती संतापदाता तुम्हें सब दिन होत ।

केतकी के अँगसंगी रँग बदलत जोत ॥

हों भई कृस हाड समुझत बिरह पीर पहार ।

मूर के प्रन करत मुझ कौन विविध बिचार ॥७०॥

व्याख्यान — कत = क्यों । मो गये = (१) गये गये, (२) गोगरा नामक पुष्प । हेमजोही (१) गणिका, (२) स्वर्णजुही नामक पुष्प । दिन परयात = दिन के पश्चात् रात । कुमुदिनी (१) बुरी बातों में आनन्द लेने वाली, (२) कमलिन । केसरी = (१) रत्न-चिन्हों से युक्त, (२) पुष्प-रज से युक्त । सेवती (१) सेविका, (२) मफेद गुलाब । संतापदाता = दुःख देने वाली । केतकी = (१) कितनी ही, (२) केतकी नामक पुष्प । कृस = कृश दुर्बल । मुद्रा = (१) आकृति, (२) मुद्रा अलंकार ।

प्रसंग — शृष्ट नायक की भौरे के बहाने में भर्त्सना करनी हुई नायिका कहती है ।

प्रथम अर्थ — (नायक के पक्ष में) तुम मेरे गले में क्यों लिपटते हो ? भौरे के समान हरजोही ! मुझे तुम्हारी यह बात समझ में नहीं आती । (यहाँ स्वर्ण पर लगी आभूषण होने वाली) गणिका नहीं है; जो रात को तुम्हारे साथ रहते । तुम अपने शरीर को रत्न-चिन्हों से युक्त (बनाने के लिए) बुरी बातों में आनन्द लेने वाली (किन्ती अन्य) नारी के साथ जाओ (वही तुम्हें मनोवाञ्छित रम मिलेगा) । (मैं) सेविका तो तुम्हें मदैव दुःखदाई हूँ । तुम कितनी ही नायियों के तन-संगी हो, जिसके कारण (तुम्हारे शरीर की) कांति रंग बदल रही है, अर्थात् तुम निरन्तर दुर्बल होने जा रहे हो । हाय ! मैं तो बिरह की पीड़ा को पहाड़ समझकर दुर्बल हो गई हूँ । सुग्दाम कहते हैं कि कृष्ण भी कैसी विविध प्रकार की आकृति करने हैं । अथवा उग पद में (व्याधि सचारी भाव और) मुद्रा अलंकार हैं ।

द्वितीय अर्थ (मधुकर के पक्ष में) : हे मधुकर ! तुम तो मेरे गले से लिपटते हो । तुम्हारा यह स्वभाव मेरी समझ में नहीं आता । (यहाँ स्वर्णजुही नहीं है, जिसके साथ तुम दिन के पश्चात् भी रह सकते हो । तुम पुष्प-रज से युक्त कुमुदिनी के पाम जाओ । सेवती का पुष्प तो तुम्हारे लिए मदैव दुःखदाई है । तुम केतकी पुष्प के संगी हो जिसके काटे तुम्हारी कांति को कृष्ण बना देते हैं ।

विशेष — उग पद में व्याधि सचारी भाव और मुद्रा अलंकार हैं :

१. व्याधि - रोग या वियोग आदि से जो मानसिक दुःख होता है, उसे व्याधि

संचारी भाव कहते हैं। यहाँ नायक की हरजार्ई-प्रवृत्ति नायिका के कुशगात का कारण होने से उसकी व्याधि की द्योतिका है। अतः व्याधि संचारी भाव है।

२. मुद्रा अलंकार—जहाँ प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त सूचनीय अर्थ भी हो, वहाँ मुद्रा अलंकार होता है। इस पद में भ्रमर-परक अर्थ है अतिरिक्त नायक-परक अर्थ भी सूचनीय है। अतः मुद्रा अलंकार है।

: १५४ :

भई है कहा प्रथम-सी बाल ।

दुतीय-मुर-मिलि-सुता तृती-हित चाहत तोहि गुपाल ॥

चौथ सिंगार पंच कर करि बुध करी रुष्टई चाल ।

सतई तोल आठ सी मारै फिरत नाथ बेहाल ॥

नवमो छोड़ अवर नहि ताकत दस जिन राखौ साल ।

एकादस लै मिलौ बेग ही जानहु नवल रसाल ॥

द्वादस सौ तलफत पिय प्यारो सुरुच सम्भारौ लाल ।

मूर स्यास रतनावल पहिरो हो मडित हित हाल ॥७१॥

शब्दार्थ—प्रथम-सी=मेख-सी दृढ़ (प्रथम राशि मेघ अर्थात् मेख)। दुतीय-मुर-मिलि-सुता=राधा (द्वितीय राशि वृष ; मूर सूर्य जिसे भानु भी कहते हैं, वृष+भानु+सुता=वृषभानुसुता अर्थात् राधा)। तृती-हित=मिलने के लिए (तृतीय राशि मैथुन अर्थात् मिलन)। चौथ=करके (चतुर्थ राशि कर्क अर्थात् करके)। पंच=कटि (पंच राशि सिंह अर्थात् कटि)। बुध=जान-वृक्षकर। सष्टई=कन्या (षष्ठ राशि कन्या)। सतई=बराबर (सप्तम राशि तुला अर्थात् बराबर)। आठ=बिच्छू (अष्टम राशि वृश्चिक अर्थात् बिच्छू)। नवमो=स्त्री (नवम राशि धन, धनि अर्थात् स्त्री)। अवर=दूसरी, अन्य। दस=छल (दशम राशि मकर जिसका अर्थ छल भी होता है)। एकादश=कुच (एकादश राशि कुम्भ, जो कुच का उपमान भी होता है)। रसाल=रसिक। द्वादस=मछली (द्वादश राशि मीन अर्थात् मछली)। सुरुच=सुरुचि, प्रेमपूर्वक। रतनावल=(१) रत्नजटित आभूषण, (२) रत्नावली अलंकार

प्रसंग—मानिनी नायिका (राधा) को उसकी सखी मान-मोचन के लिए प्रेरित करती हुई कह रही है।

अर्थ—हे बाला ! तुम मेख के समान दृढ़ क्यों बनी हुई हो ? अर्थात् तुम्हें इतना गुरु-मान धारण करना उचित नहीं है। हे राधे ! कृष्ण तुमसे मिलना चाहते हैं। हे क्षीण कटि वाली ! शृंगार करके (तुम शीघ्र ही कृष्ण से मिलो)। समझ में नहीं आता कि युवती होते हुए भी तुम क्यों कन्या की रीति अपना रही हो। तुम बराबर बिच्छू का-सा डक मार रही हो, अर्थात् कृष्ण को अपने वियोग में अपार पीड़ा दे रही हो, जिससे कृष्ण बेहाल हुए फिरते हैं। वे (तुम जैसी) स्त्री को छोड़कर अन्य

किसी स्त्री की ओर देखते भी नहीं हैं अतः तुम (उनके साथ) छल करके उन्हें कष्ट मत दो ? तुम (कृष्ण को) नवीन रसिक जानकर अपने कुच (यौवन) लेकर उनसे शीघ्र ही मिलो । तुम्हारा प्रिय कृष्ण (तुम्हारे बिना) मछली की तरह तड़प रहा है, अतः उन्हें प्रेमपूर्वक सँभालो । (अब उचित यही है कि) तुम उनके हित-साधन के लिए रत्न-जटित भूषण धारण करो । अथवा इस पद में रत्नावली अलंकार है ।

रत्नावली अलंकार—जहाँ प्रस्तुत वर्णन में किसी अन्य वस्तु का भी क्रम निकलता हो, वहाँ रत्नावली अलंकार होता है । इस पद में शृंगार-वर्णन के अतिरिक्त पारह गणियों का भी क्रम से उल्लेख हुआ है । अतः रत्नावली अलंकार है ।

: १५५ :

ठाड़ी जलजा-सुत कर लीने ।

दधि-सुत-सुत-बाहन हित सजनी, भख बिचार चित दीने ॥

को जानें किहि कारन प्यारी, सो लख तुरत उड़ानी ।

चपला-औ-बराह-रस-आखर-आदि देख भपटानी ॥

तदगुन देख सबे मिल सजनी, मन हो मन मुसकानी ।

सूर स्याम कों लगी बुलावन आप सयानप मानी ॥७२॥

शब्दार्थ—जलजा-सुत = मोती (जलजा सीपी, उसका सुत मोती) । दधि-सुत-सुत-बाहन = हंस (दधि-सुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उसका बाहन हंस) । हित = लिए । भख = भक्ष्य, खाये जाने वाला । चपला-औ-बराह-रस-आखर आदि = चकोर (चपला, बराह जिसे कोल भी कहते हैं, रस, चपला, कोल और रस के आदि वर्णों से बना चकोर) । तदगुन = (१) उसके गुण, (२) तद्गुण अलंकार । सयानप = चतुर ।

प्रसंग—सखी सखी से नायिका की हथेली की अरुणिमा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ - हे सखि! (नायिका राधा) अपने मन में हंस के भक्ष्य का विचार करके अपने हाथ में (हथेली पर) मोती लिए खड़ी थी । हे प्यारी ! न जाने किस कारण से हंस उसे देखकर तुरत उड़ गया और चकोर उसे देखकर उस पर भपटा (कारण यह था कि स्वच्छ मोती नायिका की हथेली की अरुणिमा से लाल हो गया था, जिसे अगार का टुकड़ा समझकर हंस तो उड़ गया और चकोर उस पर भपट पड़ा) । नायिका (की हथेली) के गुण को देखकर सभी सखियाँ मन ही मन मुस्कराने लगी और वे कृष्ण को चतुर मानकर (वह हास्यपूर्ण हृदय दिखाने के लिए) उन्हें बुलाने लगी । अथवा इस पद में हास्य रस और तद्गुण अलंकार है ।

विशेष—इस पद में हास्य रस और तद्गुण अलंकार है :

१. हास्य रस—विकृत आकार, वाणी, वेश, चेष्टा आदि से जिस आनंद की अनुभूति होती है, उसे हास्यरस कहते हैं । हंस और चकोर की हास्यास्पद चेष्टाओं से हासानुभूति होती है, अतः हास्य रस है ।

२. तद्गुण अलंकार—जहाँ किसी ऐसे पदार्थ का वर्णन हो जो अपना गुण छोड़कर समीपस्थ वस्तु का गुण धारण कर ले, वहाँ तद्गुण अलंकार होता है। यहाँ मोती अपना गुण छोड़कर हथेली का गुण (अरुणिमा) धारण कर लेता है, अतः तद्गुण अलंकार है।

: १५६ :

कूबो कालीदह मैं कान ।

रोवत चली जसोदा मैया, सुनत ग्वाल-मुत्र हान ॥

छूटे दिन दुआर-के-बैरी, लटकत सो न सम्भारै ।

सूरज-सुत-रिपु-सुत जे आदिक गिरत कों न तन धारै ॥

अँग अँग बिरहानल सँग ते, गहरायाम सो भासै ।

बानर-मित्र-वेद-मुत बातें, सुनत रँग परगासै ॥

समुभावत राव पाछिल बातें, तनक न मन में आवै ।

सूर स्याम सुत सुरत-सम्भारत कालीदह कों धावै ॥७३॥

शब्दार्थ—कान = कान्ह, कृष्ण । हान हानि । छूटे बिखर गये । दिन = केश (दिन बार, 'बार' केश को भी कहते हैं) । दुआर के बैरी = वस्त्र (दुआर द्वार, उसके बैरी पट, पट वस्त्र को भी कहते हैं) । सूरज-सुत-रिपु-सुत = बाजूबद (सूरज-सुत सुग्रीव, उसका रिपु वाली, उसका सुत अगद अर्थात् बाजूबद) । बानर-मित्र-वेद सुत = बलराम (बानर-मित्र ऋक्ष अर्थात् नक्षत्र, वेद चार-चौथा नक्षत्र रोहिणी, रोहिणी का सुत बलराम) । रँग परगासै = रंग चमक उठता था । पाछिल = (१) पिछली (२) पूर्वरूप अलंकार । सुरत सम्भारत = याद करती हुई ।

प्रसंग - कृष्ण के कालीदह में कूदने पर यशोदा के विलाप का वर्णन है ।

अर्थ—एक ग्वाल के मुख से यह सुनकर कि कृष्ण कालीदह में कूद गये हैं, उनकी मां यशोदा रोती हुई (कालीदह की ओर) चल दी । (यशोदा के) केश बिखर रहे थे और वस्त्र लटक रहे थे जिन्हें वह सम्भाल नहीं पा रही थी । उनके बाजूबद आदि आभूषण गिर रहे थे जिन्हें वह अपने शरीर पर धारण नहीं कर रही थी । विरह की आग में जलकर उनके अंग-प्रत्यंग अत्यंत काले हुए-से दिखाई दे रहे थे । बलराम की बातें सुनकर उनका रंग चमक उठता था, अर्थात् उन्हें कुछ सांत्वना मिलती थी । (यद्यपि बलराम उन्हें) पिछली मारी बातें समझाते थे, पर उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता था । सूरदास कहते हैं कि अपने पुत्र (कृष्ण) की याद करती हुई (यशोदा) कालीदह की ओर दौड़ रही थीं । अथवा इस पद में (कृष्ण रस और) पूर्वरूप अलंकार है ।

विशेष—इस पद में कृष्ण रस और पूर्वरूप अलंकार है :

१. कृष्ण रस—बन्धु-विनाश, बन्धु-वियोग, द्रव्य नाश आदि के शोक की अनुभूति को कृष्ण रस कहते हैं । यहाँ यशोदा कृष्ण के कालीदह में कूदने से गिरहृदयविना होती हैं, अतः कृष्ण रस है ।

२. पूर्वरूप अलंकार—जहाँ किसी के गए हुए गुण की पूर्ववत् पुनः प्राप्ति का वर्णन होता है, वहाँ पूर्वरूप अलंकार होता है। इस पद में विरहानल से काले हुए यशोदा के अंगों का वलराम की बातों से पुनः कतियुक्त होने का वर्णन होने से पूर्वरूप अलंकार है।

: १५७ :

आज रन कोपौ भीम-कुमार ।

कहत सब समुझाइ सुनो सुत-धरम आदि चित चार ॥

आदि-रसाल-जग्य-फल-के-सुत जे बाँधे अभिमान ।

गूगुन गुन ते-तोह पठावत, ते सब करत न हान ॥

दशन-राज जो महारथी, सो आवत अग्र अनूप ।

सहित सैन सुत सँग सिधारत, सो सब सजे सरूप ॥

तंत-पुत्र की है का गनती, जो सनमुख भट आवै ।

सुमन-लोक लौ अब या बेला भँबर सँग उड़ जावै ॥

बैठे जदपि जुधिष्ठिर सामे सुनत सिखाई बात ।

भयो अतदगुन सूर सरस बड़ बली वीर विख्यात ॥७४॥

शब्दार्थ—भीम-कुमार = घटोत्कच । सुत-धरम = धर्मपुत्र अर्थात् युधिष्ठिर । चित चार = चित चारु, सुंदर मन । रसाल-जग्य-फल-के-सुत = दुर्योधन आदि । (रसाल अम्य, जग्य-फल धर्म, अम्य और धर्म के आदि-वर्णों से बना—अध अर्थात् धृतराष्ट्र, उसके सुत दुर्योधन आदि) । सूरज-सुत-के-लोक = यमलोक (सूरज सूर्य, उसका सुत यम, उसका लोक यमलोक) । हान = हानि । दशन-राज = द्रोणाचार्य (दशन द्विज + राज = द्विजराज अर्थात् द्रोणाचार्य) । अग्र = आगे । तंत-पुत्र = कर्ण (तंत तंतु, तंतु सूत, सूत सारथी, उसका पुत्र कर्ण) । भट = योद्धा । सुमन-लोक = देवलोक । बेला = समय । सामे = सम्मुख, सामने । अतदगुण = (१) गुण को ग्रहण न करना, (२) अनद्गुण अलंकार ।

प्रसंग—घटोत्कच क्रोधित होकर युधिष्ठिर से कह रहा है ।

अर्थ—आज युद्धभूमि में घटोत्कच क्रुद्ध हुआ है वह सुंदर मन वाले युधिष्ठिर आदि सभी को समझाकर कह रहा है कि सुनो, जो दुर्योधन आदि अभिमान से बँधे हुए हैं, मैं उन सबको यमलोक को भेज दूँगा । वे सब मेरी कुछ हानि नहीं कर सकते । विलक्षण गति से आगे आने वाले महारथी द्रोणाचार्य भी अपने पुत्र (अश्वत्थामा) और सुसज्जित सेना-सहित (अभी-अभी) स्वर्गलोक को सिधार जायेंगे । कर्ण की तो गिनती ही क्या है । जो भी योद्धा मेरे सामने (रण में) आवेगा, वह इसी समय (मेरे) बाण के साथ (भ्रमर की भाँति) आकाश में उड़ जायेगा । यद्यपि सामने बैठे हुए युधिष्ठिर ने (उसे ऐसा न करने की) शिक्षा दी, तथापि वह बली उनके इस गुण को ग्रहण न करके भी सरस होने से बढकर विख्यात वीर हुआ । अथवा इस पद में (रौद्ररस और) अतद्गुण अलंकार का कथन है ।

विशेष—इस पद में रौद्र रस और अतद्गुण अलंकार है :

१. रौद्र रस—क्रोध स्थायी भाव के द्वारा जिस अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है, उसे रौद्र रस कहते हैं। इस पद में दुर्योधन आदि शत्रुओं के प्रति घटोत्कच के क्रोधपूर्ण वचनों का कथन होने से रौद्र रस है।

२. अतद्गुण अलंकार—समीपवर्ती वस्तु के गुण का ग्रहण न करने के वर्णन में अतद्गुण अलंकार होता है। इस पद में घटोत्कच द्वारा युधिष्ठिर की शिक्षा को ग्रहण न करने का वर्णन होने से अतद्गुण अलंकार है।

: १५८ :

देखत सजौ पंड-कुमार ।

भयौ सनमुख पितामह, गहि धनुष और सर धार ॥

लगे फरकत अंतरिच्छ, अनूप नीतन रंग ।

रिच्छ फरकत तेरहौ, कत सत्रु कौ सब संग ॥

बित्त तनत कुबेर कौ, पुन भान थान समान ।

तदपि सैनापति निहारत, बढ़ौ धरम प्रमान ॥

चलौ रथ लै जितै आवत, भीम आदिक सूर ।

सूर प्रभु कौ देखि अद्भुत, भयौ है रन रूर ॥७५॥

शब्दार्थ—पंड-कुमार=पांडव । पितामह=भीष्म पितामह । अंतरिच्छ=अधर, ओंठ । नीतन=नेत्र । तेरहौ रिच्छ=तेरहवाँ नक्षत्र हस्त अर्थात् भुजा । बित्त तनत कुबेर कौ=धनुष तानता है (कुबेर का वित्त धन=धनु अर्थात् धनुष) । भान=बाण (भान भानु जिसे 'सारंग' भी कहते हैं और सारंग का अर्थ शिलीमुख अर्थात् बाण भी होता है) । थान=संधान करना । समान=सम, सीधा । सैनापति=पांडवों का सेनापति शिखंडी । रन=(१) रण, (२) वीर रस । रूर==श्रेष्ठ ।

प्रसंग—भीष्म पितामह की वीरता का वर्णन है ।

अर्थ—पांडवों को (अस्त्र शस्त्रों से) सजा हुआ देखकर भीष्म पितामह धनुष और बाण धारण करके (उनके) सामने आये । (उन्हें देखकर भीष्म पितामह के) ओंठ फड़कने लगे, नेत्रों का अनुपम (अर्थात् लाल) रंग हो गया । उनकी भुजाएँ भी फड़कने लगीं (और वे आतुर होकर सोचने लगे कि न जाने) कब शत्रु का सामना होगा । उन्होंने (अपने) धनुष को ताना, उस पर बाण का सीधा संधान किया, पर शिखंडी को देखते ही (उनके मन में) धर्म की प्रामाणिकता बढ़ गई; अर्थात् शिखंडी पर बाण प्रहार न करना उन्होंने अपना धर्म समझा और (वे वहाँ से हटकर) अपने रथ को उसी दिशा में लेकर चल दिये जिधर से भीम आदि शूर-वीर आ रहे थे । सूरदास कहते हैं कि उस श्रेष्ठ युद्ध में कृष्ण को देखकर भीष्म की विचित्र दशा हो गई । अथवा इस पद में वीर रस (और अनुगुण अलंकार) है ।

विशेष—इस पद में वीर रस और अनुगुण अलंकार है :

१. वीर रस—उत्साह स्थायी भाव से पुष्ट आनदानुभूति को वीर रस कहते हैं। इस पद में भीष्म पितामह के उत्साह का वर्णन होने से वीर रस है।

२. अनुगुण अलंकार—दूसरे के सामीप्य के कारण अपने स्वाभाविक गुण के उत्कर्ष होने के वर्णन में अनुगुण अलंकार होता है। इस पद में शत्रुओं को देखकर भीष्म के वीर-गुण के उत्कर्ष का वर्णन है। अतः अनुगुण अलंकार है।

: १५६ :

सुन सुन नंदनंदन की रीत ।

भूपत कंस परौ धरनी-तल, छाँड़ि आपनी नीत ॥

द्वार धार नीतन तैं डारत, हारत सब सुख हेर ।

बार बार भाँकत जल अपनी, सोवत भभक्त फेर ॥

रबि-पंचम फल होत नहीं थिर, थकित भयो सब गात ।

धवल बसन मिल रहे अँग मैं, सूर न जानौ जात ॥७६॥

शब्दार्थ—नंदनंदन=कृष्ण। रीत=रीति। भूपत=भूपति, राजा। धरनी-तल=पृथ्वी पर। नीत=नीति अर्थात् अहंकार एवं क्रूरता। द्वार=आँसू (द्वार बार, बारि जल अर्थात् आँसू)। नीतन तैं=आँखों से। हेर=देखो। जल=द्वार (जल बारि, बार द्वार)। भभक्त=चौक पड़ता है। रबि-पंचम=प्राण (रवि से पाँचवाँ ग्रह बृहस्पति जिसे 'जीव' भी कहते हैं और जीव का अर्थ प्राण भी होता है)। फल=पल, पल-भर के लिए। थिर=स्थिर। थकित=शिथिल। धवल बसन=श्वेत वस्त्र। मिल रहे=(१) मिलना, (२) मीलित अलंकार।

प्रसंग—कृष्ण से भयभीत कंस की जो दशा हो गई है, उसका वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—(हे सखि !) कृष्ण की रीति तो सुनो (जिसके कारण) राजा कंस अपनी नीति (अहंकार एवं क्रूरता) छोड़कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ है। वह अपनी आँखों से आँसुओं की धारा छोड़ रहा है। देखो, वह अपने सारे सुखों को हार गया है; अर्थात् उसने अपने सब सुख छोड़ दिये हैं। वह (कृष्ण के आगमन की आशंका से) बार-बार अपना द्वार देखता है और सोते-सोते चौक पड़ता है। (भय के कारण) उसके प्राण पल-भर के लिए भी स्थिर नहीं होते हैं। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया है। (भय के कारण वह इतना सफेद पड़ गया है कि) उसके श्वेत वस्त्र उसके शरीर की सफेदी से ऐसे मिल गये हैं कि (अलग से) पहिचाने भी नहीं जाते। अथवा इस पद में (भयानक रस और) मीलित अलंकार है।

विशेष—इस पद में भयानक रस और मीलित अलंकार है :

१. भयानक रस—भय स्थायी भाव से पुष्ट भाव को भयानक रस कहते हैं। यहाँ कृष्ण के कारण भयभीत कंस की दशा का वर्णन होने से भयानक रस है।

२. मीलित अलंकार—जहाँ सादृश्य के कारण दो वस्तुएँ मिलकर इतनी एकाकार हो जाती है कि उन्हें पहिचानना भी कठिन होता है, वहाँ मीलित अलंकार होता है। यहाँ कस के गात और उसके सफेद वस्त्रों के एकाकार होने से मीलित अलंकार है।

: १६० :

जोर-उतपल-आदि उर तें, निकस आयौ कान ।

बीच-निस-कौ-आदि अंगन, लगौ लेप समान ॥

वेदपाठी-द्रगन-सोई-रीत के बहु छोट ।

रहे बिच बिच समुझ मोकों, पर नाहीं डीठ ॥

बाँसुरी ते जान मोकों, परौ ना सुत सोइ ।

सूर उन्मीलित निहारौ, कहैं का मति भोइ ॥७७॥

शब्दार्थ—जोर-उतपल-आदि=वकासुर (जोर बल, उत्पल कमल; बल और कमल के आदि-शब्दों को जोड़ने से बना वक अर्थात् वकासुर)। कान=कान्ह, कृष्ण। बीच-निस-कौ-आदि=मज्जा (बीच मध्य; निस यामिनी जामिनी; मध्य और जामिनी के आदि-वर्णों को जोड़ने से बना मजा अर्थात् मज्जा)। वेदपाठी-द्रगन-सोई-रीत=रुधिर (वेदपाठी श्रोत्रिय; द्रगन दृगन; श्रोत्रिय और दृगन शब्दों के उसी रीति से अर्थात् आदि-वर्णों को मिलाने से श्रोन शब्द बना; श्रोन श्रोण रुधिर)। उन्मीलित= (१) प्रत्यक्ष, (२) उन्मीलित अलंकार। मति भोइ=भोली बुद्धि।

प्रसंग—कृष्ण का वकासुर के पेट से निकलने का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—(हे सखि ! जय) कृष्ण वकासुर के पेट से बाहर निकल आये तो उनके अंगों पर लेप के समान (वकासुर की) मज्जा लगी हुई थी और बीच-बीच में रुधिर के बहुत-सारे छीटे लगे हुए थे (इस कारण से) मैं उन्हें अच्छी प्रकार न तो देख सकी और न पहिचान सकी। लेकिन उनकी बाँसुरी से ही मैं समझ पाई कि वे वकासुर के पुत्र नहीं हैं (वल्कि कृष्ण हैं) सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार की) भोली बुद्धि वाली (गोपियों के विषय में) क्या कहा जाये (जिन्होंने कृष्ण को) प्रत्यक्ष देखा था। अथवा इस पद में (बीभत्स रस और) उन्मीलित अलंकार है :

विशेष इस पद में बीभत्स रस और उन्मीलित अलंकार है।

१. बीभत्स रस -- रुधिर, आँत, मज्जा आदि के देखने से जो ग्लानि होती है, उससे बीभत्स रस की अनुभूति होती है। इस पद में मज्जा और रुधिर जैसे धृणाजनक पदार्थों का वर्णन होने से बीभत्स रस है।

२. उन्मीलित अलंकार—सादृश्य होने पर भी कारण-विशेष से भेद की प्रतीति में उन्मीलित अलंकार होता है। यहाँ कृष्ण और वकासुर-सुत की भेद प्रतीति का कारण बाँसुरी है। अतः उन्मीलित अलंकार है।

: १६१ :

आज नंदनंदन सजनी देख ।

कीनो दधि-सुत-सुत तैं सजनी, सुन्दर स्याम सु भेल ॥

सारंग-पलट पलट-छब दोई, लै गौ आप चुगइ ।

सोई सब के घर घर आए, जस के तस सुख पाइ ॥

को यह कोतुक करै और, सुन समझ आप निज बात ।

सूरदास सामान्य करन को, ए ही बलित लखात ॥७६॥

शब्दार्थ—दधि-सुत-सुत = ब्रह्मा (उदधि-सुत कमल, उमका सुत ब्रह्मा) । सारंग-पलट = बालक (सारंग लवा पक्षी, लवा का उलटा बाल अर्थात् बालक) । पलट-छब = बछड़ा (छब का उलटा बछ अर्थात् बछड़ा) । सामान्य (१) साधारण, (२) सामान्य अलंकार । बलित = बल खाये हुए अर्थात् त्रिभगी ।

प्रसंग—ब्रह्मा ने जब ब्रज के बालकों एवं बछड़ों का हृण कर लिया था तो उन्हें कृष्ण ने ही मुक्त किया था । कृष्ण की डगी महिमा का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—हे सखि ! आज कृष्ण के उस रूप को तो देख जो उमने ब्रह्मा के साथ बनाया था । (जब ब्रह्मा ब्रज के) बालको और बछड़ो को स्वयं चुगकर ले गया (तो कृष्ण की कृपा से ही) वे सब के सब कुशलपूर्वक मुग्य में अपने-अपने घर लौट-कर आये थे । और सुन, तथा स्वयं इस बात को समझ कि (कृष्ण के बिना) यह कोतुकपूर्ण कार्य और कौन कर सकता है । सूरदास कहते हैं कि अपनी बात को साधारण करने के लिए ही त्रिभगी ने (कृष्ण ने उन बालक और बछड़ो को) ऐसा ही दिखाया था । अथवा इस पद में (अद्भुत रस और) सामान्य अलंकार है ।

विशेष—इस पद में अद्भुत रस और सामान्य अलंकार हैं :

१. अद्भुत रस—आश्चर्यजनक तथा विचित्र वस्तुओं के देखने अथवा सुनने से जिस भाव की अनुभूति होती है, उसे अद्भुत रस कहते हैं । यहाँ ब्रह्मा के द्वारा चुराये गये बालको और बछड़ों को कृष्ण द्वारा छुड़ाने का आश्चर्यजनक वर्णन होने से अद्भुत अलंकार है ।

२. सामान्य अलंकार—प्रस्तुत की अप्रस्तुत के साथ गुण की समता कहने की इच्छा से एकात्मक वर्णन में सामान्य अलंकार होता है । इस पद में प्रस्तुत और अप्रस्तुत बालक-बछड़े हैं जिन्हें ब्रह्मा द्वारा चुराये जाने और कृष्ण द्वारा कुशल-पूर्वक लौटाये जाने के वर्णन से ब्रह्मा और कृष्ण के समान गुणों का बोध होने से सामान्य अलंकार है ।

: १६२ :

जसुमत आज बैठ के आंगन, अपनौ लाल खिलावै ।

चूम चूम भुल चपल चित करि, आनन आप मिलावै ॥

सारंग-सुत-प्रीतम-सुत-रिपु-रिपु-रिपु माल बनावें ।

पिङ्ग-प्रधान-भूमि-पति-सुत-गुरु-भाषित सरस सुनावें ॥

भूपन-पति-भल्ल-जा-पति-बाहन-हित बिचार चित गावें ।

धन-हर-हित-रिपु-सुत सुख पूरन नैनन मद्ध लगावें ॥

लालन कर-उतपल के कारन साँभ समै चित चावें ।

सूरज करत बिसेष अलंकृत, सब सुख सान तुलावें ॥७६॥

शब्दार्थ—सारंग-सुत-प्रीतम-सुत-रिपु-रिपु-रिपु=पुष्प (सारंग समुद्र, उसका सुत कमल, उसका प्रियतम सूर्य, उसका सुत सुग्रीव, उसका रिपु बलि, उसका रिपु राम, उसका रिपु रावण, उसके रिपु देव जिन्हें सुमन भी कहते हैं और सुमन का अर्थ पुष्प भी होता है) । पिङ्ग-प्रधान-भूमि-पति-सुत-गुरु-भाषित=राम-कथा (पिङ्ग-प्रधान भूमि पिङ्गोदक के लिये प्रसिद्ध भूमि अर्थात् गया, उसका पति विष्णु अर्थात् राम, उनके सुत लव-कुश, उनके गुरु वाल्मीकि, उनकी भाषित रचना रामायण अर्थात् राम-कथा) । भूपन-पति-भल्ल-जा-पति-बाहन-हित : राग (भूपण मुद्रा अर्थात् लोपामुद्रा, उसका पति अगस्त्य, उसका भक्ष्य सागर, उसकी जा कुमुदिनी, उसका पति चन्द्रमा, उसका वाहन मृग, उसका प्रिय राग) । धन-हर-हित-रिपु-सुत = काजल (धनहर चोर, उसका हित्वा अंधकार, उसका रिपु दीपक, उसका सुत काजल) । कर-उतपल = कर-कमल । बिसेष अलंकृत = (१) विशेष रूप से सजाकर, (२) विशेषक अलंकार ।

प्रसंग—यशोदा के वात्सल्य भाव का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज यशोदा आँगन में बैठकर अपने पुत्र (कृष्ण) को खिला रही थी । वह उसका मुख बार-बार चूमकर तथा चंचल चित्त होकर अपना मुख कृष्ण के मुख से मिलाती थी । (कृष्ण के लिये) वह पुष्पों की माला बना रही थी तथा उसे सरस राम-कथा सुना रही थी । अपने मन में राग का विचार करके गा रही थी । (वह कृष्ण की आँखों में सुखपूर्वक काजल लगाती थी । संध्या-समय ही वह चावभरी इच्छा से कृष्ण के कर-कमल को समझ पाती थी; भाव यह है कि संध्या-समय कमल के बंद हो जाने पर ही वह कृष्ण के कर-कमल की विशेषता समझ पाती थी, क्योंकि वे तो उस समय भी खुले (चंचल) रहते थे । (इस प्रकार यशोदा कृष्ण को) विशेष रूप से सजाकर सब प्रकार से सुख और शांति प्राप्त करती थी । अथवा इस पद में (वात्सल्य रस और) विशेषक अलंकार है ।

विशेष—इस पद में वात्सल्य रस और विशेषक अलंकार है :

१. वात्सल्य रस—वात्सल्य भाव से पुष्ट भाव को वात्सल्य रस कहते हैं । रस पद में यशोदा का वात्सल्य भाव वर्णित होने से वात्सल्य रस है ।

२. विशेषक अलंकार—जहाँ प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में गुणों की सदृशता होने पर भी किसी कारण से विशेषता का स्फुरण हो तो वहाँ विशेषक अलंकार होता है । इस पद में कृष्ण के हाथ और कमल में गुण-सादृश्य होने पर कृष्ण के हाथों की यह

विशेषता स्फुरित हुई है कि वे सन्ध्या के समय भी खुले रहते हैं। अतः विशेषक अलंकार है।

: १६३ :

आज गिर-पूजन ग्वाल चले।

लै लै सिंधु सम्भु-सुत-अति-प्रिय, पावन माँट भरे ॥

नगर-नीक-औ-काम-बीच तें, गो-ग्रह-अंत भरे।

निकट-बास-परबस-दाड़िम-जुत-सोई-रीत धरे ॥

नाचत गावत बाजन बाजत, जाचत पुन्न प्रभाव।

नंद आवि सँग अति सुख पावत, भावत सो जिहि लाव ॥

गूढोत्तर अस कहत ग्वालिनो, मोहि गेह रखवारी।

राख गये सुन सूर स्याम मन बिहँसि रहे गिरधारी ॥८०॥

शब्दार्थ—गिर-पूजन=गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने के लिये। सिन्धु=उदधि अर्थात् दही। सम्भु-सुत-प्रति-प्रिय=सम्भु-सुत गणेश, उनके अत्यन्त प्रिय पदार्थ दूब और लड्डू। पावन माँट=पवित्र घड़े। नगर-नीक-औ-काम-बीच=हल्दी (नगर शहर; नीक सरस; काम मदन; इन तीनों शब्दों के बीच के अक्षर लेने से बना हरद अर्थात् हल्दी)। गो-ग्रह-अत=थाल (गो-ग्रह बथान; अन्त मरण; बथान और मरण के बीच के अक्षरों से बना थार अर्थात् थाल)। निकट-बास-परबत-दाड़िम-जुत-सोई-रीत=रोली, कुंकुम (निकट-बास परोस; परबत अचल; दाड़िम अनार; जुत मिलाकर; परोस, अचल और अनार के शब्दों के उसी रीति से अर्थात् बीच के अक्षर मिलाने से 'रोचना' शब्द बना जिसका अर्थ है रोली या कुंकुम)। गूढोत्तर=(१) रहस्यमय उत्तर, (२) गूढोत्तर अलंकार। गेह=गृह, घर।

प्रसंग—ब्रजवासियों की गोवर्द्धन पूजा का वर्णन है। सखी सखी से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि!) आज (ब्रज के) ग्वाल दही, दूब, लड्डू तथा हल्दी से भरे हुए थाल एवं कुंकुम ले-लेकर गोवर्द्धन पर्वत की पूजा करने के लिए चले। वे नाचते हुए, गाने और बाजे बजाते हुए, पुण्य-प्रभाव की याचना करते हुए तथा नन्द आदि के साथ में अत्यन्त सुख प्राप्त करते हुए चले। जो जिस वस्तु को लाता था, उसे ही (सब) पसंद करते थे। (एक ग्वालिनो पूजा के लिए नहीं गई। उसे अकेली घर में देखकर कृष्ण ने पूछा कि तुम पूजा के लिए क्यों नहीं गईं?) तब ग्वालिनो ने यह रहस्यमय उत्तर दिया कि मुझे (मेरे घरवाले) घर की देख-भाल के लिए छोड़ गये हैं। उसके इस गूढ़ उत्तर को सुनकर कृष्ण मन ही मन मुस्कराने लगे। अथवा इस पद में (भक्ति-रस और) गूढोत्तर अलंकार है।

विशेष—इस पद में भक्ति-रस और गूढोत्तर अलंकार है :

१. भक्ति-रस—देव या भगवद्-विषयक रस को भक्ति-रस कहते हैं इस पद में

ब्रजवासी ग्वाल-बाली की गोवर्द्धन पर्वत के प्रति श्रद्धा एवं अलौकिक रति-भाव व्यक्त होने से भक्ति-रस है ।

गूढ़ोत्तर अलंकार—जहाँ किसी प्रश्न का गूढ़ अथवा साभिप्राय उत्तर हो, वहाँ गूढ़ोत्तर अलंकार होता है । इस पद में वर्णित ग्वालिन की उत्तर का गूढार्थ यह है कि वह घर में बिल्कुल अकेली है और उसके साथ निर्भय होकर रति-क्रीड़ा की जा सकती है । अतः गूढ़ोत्तर अलंकार है ।

: १६४ :

बिप्र जू, पावन पुन्य हमारे ।

जो जजमान जानिकं मो कहें, आपु इहाँ पगु धारे ॥

एक बार जो प्रथम सुनाई, लगन कुंडली सोई ।

पुनहीं मोहि सुनावहु, सुन कर कहन लगे सुख भोई ॥

संवत-मास-षष्ठ बसु-तिथि है, रवि ते चौथी बार ।

पुन-पच्छ औ बेद-नखत है, हरषन जोग उदार ॥

दुती-लगन में है सिब-भूषन, सो तन कों सुखकारी ।

केहरि-बेद-रास-त्रै-मूरत, सेस भार सब लैहै ॥

बान ससी-सुत है पुत्री के, मदन बहुत उपजैहै ।

शास्त्र मुक्त तुल-के-रवि-सुत ते बैरी हरता जोग ॥

मुनि बसु तिय बस करै, भूमि-सुत भाग-भवन में भोग ।

लाभ थान पंचमी कामधुज ग्रह निधि ग्रह में आई ॥

मान लेहु मन अपने भू सब हरौ भार इन भाई ।

बान वर्ष में कब देखेंगे कही तिहारी पूरी ॥

सूरदास दोउ परे पाइ तर भूषन चित्र समूरी ॥८१॥

शब्दार्थ—पगु धारे=पदार्पण किया है, पधारे है । सुख-भोई=सुख-विभोर होकर । संवत-मास-षष्ठ=संवत के आरम्भ होने से छठा मास अर्थात् भाद्रपद । बसु-तिथि=बसु आठ, आठवीं तिथि अर्थात् अष्टमी । रवि ते चौथी बार=रविवार से चौथा दिन अर्थात् बुधवार । पुन-पच्छ=पुण्य-पक्ष, कृष्ण-पक्ष । बेद-नखत=वेद चार, चौथा नक्षत्र अर्थात् रोहिणी नक्षत्र । हरषन जोग=हर्षण योग । दुती-लगन=द्वितीय लगन अर्थात् वृष लगन । सिब-भूषन=शिव का भूषण अर्थात् चन्द्रमा । केहरि-बेद-रास-त्रै-मूरत=चौथे स्थान में सिंह राशि का सूर्य है (केहरि सिंह, वेद चार, रास राशि, त्रै-मूरत तीनों लोकों को प्रभावित करने वाला अर्थात् सूर्य) । सेस-भार=शेषनाग का भार अर्थात् पृथ्वी । बान=बाण, पाँच । ससी-सुत=बुध । मदन=पुत्र (क्योंकि कामदेव को आत्म-भू भी कहते हैं और आत्म-भू का अर्थ पुत्र भी होता है) । शास्त्र छ (क्योंकि शास्त्र छः है) । मुक्त=मुक्त । तुल-के-रवि-सुत=तुला राशि का शनि (तुल तुला-राशि, रवि-सुत शनि) । मुनि=सात (क्योंकि मुनियों की संख्या सात मानी

गई है) । बसु = आठवाँ ग्रह अर्थात् राहु (बसुओं की संख्या आठ मानी जानी है) । भूमि-सुत = मंगल । थान = स्थान । पचयी = पाँचवाँ वार अर्थात् बृहस्पति । कामधुज = कामदेव की ध्वजा अर्थात् मीन । ग्रह = नौ (ग्रहों की संख्या नौ है) । निधि = नौ निधियाँ । वान = (१) वानक या संयोग, (२) वाण अर्थात् पाँच । भूपन चित्र = (१) विचित्र शोभा, (२) चित्रोत्तर अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण की जन्म-कुंडली का वर्णन पुरोहित नन्द से कर रहे हैं ।

अर्थ—(पुरोहित का आगमन देखकर नन्द ने आभारी बनकर कहा कि) हे विप्र जी ! हमारे पुण्य पवित्र हो गये जो हमें अपना यजमान मानकर आपने यहाँ (हमारे घर) पदार्पण किया है । (कृष्ण की) लग्न-कुंडली, जो एक वार आपने पहिले भी सुनाई थी, उसे फिर से सुना दीजिए । यह सुनकर पुरोहित मुख-विभोर होकर (लग्न-कुंडली) सुनाने लगा—भाद्रपद मास है, अष्टमी तिथि है, बुधवार है, कृष्ण-पक्ष है, रोहिणी नक्षत्र है और उदार हर्षण योग है । वृष लग्न में चन्द्रमा है जो इनके शारीरिक सुखों के लिए सुखदाई है । चौथे स्थान में सिंह राशि का सूर्य है जिसमें ये समस्त पृथ्वी को प्राप्त करेंगे । पाँचवें स्थान में कन्या राशि का बुध है, जिसमें ये अनेक पुत्रों के पिता होंगे । छठे स्थान में शुक्र और तुला राशि का शनि है, जिससे इनके बैरियों के नाश का योग है । सातवें स्थान में राहु है, जिसमें ये सभी स्त्रियों को अपने वशीभूत कर सकेंगे । भाग्य-भवन में मंगल ग्रह होने के कारण वे ऐश्वर्य का पूर्ण उपभोग करेंगे । लाभ के स्थान में मीन-राशि का बृहस्पति है, जिससे इनके घर में नवों निधियाँ आयेगी अतः यह समझ लो कि इन्होंने पृथ्वी का सारा भार हरण कर लिया । (कृष्ण की लग्न-कुंडली सुनकर नन्द ने प्रश्न किया कि हे पुरोहित ! यह बताओ कि) आपके बताये हुए संयोग को हम किस वर्ष में पूरा होने देखेंगे ? (पुरोहित ने उत्तर दिया) पाँच वर्ष में । सूरदास कहते हैं कि (कृष्ण की ऐसी अद्भुत लग्न-कुंडली को सुनकर नन्द और यशोदा) दोनों विचित्र शोभा से सम्पन्न होकर (विप्र के) चरणों में गिर पड़े । अथवा इस पद में (गुरु-विषयक रति-भाव और) चित्रोत्तर अलंकार है ।

विशेष—इस पद में गुरु-विषयक रति-भाव और चित्रोत्तर अलंकार है :

१. गुरु विषयक रति-भाव—पूजनीय व्यक्तियों के प्रति पूज्य भाव को गुरु-विषयक रति-भाव कहते हैं । यहाँ विप्र के प्रति नन्द और यशोदा का पूज्य भाव वर्णित होने से गुरु-विषयक रति-भाव है ।

२. चित्रोत्तर अलंकार—जहाँ प्रश्न में ही उत्तर छिपा रहता है, वहाँ चित्रोत्तर अलंकार होता है । यहाँ प्रश्न के शब्द हैं—‘वान वर्ष में कब देखोगे ?’ और इन्हीं में उत्तर निहित है—‘वान वर्ष में अर्थात् पाँच वर्ष में ।’ अतः चित्रोत्तर अलंकार है ।

: १६५ :

आवत ही बृषभाननंदिनी, आजु सखी के संग ।

ग्रह-अष्टम में मिलौ नंदसुत, अंग अनंग उमंग ॥

करी छुवाइ दयो माथे उन, इन लख सो पुनि कीनौ ।

कुंती-सुत-पितु सनमुख घर कर लाइ हिए मैं लीनौ ॥

सूक्ष्म तै दुइ भाव एक कर ह्वै रही बाल अधीर ।

सूर स्याम देखत अनदेखत बनत न नैको बीर ॥८२॥

शब्दार्थ—ग्रह-अष्टम=मार्ग (आठवाँ ग्रह राहु अर्थात् राह या मार्ग) । नंद-सुत=कृष्ण । अनग=कामदेव । करी=कमल (करी हाथी जिसे पुंढरीक भी कहते हैं और पुंढरीक का अर्थ कमल भी होता है) । कुंती-सुत-पितु=सूर्य (कुंती का सुत कर्ण, उसका पिता सूर्य) । घर-दर्पण (घर अयन, आइना अर्थात् दर्पण) । सूक्ष्म= (१) सक्षेप, (२) सूक्ष्म अलंकार । नैको=एक भी ।

प्रसंग—राधा अपनी सखियों के साथ जा रही थी कि मार्ग में उसे कृष्ण मिल गये । दोनों ने सकेतों से अपने मिलन का समय निश्चित कर लिया । इसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज राधा अपनी सखियों के साथ आ रही थी कि मार्ग में (अचानक) कृष्ण मिल गया, जिसके अंगों में कामदेव की उमंग भरी हुई थी । उसने (कृष्ण ने राधा को देखकर) अपने सिर से कमल छुवाया (तो) इन्होंने भी (राधा ने भी) प्रत्युत्तर में ऐसा ही किया अर्थात् अपने सिर से कमल छुवाया । कहने का भाव यह है कि कमल के बहाने से कृष्ण ने राधा के चरणों का स्पर्श किया तो उत्तर में राधा ने भी ऐसा ही किया । (तत्पश्चात् राधा ने) सूर्य के सामने दर्पण करके उसे अपने हृदय से लगा लिया; अर्थात् सकेत से यह बताया कि मैं तुम्हें हृदय से चाहती हूँ और सूर्यास्त होने पर मुझसे मिलना । (इस प्रकार) सक्षेप में अपने दोनों भावों को एक साथ अनुभव करके वह बाला (राधा) अधीर हो रही है क्योंकि कृष्ण को देखने या न देखने में से एक भी कार्य उससे न हो सका । भाव यह है कि वह न तो कृष्ण को लज्जा के कारण देख ही सकी और न प्रेम के कारण विमुख ही हो सकी । अथवा इस पद में भाव-सन्धि तथा सूक्ष्म अलंकार है ।

विशेष—इस पद में भाव-सन्धि तथा सूक्ष्म अलंकार है :

१. भाव सन्धि—जहाँ समान चमत्कार से युक्त दो भावों की उपस्थिति का एक ही साथ वर्णन होता है, वहाँ भाव-सन्धि होती है । यहाँ 'देखत अनदेखत बनत न' में लज्जा तथा प्रेम इन दो भावों का एक साथ वर्णन होने से भाव-सन्धि है ।

२. सूक्ष्म अलंकार—किसी इगित या आकार से जाने हुए रहस्य को या अभीष्टार्थ को किसी युक्ति से सूचित किये जाने को सूक्ष्म अलंकार कहते हैं । इस पद में कृष्ण और राधा ने अपना अभीष्ट अर्थ सकेतों से व्यक्त किया है, अतः सूक्ष्म अलंकार है ।

: १६६ :

हरि की अततिच्छ जब देखौ ।

दिग्गज सहित अनूप राधिका, उर तन धीरज लेखौ ॥

बहुत श्रेय पुन कुंत-अग्र मैं, नीतन सों रँग सारौ ।
 रेसम-छद उर मूरख-माला, पीछन पीठ सम्भारौ ॥
 मासन मैं सिंगार रस सोभित, तन मन जुक्त बनाई ।
 लै निषेद-दरस निज कर तें, सनमुख बियौ दिखाई ॥
 मुच्छ बसन नय-उर-के-रस मैं, मिले लाल मुख पोंछौ ।
 सूर स्याम तन बितं फेर मुख, पिहित भाव बल मोछौ ॥८३॥

शब्दार्थ—हरि=कृष्ण । अंतरिच्छ=अधर । दिग्गज-महिन=कालिमायुक्त (दिग्गज हाथी, हाथी का रंग काला होता है, अतः दिग्गज का अर्थ हुआ—कालिमा) श्रेय=महावर (श्रेय मंगल, मंगल का रंग लाल माना गया है और यहाँ लाल का अर्थ महावर है) । कुंत-अग्र=मस्तक का अग्रभाग (कुंत भाला अर्थात् भाल मस्तक) नीतन=नेत्र । रँग सारौ=लाल (सार उत्तम रंग अर्थात् लाल रंग) । रेसम-छद=नख-क्षत । मूरख माला=डोरीहीन माला (मूरख को निर्गुण कहते हैं और निर्गुण का अर्थ डोरीहीन भी होता है) । पीछन=पीछे की ओर । मासन मैं=पलकों में । सिंगार रस=लाल रंग अर्थात् लाली । जुक्त=युक्ति । निषेद दरस=दर्पण (निषेद निषेध=अ, अ+दरस=अदरस, आदर्श=दर्पण) । मुच्छ बसन=साफ वस्त्र । नय-उर-के-रस=कीचड़ (नय नदी, उसके हृदय का रस अर्थात् कीचड़) । तन=ओर । पिहित=(१) छिपा हुआ, (२) पिहित अलंकार । भाव-बल -- (१) युक्ति से, (२) भाव-शबलता । मोछौ=मोक्ष किया, प्रकट किया ।

प्रसंग—नायक अन्यत्र रमण करके जब प्रातः घर लौटा तो नायिका ने रति-चिह्नों को देखकर वस्तुस्थिति जान ली । इस पद में उसी खडिता नायिका की मनो-दशा तथा चतुराई का वर्णन किया गया है । सखी सखी ने कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) जब राधा ने कृष्ण के अधरों को अद्भुत कालिमा से युक्त देखा; अर्थात् पर-स्त्री के साथ रमण का रहस्य जान लिया, तब भी वह अपने हृदय में धैर्य धारण किये रही । मस्तक के अग्रभाग में बहुत-सा महावर, (रात्रि में जागरण करने के कारण) नेत्रों में लाली, हृदय पर नख-क्षत तथा डोरीहीन माला (प्रगाढ़ आलिंगन के कारण नायक के हृदय पर नायिका की वेणी के चिह्न) देखकर फिर उसने पीठ के पीछे की ओर देखा (तो पाया कि नायक की पीठ पर नायिका के वलयों के चिह्न उभरे हुए थे) और उसकी पलकों पर (चुम्बन के कारण नायिका के अधरों की) लाली शोभायमान होती देखी । तब उसने अपने मन में एक युक्ति सोची । उसने अपने हाथ में दर्पण लेकर नायक के मुँह के आगे करके उसे दिखाया (और कहा कि) हे लाल ! अपने मुँह पर लगी हुई कीचड़ को साफ कपड़े से पोछ डालो । सूरदास कहते हैं कि (फिर राधा ने) कृष्ण की ओर से अपना मुख फिर लिया । (इस तरह उसने) अपने मन के छिपे हुए भाव को (अपने क्रोध को) युक्ति से प्रकट कर दिया । अथवा इस पद में पिहित अलंकार और भावशबलता का वर्णन है ।

विशेष—इस पद में भावशबलता और पिहित अलंकार है :

१. **भावशबलता**—जहाँ एक के पश्चात् तीसरा इस प्रकार अनेक भाव एक ही स्थान पर एकत्र हो गये हों, वहाँ भावशबलता होती है। यहाँ धृति, अमर्ष, आलस्य आदि अनेक भावों का एक ही स्थान पर सम्मेलन है, अतः भावशबलता है।

२. **पिहित**—जहाँ एक अधिकरण में रहने वाला गुण अपनी प्रबलता से आविर्भूतअसमान अर्थात् को आच्छादित कर लेता है, वहाँ पिहित अलंकार होता है। यहाँ नायिका के धैर्य आदि गुण कोप से आच्छादित है, अतः पिहित अलंकार है।

: १६७ :

यह सामरी सखी मेरे हित, चक्रवाक पड़ि आई।

जस माता सुच सील जानकै, सिखवन हेत पठाई।

जानत है बुधवंत बेद-बसु, तस न कहूँ सुन पैंहै।

या संग रहत सदा सुच सजनी, सब सुख सोभा पैंहै ॥

चेली करत मोहि कहि लीनी, अबर न कर हों चेली।

तुम गुरु होहु और जो सीखै, तिनकोँ समुझ सहेली ॥

का सतरात अली बतरावत, इत उत नैन नचावै।

सूरदास तज व्याज उक्त सब, मोसों कौन चेतावै ॥८४॥

शब्दार्थ—सामरी=श्यामा, सखी के वेश में कृष्ण। मेरे हित=मेरे लिए। चक्रवाक=कोकशास्त्र (चक्रवाक कोक पक्षी)। जस माता=कीर्ति माता, राधा की माँ कीर्ति। सुच=शुचि, पवित्र। सिखवन हेत=शिक्षा देने के लिए। बुधवन=विदुषी। बेद-बसु=चौरासी आसन (बेद चार, बसु आठ; उल्टे अंक रखने से चौरासी आसन)। अबर=अपर, दूसरी। सतरात=इठलाती है। व्याज उक्त=(१) छलपूर्ण बातें। (२) व्याजोक्ति अलंकार।

प्रसंग—सखी का वेश धारण करके कृष्ण राधा के पास गये। उसी का वर्णन वह अपनी सखी से कर रही है।

अर्थ—(हे सखि !) वह श्यामा सखी मेरे ही लिए कोकशास्त्र पढ़कर आई थी। मेरी माता कीर्ति ने उसे पवित्र और शीलवती जानकर मुझे शिक्षा देने के लिए भेजा था। उस विदुषी को चौरासी आसनों का जितना ज्ञान है, वैसा ज्ञान कहीं भी सुनने में नहीं आता। हे सखि ! इस (श्यामा सखी) के साथ सदैव पवित्रता रहती है और सब सुख एवं शोभा की प्राप्ति होती है। उसने मुझे शिष्या बनाते समय यह कह दिया था कि वह और किसी दूसरी को शिष्या नहीं बनायेगी, अतः और जो युवतियाँ इन चौरासी आसनों को सीखना चाहेंगी, उनकी मैं गुरु बनकर उन्हें वे आसन सिखाऊँ और उनको अपनी सहेली ही समझूँ। (यह सुनकर राधा की सखी कहती है कि) हे सखि ! तू बातें करते हुए इतनी क्यों इठलाती है और इधर-उधर आँखों को नचाती है ? ये छलपूर्ण बातें छोड़ दे, क्योंकि मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। अथवा इस पद में (भावभास तथा) व्याजोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस पद में भावाभास तथा व्याजोक्ति अलंकार है :

१. भावाभास—जहाँ भाव का औचित्यहीन वर्णन होता है, अथवा भाव रसाभास का अंग होता है, वहाँ भावाभास होता है। इस पद में माता द्वारा पुत्री को कोकशास्त्र की शिक्षा दिलाने का उल्लेख औचित्यहीन है, अतः भावाभास है।

२. व्याजोक्ति अलंकार—गुप्त रहस्य के प्रकट हो जाने पर फिर उसे कपट से छिपाने के प्रयत्न के वर्णन में व्याजोक्ति अलंकार होता है। यहाँ नारी-वेश में आए कृष्ण-को राधा की सखी ने पहिचान लिया है, जिसे कपटपूर्ण वाते बनाकर राधा छिपाने का प्रयत्न कर रही है। अतः व्याजोक्ति अलंकार है।

: १६८ :

हरि-ग्रह-जा-पति-पतिनि-सहेली ।

हय-भूषण कीनी ना, तातें जंहै काल अकेली ॥

तिरसकार-भासा में जाते, लागत है भय भारी ।

कासों कहों, सुनं को सजनी, परी बिपत्ति महा री ॥

पग-रिपु ता महें परत गजल के, को तन तें सुरभावं ।

उक्त गूढ़ तें भाव उदै सब, सूरज स्याम सुनावैं ॥८॥

शब्दार्थ—हरि-ग्रह-जा-पति-पतिनि-सहेली = यमुना (हरि बंदर, उसका गृह पर्वत, उसकी जा पार्वती, उसका पति शिव, उसकी पत्नी गंगा, उसकी सहेली यमुना) हय-भूषण = पूजा (हय घोड़ा, उसका आभूषण पूजी या पैजनी, पूजी पूजा)। काल = कल। तिरसकार भासा = रात्रि (तिरसकार तिरस्कार करने वाली, भासा प्रकाश; प्रकाश का तिरस्कार करने वाली अर्थात् रात्रि)। पग-रिपु = पैरों का शत्रु अर्थात् कांटा। गजल = करील (गज करी + ल = करील)। उक्त गूढ़ = १. गूढ़ वचन, २. गूढ़ोक्ति अलंकार। भाव उदै = १. भाव प्रकट करके, २. भावोदय।

प्रसंग—राधा कृष्ण को युक्तिपूर्वक अपने मिलने का संकेत दे रही है। वह अपनी सखी से कह रही है।

अर्थ—(हे सखि ! आज) मैंने यमुना की पूजा नहीं की, अतः कल अकेली ही मुझे (उसकी पूजा करने के लिए) जाना पड़ेगा। रात्रि में जाने हुए मुझे बहुत डर लगता है। हे सखि ! मैं किससे कहूँ ? मेरी सुनता भी कौन है ? मैं तो भारी मुसीबत में फँस गई हूँ। उस (मार्ग) में बहुत-सारे करील के कांटे आते हैं। (उनमें उलझ जाने पर) मेरे शरीर को कौन सुलभायेगा। सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार राधा ने) गूढ़ वचनों के द्वारा अपने भाव प्रकट करके कृष्ण को सुना दिये। अथवा इस पद में गूढ़ोक्ति अलंकार और भावोदय है।

विशेष—इस पद में भावोदय और गूढ़ोक्ति अलंकार है :

१. भावोदय—जहाँ एक भाव की शांति के उपरांत दूसरे भाव के उदय होने का वर्णन हो, वहाँ भावोदय होता है। इस पद में यमुना का पूजन न करने

से विषाद भाव है, पर कृष्ण से मिलने की आशा से इसके उपरांत हर्ष भाव का वर्णन है, अतः भावोदय है ।

२. गूढोक्ति अलंकार—अन्य उद्देश्य से दूसरे के प्रति कहे गये वाक्यों में गूढोक्ति अलंकार होता है । यहाँ नायिका अपनी सखी से जो-कुछ कह रही है, वह कृष्ण को सुनाने के उद्देश्य से कहा गया है, अतः गूढोक्ति अलंकार है ।

: १६६ :

सिधव-भूख-आराम-मद्ध तै, आज हेरायौ, स्याम :

हेरो-सारंग-मदन-तिया-के-अंत, बिचारी बाम ॥

पति-माता-औ-मीन-आदि-दै, ह्वं गयौ समुभो चित्त ।

बयरोचन-सुत-कौ-सुभाव, संग देख परत ना मित्त ॥

इंद्र-सहाय उठे चारों दिसि, लयं सहेली साथ ।

जह बिपत्ति मैं राखनहारौ, कौन हमारौ नाथ ॥

तातें बिनै करत नंदनंदन, चलो हमारे संग ।

बिन्न उक्त सुन सूर स्याम कौ घटगौ बिरह प्रसंग ॥८६॥

शब्दार्थ—सिधव-भूख-आराम-मद्ध = बछड़ा (सिधव सैधव लवण; भूख मछली; आराम; लवण, मछली और आराम के बीच के अक्षरों से बना 'बछरा' या बछड़ा) । हेरायौ = खो गया है । हेरो-सारंग-मदन-तिया-के-अंत = खोज रही हूँ (हेरो देखो; सारंग बाज पक्षी; मदन-तिया रति; देखो, बाज और रति के अंतिम अक्षरों को मिलाने से बना—खोजति अर्थात् खोज रही हूँ) । पति-माता-औ-मीन-आदि-दै = संध्या (पति-माता सास; मीन भूख; सास और भूख के आदि वर्णों को मिलाने से 'साभ' बना, सांभ अर्थात् संध्या) । बयरोचन-सुत-कौ-सुभाव = सखी (बयरोचन-सुत बलि, उसका स्वभाव दानी; फारसी में 'दानी' का अर्थ 'सखी' भी है) । इंद्र-सहाय = इंद्र के महायक अर्थात् बादल । सहेली = बादलों की सहेली अर्थात् बिजली । बिनै = विनय । बिन्न उक्त = १. स्पष्ट कथन; २. विवृतोक्ति अलंकार । घटगौ बिरह प्रसंग = १. विरह-दुख कम हो गया, २. भावशांति ।

प्रसंग—नायिका मिलन के लिए युक्तिपूर्वक कृष्ण से विनय कर रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! आज संध्या से ही (हमारा) बछड़ा खो गया है । (मैं) बिचारी अबला (उसे) खोज रही हूँ । तुम्हें सोचना चाहिए कि (अब) संध्या हो गई है । तुम्हें मेरे साथ न तो कोई सखी दिखाई पड़ती है और न कोई मित्र; अर्थात् यहाँ मैं बिल्कुल अकेली हूँ । बिजली को साथ लिये चारों दिशाओं में बादल छा गये हैं । मेरा ऐसा नाथ कौन है जो इस विपत्ति से मेरी रक्षा करे; अर्थात् इस विपत्ति में रक्षा करने वाला भी मुझे कोई दिखाई नहीं देता । हे कृष्ण ! इसीलिए मैं तुमसे विनय करती हूँ कि हमारे साथ चलो । सूरदास कहते हैं कि ये स्पष्ट वचन सुनकर कृष्ण का विरह-दुख कम हो गया । अथवा इस पद में विवृतोक्ति अलंकार और भाव-शांति है ।

विशेष—इस पद में भावशांति और विवृतोक्ति अलंकार है :

१. **भावशांति**—जब एक भाव की व्यंजना हो रही हो, तभी किसी दूसरे विरुद्ध भाव की व्यंजना होने पर पहले भाव की समाप्ति में चमत्कार आ जाता है तो भावशांति होती है। इस पद में पहला भाव विपाद है और अंत में इसके विरुद्ध भाव हर्ष की व्यंजना है। अतः भावशांति है।

२. **विवृतोक्ति अलंकार**—युक्ति-चतुरता से छिपाया गया रहस्य जहाँ कवि-द्वारा प्रकट कर दिया जाता है, वहाँ विवृतोक्ति अलंकार होता है। इस पद में नायिका ने जिस रहस्य को युक्तिपूर्वक छिपाया था, उसे ही कवि ने अंत में 'स्वाम कौ घट गौ बिरह प्रसंग' कहकर प्रकट कर दिया है। अतः विवृतोक्ति अलंकार है।

: १७० :

करि बिपरीत भवन में धारा ।

बैठी हती अकेली सुन्दर लिखत रूप सुत-सुत सुन-मारा ॥

दधि-सुत-अरि-भख-सुत-सुभाव चल तहाँ उताइल आई ।

देख ताहि सुर लिख कुबेर-कौ-बित्त तुरत समुझाई ॥

करत बिग तें बिग दूसरी जुक्त अलंकृत माँहो ।

सूर देखि ग्वालिन की बातें, को कत समुझ तहाँ ही ॥८७॥

शब्दार्थ—करि बिपरीत धारा = राधा (धारा को उलटा करने से राधा शब्द बना)। सुत-सुत = कृष्ण। सुत-मारा = कामदेव का स्वरूप (सुत स्वरूप, मारा स्मर कामदेव)। दधि-सुत-अरि-भख-सुत-सुभाव = सखी (दधि-सुत चन्द्रमा, उसका अरि राहु, उसका भक्ष्य सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका स्वभाव दानी, फारसी में 'दानी' सखी को भी कहते हैं)। उताइल = उतावली से, शीघ्रता से। सुर = पुष्प (सुर मुमन को भी कहते हैं और मुमन का अर्थ पुष्प भी होता है)। कुबेर-कौ-बित्त = धन अर्थात् धनु, धनुष। बिग = व्यग्य। जुक्त = १. युक्ति, उपाय, २. युक्ति अलंकार।

प्रसंग—राधा कृष्ण का चित्र बना रही थी। तभी उसकी एक सखी वहाँ आ गई। उससे अपने भावों को छिपाने के लिए राधा ने चित्र में तुरन्त पुष्प-धनुष बनाकर उसे कामदेव का चित्र बना दिया। इसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है।

अर्थ—(हे सखि !) राधा अपने भवन में अकेली बैठी हुई कामदेव के स्वरूप (के समान सुन्दर) कृष्ण का चित्र बना रही थी कि (तभी) वहाँ पर शीघ्रता से (उसकी) सखी आ गई। उसे देखकर (राधा ने उस चित्र के हाथों में तुरन्त पुष्प-धनुष बनाकर उसे समझा दिया (कि यह चित्र कृष्ण का नहीं, कामदेव का है)। सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार) उसने सुन्दर उपाय द्वारा एक व्यग्य से दूसरा व्यग्य किया। (वस्तुतः) इन ग्वालिनो की बातें देखकर वहाँ कौन क्या समझ सकता है? अर्थात् इन ग्वालिनों की बातें सहज ही समझ में नहीं आती। अथवा इसमें युक्ति अलंकार है।

युक्ति अलंकार—अपना रहस्य छिपाने के लिए जहाँ कोई किसी क्रिया द्वारा दूसरे की बंचना करता है, वहाँ युक्ति अलंकार होता है। यहाँ राधा अपनी सखी को धोखा देने के लिए कृष्ण के चित्र को कामदेव का चित्र बताती है। अतः युक्ति अलंकार है।

: १७१ :

माधव ! कीजिए विश्राम ।

उदो चाहत लैन, बैरी करन-पितु हित जाम ॥

खुलौ चाहत सरन सारंग, देत सारंग-दान ॥

सुरा सेवन करन लागे, विप्र लख सुख-हान ॥

निसाचर-रिपु हीन है है, गए सब घर कोइ ।

विस्नु-बाहन-सेन दस-दिस, लगे बोलन सोइ ॥

आइगे नदलाल संगी, देखिए न दलाल ।

मोल की बिधि कीजिए, उर बिन-गुनन की माल ॥

आपके गुन कहन कारन, आप ही के नैन ।

सूर डोंडी देत सिर पर, लोक उक्ती एन ॥८८॥

शब्दार्थ—करन-पितु = कर्ण का पिता अर्थात् सूर्य । सरन = सरोवरों में। सारंग = कमल । सारंग-दान = भौरे को मरकन्द का दान । सुरा = पश्चिम दिशा (सुरा वारुणी, पश्चिम दिशा को भी वारुणी कहते हैं) । विप्र = द्विजराज, (चन्द्रमा को भी द्विजराज कहते हैं) । सुख-हान = कांति की हानि । निसाचर-रिपु = तारे (निसाचर राक्षस, उनके रिपु ऋक्ष, तारों को भी ऋक्ष कहते हैं) । विस्नु बाहन-सेन = पक्षियों का समूह (विष्णु-वाहन गरुड़, उसकी सेना पक्षियों का समूह) । संगी = साथी । बिन गुनन = (१) डोरी-रहित, (२) गुण-रहित । डोंडी = ढिँढोरा । लोक उक्ती = (१) कहावत, (२) लोकोक्ति अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण रात्रि को किसी अन्य नायिका के साथ रमण करके लौटे तो नायिका (राधा) उन पर व्यंग्य करती हुई कहती है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! (अब आप) विश्राम कीजिए, क्योंकि बैरी सूर्य कुछ देर बाद ही उदय होने वाला है । भौरे को मरकन्द का दान देने के लिए कमल सरोवरों में खिलने ही वाले हैं । चन्द्रमा अपनी कान्ति की हानि देखकर पश्चिम दिशा की ओर जाने लगा है । सब तारे भी कांतिहीन हो-होकर अपने घरों को जा रहे हैं, अर्थात् अस्त हो रहे हैं । दसों दिशाओं में पक्षियों का समूह बोलने लगा है । हे कृष्ण ! तुम्हारे (ये सब) साथी तो आ गये, (पर इनसे) कोई दलाल दिखाई नहीं देता, अतः तुम्हारी डोरी-रहित माला (प्रगाढ़ आलिंगन के कारण नायिका की वेणी के हृदय पर बने हुए चिन्ह) का किस प्रकार मोल किया जाये । कहावत के अनुसार, तुम्हारे गुणों का वर्णन करने के लिए तुम्हारे ही नेत्र (जो रात्रि-जागरण के कारण लाल हैं) सिर पर चढ़कर ढिँढोरा कर रहे हैं । अथवा इस पद में लोकोक्ति अलंकार है ।

लोकोक्ति अलंकार—लोक-प्रसिद्ध कहावत के प्रयोगों में लोकोक्ति अलंकार होता है। इस पद में 'डोंड़ी देत सिर' कहावत का प्रयोग होने से लोकोक्ति अलंकार है।

: १७२ :

सजनी ! ताकों सब समझावे ।

जाकों लाज तनक ना तन मैं, मन मै सो न सकावे ॥

सुन्न-तीन-पाछिल-सुध-ताके-प्रथम आपनी छोड़ै ।

भूधर-समर-आदि ती सोई, सुनत करत तन पोड़ै ॥

दानव-प्रिया-सेर-चालीसौ, सुरभी-रस गुड़ सींचौ ।

तजत न स्वाद आपने तन कौ, जो बिध दीनों नीचौ ॥

छेक उक्त जहँ दुमिल समझ के, का समुझावत नीठौ ।

मिसरी सूर न भावत घर की, चोरी कौ गुड़ मीठौ ॥८६॥

शब्दार्थ—ताकों = नायक को। सकावे = शक्ति होता है। सुन्न-तीन-पाछिल-सुध-ताके-प्रथम = नारी (सुन्न शून्य = ०, तीन ३, इन्हे विपरीत लिखने बना = ३०, सुध याद, नीस और याद के प्रथम अक्षरों से बना—तीया, तिय अर्थात् नारी)। भूधर-समर-आदि = पराई (भूधर पर्वत, समर, रण, पर्वत और रण के आदि अक्षरों से 'पर' बना जिसका अर्थ हुआ पराई)। ती = तिय, नारी। पीड़ै = अर्पित करना। दानव-प्रिया-सेर-चालीसौ = नीम (दानव-प्रिया कुम्भकर्ण की प्रिया नीद, चालीस सेर मन, नीद और मन में प्रथम अक्षरों से 'नीम' शब्द बना)। सुरभी-रस = गाय का रस अर्थात् घी। छेक उक्त = (१) चातुरी से पूर्ण उक्ति, (२) छेकोक्ति। दुमिल = कट, कठिन। नीठौ = व्यर्थ।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से अपने पति की पर-नारी-रमण की प्रवृत्ति का वर्णन कर रही है।

अर्थ—हे सखि ! उसको (मेरे पति को) सब समझाते है (कि वह पर-नारी रमण की प्रवृत्ति को छोड़ दे पर उसे) न तो अपने शरीर में तनिक भी लज्जा आती है और न अपने मन में शंकिता ही होता है। वह अपनी नारी को छोड़कर पराई नारी की चर्चा सुनते ही (उसके प्रति) अपना शरीर अर्पित कर देता है। नीम को घी और गुड़ से (चाहे जितना सींचो पर) वह अपने तन का नीच स्वाद (कड़वापन), जो उसे विधाता ने दिया है, नहीं छोड़ता। चातुरी से पूर्ण उक्ति जिसकी समझ के लिए है, अर्थात् जिस पर चतुर उक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता, उसे तेरा समझाना व्यर्थ है। उसे तो घर की मिश्री अच्छी नहीं लगती, चोरी का गुड़ भी मीठा लगता है। अथवा इस पद में छेकोक्ति अलंकार है।

छेकोक्ति अलंकार—जहाँ किसी लोकोक्ति का प्रयोग किसी विशेष अभिप्राय से गर्भित हो, वहाँ छेकोक्ति अलंकार होता है। यहाँ 'चाहे घी और गुड़ से सींचा

जाये, नीम मीठा नहीं होता । 'चोरी का गुड़ मीठा लगता है' आदि लोकोक्तियों से नायिका का अभिप्राय यह बताना है कि उसके पति में जो बुरी आदत पड़ गई है, वह छूट नहीं सकती । अतः छेकोक्ति अलंकार है ।

: १७३ :

मानिन ! बार-बसन उधार ।

सम्भु कोप दुआर आयौ आद कौ तन मार ॥

नागजा-पति-पिता-पुर कौ जाहु कहतन बेग ।

गेह-द्रग-औ-रंग-भख-सुन-रीत-ताही-नेग ॥

कहहु करहि सहाइ सुरपति चढत ब्रज पर फेर ।

सूर उक्ती बक्र कर कर, रही नीचै हेर ॥६०॥

शब्दार्थ—वार-बसन=किवाड़ (वार द्वार, उसका बसन आवरण अर्थात् किवाड़) । सम्भु कोप आद कौ=कृष्ण (सम्भु महादेव हर, कोपि रिस, हर और रिस के आदि शब्दों के जोड़ने से बना 'हरि' अर्थात् कृष्ण) । मार=स्मर, कामदेव । नागजा-पति-पिता पुर=लका (नागजा नाग-पुत्री सुलोचना, उसका पति मेघनाद, उसका पिता रावण, उसका पुर लका) । गेह-द्रग औ-रंग-भख-सुन-रीत-ताही-नेग=घनश्याम (गेह घर; द्रग नयन, रंग श्याम रंग, भख मछली शब्दों के आदि-अक्षरों से बना-घनश्याम) । उक्ती बक्र=(१) टेढ़ा कथन, (२) वक्रोक्ति अलंकार ।

प्रसंग—मानवती राधा ने अपने द्वार बन्द कर लिए और कृष्ण बाहर ही खड़े रहे । उन्हें देखकर राधा की सखी राधा से द्वार खोलने की विनय करती हुई कहती है ।

अर्थ—हे मानवती ! किवाड़ खोलो । (देखो तो) तुम्हारे द्वार पर कामदेव के (समान सुन्दर) रूप वाले हरि (कृष्ण) आये हैं । (यह सुनकर राधा ने) तुरन्त उत्तर दिया कि वे हरि (बन्दर) लका चले जाये । (राधा का उत्तर सुनकर सखी ने फिर कहा कि बानर नहीं) घनश्याम आये हैं । (इसके उत्तर में राधा ने फिर कहा कि) घनश्याम (काले बादल) से कहो कि वह फिर से ब्रज पर चढ़ाई करके इंद्र की सहायता करे । (इस प्रकार राधा) टेढ़े वचन कहकर नीचे की ओर देखने लगी । अथवा इस पद में वक्रोक्ति अलंकार है ।

वक्रोक्ति अलंकार—जहाँ श्रोता वक्ता के अभिप्राय से भिन्न श्लेष या काकु से अन्य अर्थ ही कल्पना करके उत्तर देता है, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । यहाँ राधा ने 'हरि' और 'घनश्याम' शब्दों का वक्ता के अर्थ से भिन्न अर्थ लेकर उत्तर दिया है, अतः वक्रोक्ति अलंकार है ।

: १७४ :

जलज-नीतन हौं आज निहारे ।

मोरन-के-सुर सरस सम्भारत, पय-सुर-तिया बीच रुचकारे ॥

नृतकार-उत्तम बनाउ, बानिक सँग चंद न आवैं ।

मास-भांग सिर लसत सुरन के, देखत भुक भुक जावैं ॥

सखन ओर बरही मुख कर कर, सजनी फिर फिर भाँकी ।

एकावरन सुभाव उक्त कर, सूर सरस रस वाकौ ॥६१॥

शब्दार्थ—जलज-नीतन = कमलनयन अर्थात् कृष्ण । मोरन-के-मुर = मारंग राग; (मोरन मारंग, उनके स्वर अर्थात् मारंग-राग) । पय-मुर-तिया = बाँसुरी (पय बारि ; मुर-तिया = मुरी ; बारि और मुरी के बा और मुरी के मिलाने से 'बाँसुरी' शब्द बना) । नृतकार-उत्तम नटवर (नृत्यकार नट, उत्तम वर, नट + वर = नटवर) । बनाउ = बनाव, वेश । बानिक शोभा । मास-भाग = पख (मास का भाग पक्ष, पक्ष पख) मुरन = मोरों के (मुर वहीं, वहीं मोर ! न = मोगन मोगे के) । सखन ओर = सखाओं की ओर । बरही = मोड़ना (बरही वहि मोर, मोग मोड़ना) । एकावरन = एकाकी । सुभाव उक्त = (१) स्वभाव का कथन करना ; (२) स्वभावोक्ति अलंकार । वाकौ = उनके ।

प्रसंग—कृष्ण के स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखी !) आज मैंने कृष्ण को देखा था । वे (अपनी) बाँसुरी से सरस एव मनोहारी मारंग-राग के स्वर बजा रहे थे । (उनके) नटवर वेश की शोभा (ऐसी सुन्दर थी कि) चंद्र भी उसकी समता में नहीं आता है । उनके मिर पर मोर-पख सुशोभित थे, जिन्हें बार-बार भुक्ते हुए मैंने देखा था । हे मखि ! (वे अपने) सखाओं की ओर से बार-बार मुख मोड़कर (अपनी प्रिया की ओर) भाँक रहे थे । सूरदास कहते हैं कि (इस प्रकार सखी ने) उनके एकाकी एव सरस स्वभाव का (अपनी सखी से) रसपूर्ण वर्णन किया । अथवा इस पद में स्वभावोक्ति अलंकार है ।

स्वभावोक्ति अलंकार—जहाँ किसी के गुण, स्वभाव आदि का स्वाभाविक वर्णन होता है, वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है । यहाँ कृष्ण की शोभा का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है ।

: १७५ :

माधौ ! अस न करिबे जोग ।

जस करी वृषभानुजा की दशा आप बियोग ।

ससि-पाबस-कपिन-के-बिच मूँद राखे नैन ।

है सिकारी-नाग-मनसिज सखिन ओर अचैन ॥

जामिनी-नौका-बिचारौ-काम सँग तन प्रान ।

चलन मुनिके रावरौ, ह्वै गई सब विध हान ॥

त्रिमिल भाबिक कियौ भूषन, आप अद्भुत आज ।

सूर चाहत कहा, बंठौ गेह मैं तज काज ॥६२॥

शब्दार्थ—अस न करिबे जोग = ऐसा करना उचित नहीं था । वृषभानुजा = राधा । ससि-पबास-कपिन-के-बिच = हाथों से (ससि सकला या सकल; पाबस बरसा;

कपिन बानर ; सकल, बरसा और बानर के बीच के अक्षरों से बना—करन अर्थात् हाथों से । सिकारी-नाग-मनसिज=देखती है (सिकारी अहेरी ; नाग सर्प, मनसिज अतनु ; अहेरी, सरप, अतनु के बीच के अक्षरों को मिलाने से बना—हेरत=देखती है) । अचैन=दुःखी होकर । जामिनी-नौका-बिचारौ-काम=जल रहे है (जामिनी रजनी ; नौका तरणी ; काम अतनु ; रजनी, तरणी और अतनु के बीच के अक्षरों से बना—जरत=जल रहे है) । रावरौ=तुम्हारा । सब बिध=सब तरह । त्रिमिल=तीनों मिले हुए अर्थात् त्रिदोष । भाबिक=(१) बीती हुई अथवा होने वाली बात, (२) भाविक अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण विदेश जाने को उद्यत है जिसके कारण, राधा बहुत व्याकुल हो रही है । कृष्ण को विदेश से रोकने के लिए राधा की सखी कृष्ण से कह रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! तुमने स्वयं वियोग (की बात कहकर) राधा की जैसी दशा कर दी है, ऐसा करना (तुम्हें) उचित नहीं था । (वियोग की आशंका से व्यथित होकर) उसने अपने हाथों से अपने नेत्र मूँद रखे हैं । वह दुःखी होकर (सहायता की आशा से अपनी सब) सखियों की ओर देखती है । उसके शरीर और प्राण (विरहाग्नि में) जल रहे हैं । तुम्हारा (विदेश के लिए) जाना सुनकर उसकी सब तरह से हानि हो गई है । इन होने वाले त्रिदोषों (नयन मूँदने, दुःखी होने तथा तन-प्राण के जलने) को तुमने उसके लिए आज अद्भुत भूषण बना दिये हैं । (अब आप और) क्या चाहते हैं ? सब काम छोड़कर घर में बैठिये ; अर्थात् विदेश जाना स्थगित कर दीजिए । अथवा इस पद में भाविक अलंकार है ।

भाविक अलंकार—भूत और भावी भावों का प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन किये जाने में भाविक अलंकार होता है । इस पद में वियोग में होने वाले भावों का वर्तमान में ही वर्णन किया गया है । अतः भाविक अलंकार है ।

: १७६ :

छपे पति कति जात खेलन, कान मेरे प्रान ।

अचलजा-पति-अंग-भूषण-भार-हित-हित जान ॥

सम्भु-पतिनी-पिता-धारन, बक सँहारन बोर ।

नद-नाँहि निकंद-कारन, अघ-बिदारन धीर ॥

सेस ना कहि सकत सोभा, जान जो अति उक्त ।

कहँ बाचिक बाच तै, है कहा सूर अनुक्त ॥६३॥

शब्दार्थ—छपे पति=गोप पति अर्थात् गोपाल । कान=कान्ठ, कृष्ण । अचलजा-पति-अंग-भूषण-भार-हित-हित=घनश्याम (अचलजा पार्वती, उसका पति शिव, उसका अंग भूषण शेषनाग, उसका भार पृथ्वी, उसका हित इन्द्र, उसका हित मेघ, घनश्याम अर्थात् कृष्ण) । सम्भु-पतिनी-पिता-धारन=गिरिधर (सम्भु-पतिनी पार्वती, उसका पिता गिरि, उसको धारण करने वाला गिरिधर) । बक=बकासुर । नद-नाँहि=पूतना (नंद=पूत, नाँहि ना पूत+ना=पूतना) । निकंद-कारन=मारने

वाले । अघ-विदारन = अघासुर का वध करने वाले । सेस = शेषनाग । अति उक्त = (१) बड़ी बात, (२) अत्युक्ति अलंकार । वाचिक = वाचक शब्द । वाच = वाच्यार्थ । अनुक्त = न कहा गया ।

प्रसंग—यशोदा कृष्ण से कह रही है ।

अर्थ—हे गोपाल ! मेरे प्राण कृष्ण ! (तुम) कहाँ खेलने जाते हो ? हे घनश्याम ! हे गिरिधर ! हे बकासुर का संहार करने वाले वीर ! हे पूनना राक्षसी को मारने वाले ! हे अघासुर का वध करने वाले धीर ! तुम्हारी शोभा को बड़ी बात जानकर शेषनाग भी उसका वर्णन नहीं कर सकता । सूरदास कहते हैं कि क्या वाचक शब्द से वाच्यार्थ कहा नहीं गया है ? अर्थात् वाचक शब्द में वाच्यार्थ उवत होता है । अथवा इस पद में वाचक शब्द, वाच्य अर्थ और अत्युक्ति अलंकार है ।

विशेष—इस पद में वाचक शब्द, वाच्यार्थ और अत्युक्ति अलंकार है :

१. **वाचक शब्द**—साक्षात् सकेत किये हुए अर्थ को बताने वाले शब्द को वाचक शब्द कहते हैं । इसके चार भेद होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रियावाचक और यदृच्छा । इस पद में 'छपे पति' (गोप-पति) जातिवाचक, घनश्याम गुणवाचक, गिरिधर क्रियावाचक और वक-संहारक, अघ-विदारक आदि यदृच्छा शब्द है ।

२. **वाच्यार्थ**—एक शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी जहाँ एक ही अर्थ-ग्रहण की क्षमता हो, वहाँ वाच्यार्थ होता है । इस पद में 'कान', 'घनश्याम' आदि अनेकार्थी शब्दों का एक ही अर्थ (कृष्ण) यहाँ ग्रहण किया गया है । अतः वाच्यार्थ है ।

३. **अत्युक्ति अलंकार**—जहाँ किसी बात का वर्णन बहुत बढ़ा-चढ़ाकर किया जाये, वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है । यहाँ 'सेस ना कहि सकत सोभा' में अत्युक्ति अलंकार है ।

: १७७ :

खेलो भानुजा के भौन ।

हौं कहत, बलि जाहुं बाहिर कहा हित तें गौन ॥

दिन दिनन मैं लगे मानिक, सिया-रिपु-पितु हेर ।

लाज मानत रहन निस दिन, सकत ना मुख फेर ॥

खचर खेलन हेत आवत, आप तें सत कोट ।

नचत है सारंग सुन्दर, करत शब्द अखोट ॥

सबैं ब्रज तब हेत देखन चलौ आवत लाल ।

सम्भु-भूषन बदन बिलसत, कज तें गुहि माल ॥

जह उदात अनूप भूषन, दियो सब घर तोर ।

सूर सबरे लच्छनन जुत, सहित सब तून-तोर ॥६४॥

शब्दार्थ—भानुजा = राधा (भानु वृषभानु, जा पुत्री, वृषभानु की पुत्री राधा) । भौन = भवन । हित = लाभ । गौन = गमन करना, जाना । दिन = वार अर्थात् द्वार ।

सिया-रिपु-पितु = इन्द्र (सिया-रिपु जयंत, उसका पिता इन्द्र) । खचर = देवता । (ख आकाश, चर = विचरण ; आकाश में विचरण करने वाले अर्थात् देवता) । खेलन हेत = खेलने के लिए । सत कोट = सहस्र कोटि अर्थात् करोड़ों । सारंग = नारियाँ, युवतियाँ । अखोट = मनोहर । सम्भु-भूषण = शिव का भूषण अर्थात् चन्द्रमा । बदन = मुख । कंज = कमल । उदात्त = (१) श्रेष्ठ, (२) उदात्त अलंकार । मवरे = समग्र, समस्त । लच्छनन = (१) लक्षणो से, (२) लक्षणा शब्द शक्ति । तृन-तोर = तिनका तोड़ना, न्यूछावर होना ।

प्रसंग—यशोदा कृष्ण से कह रही है ।

अर्थ—(हे कृष्ण ! तुम) राधा के भवन में जाकर खेलो । मैं तुम्हारी बलिहारी जाकर तुमसे कहती हूँ कि बाहर जाकर खेलने में तुम्हारा क्या लाभ है ? (वरन् हानि की ही सम्भावना है) । यहाँ प्रत्येक द्वार पर माणिक जड़े हुए हैं जिन्हें देखकर (और अपने वैभव की तुच्छता का अनुभव करके) इन्द्र भी रात-दिन लज्जित होता रहता है, फिर भी इनकी ओर से अपना मुख नहीं मोड़ पाता ; अर्थात् इनका वैभव और इनकी सुन्दरता उसके ध्यान को बरबस आकृष्ट किये रहती है । स्वयं करोड़ो देवता (यहाँ) खेलने के लिए आते हैं, (यहाँ अनेक) सुन्दर युवतियाँ मनोहर शब्द करती हुई नाचती रहती हैं । हे लाल ! तुम्हें देखने के लिए सभी ब्रजवासी चले आ रहे हैं । चन्द्रमा तुम्हारे मुख (की शोभा) से प्रकाशित है, कमल तुम्हारे लिए माला गुंथता है । तुम्हारे घर में ही समस्त श्रेष्ठ एवं अनुपम वस्तुएँ हैं जो सभी लक्षणों से युक्त हैं (जिन्हें देखकर) सब आनन्दपूर्वक (उन पर) न्यूछावर होते हैं । अथवा इस पद में लक्षणा शब्द शक्ति और उदात्त अलंकार हैं ।

विशेष—इस पद में लक्षणा शब्दशक्ति और उदात्त अलंकार है :

१. लक्षणा—मुख्यार्थ का बाध होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन से जिस शब्द शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसे लक्षणा शब्दशक्ति कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं—रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा ।

(क) रूढ़ि लक्षणा—जहाँ मुख्यार्थ का बाध होने पर रूढ़ि के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ लक्षित होता है, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है । इस पद में प्रयुक्त 'सबै ब्रज तव हेत देखन चली आवत' में रूढ़ि लक्षणा है, क्योंकि जड़ पदार्थ होने से ब्रज का आना सम्भव नहीं, अतः मुख्यार्थ का बाध है, पर ब्रज का रूढ़िगत अर्थ 'ब्रजवासी' होता है ।

(ख) प्रयोजनवती लक्षणा—जहाँ मुख्यार्थ का बाध होने पर प्रयोजन-विशेष के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ लक्षित किया जाता है, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है । इस पद में 'दिन दिनन मैं लगे मानिक' में प्रयोजनवती लक्षणा है, क्योंकि इस वाक्य से ऐश्वर्य की प्रचुरता बताना ही कवि का प्रयोजन है । इसी प्रकार 'कज तें गुहि माल' में भी प्रयोजनवती लक्षणा है ।

२. उदात्त अलंकार—अतिशय ऐश्वर्य के वर्णन में उदात्त अलंकार होता है । इस पद में ब्रज के अतिशय ऐश्वर्य का वर्णन होने से उदात्त अलंकार है ।

: १७८ :

अघहर सोहत सुर-न-समेत ।

नीतन तैं बिछुरौ सारंग-सुत, कुंत अग्र तैं बंदन-रेख ॥

बिप्र बिचित्र रेख दधि-सुत-ग्रह, रेसम-छद घन ऊपर आज ।

पुंडरीक-सुत घटिगे उर तैं, बानर-पुत्र सजे बिन साज ॥

दधि-सुत दीपत तज मुरभानौ, दिनपति-सुत है भूषन हीन ।

जह निरुक्त की अवध बाम तू, भई सूर हत सखी नवीन ॥६५॥

शब्दार्थ—अघहर=वेणी (अघ पाप, हर हरण करने वाली; पापों का हरण करने वाली त्रिवेणी अर्थात् वेणी) । सुर-न-समेत पुष्प-रहित (सुर सुमन, सुमन पुष्प; न समेत रहित) । नीतन तैं=नेत्रों में । सारंग-सुत=काजल (सारंग दीपक, उसका सुत काजल) । कुत=भाला अर्थात् भाल । बंदन-रेख=मिदूर की रेखा । बिप्र=दांत (बिप्र द्विज, द्विज दांतों को भी कहते हैं) । रेख=रेखा, चिन्ह । दधि-सुत-ग्रह=अधर (दधि-सुत अमृत, उसका ग्रह भंडार अधर) । रेसम-छद=नख-क्षत । घन=कुच (घन पयोधर, कुचों को भी पयोधर कहते हैं) । पुंडरीक-सुत=मोती (पुंडरीक गज, उसका सुत मुक्ता; गजमुक्ता अर्थात् मोती) । बानर-पुत्र=बाजूबन्द (बानर वाली, उसका पुत्र अगद, अगद का अर्थ बाजूबन्द भूषण-विशेष भी होता है) । साज=शोभा । दधि-सुत=कमल अर्थात् मुख । दीपत=दीप्ति, कानि । दिनपति-सुत=कान (दिनपति सूर्य, उसका सुत कर्ण अर्थात् कान) । निरुक्त=(१) निश्चित कथन, (२) निरुक्ति नामक अलंकार । अवध=अवधि, सीमा । बाम=कुटिलता ।

प्रसंग—नायिका की मन्वी उसके प्रियतम के साथ रमण करके लौटी है । उसके रति-चिन्हों को देखकर नायिका दुःखी होकर उससे कहती है ।

अर्थ—(हे सखि ! तेरी) वेणी पुष्प-रहित होकर भी सुशोभित हो रही है । (तेरे) नेत्रों से काजल तथा भाल के अग्र भाग से मिदूर की रेखा छुट गई है । आज (तेरे) अधरों पर दांतों के तथा कुचों पर नख-क्षत के बिचित्र चिन्ह (दिखाई दे रहे) हैं । तेरे हृदय से मोती हट गये हैं, अर्थात् प्रगाढ़ आलिंगन से तेरा मोतियों का हार अस्त-व्यस्त हो गया है । (तेरे) बाजूबन्द बिना शोभा के ही शोभायमान है । तेरा मुख कातिहीन होकर मुरझा गया है । (तेरे) कानों में भी कोई आभूषण नहीं (रह गया) है । (मेरा) निश्चित कथन है कि कुटिलता की सीमा है; अर्थात् अत्यन्त कुटिल है तभी तो सखी होकर भी (रति-चिन्हों से युक्त) नवीनता धारण करके तूने मेरा सर्व-नाश कर दिया है । अथवा डम पद में निरुक्ति अलंकार है ।

निरुक्ति अलंकार—योगवश से किसी नाम का और ही अर्थ कल्पना किये जाने में निरुक्ति अलंकार होता है । यहाँ 'बाम' का अर्थ 'नारी' न होकर 'कुटिलता' है । अतः निरुक्ति अलंकार है ।

: १७९ :

बुती-रासि-दिनपति-पुर नाहीं ।

जहाँ कीन तुम सब मनभाई, रोकत भये न को परछाँही ॥

यहै हेमपुर अष्ट-सुरन-सुत, दिनपति ही को बास ।

समुझ बूझ कै काम कीजिये, राख राख उर त्रास ॥

यों प्रतषेद अलंकृत जब हू, सुमुखी सरस सुनायो ।

सूर कहौ मुसकाइ प्रानप्रिय, मो मत एक गनायो ॥६६॥

शब्दार्थ—दुती रासि-दिनपति-पुर=वृषभानुपुर (दुती रासि द्वितीय राशि अर्थात् वृष; दिनपति भानु; वृष+भानु+पुर=वृषभानुपुर) । हेमपुर=कुंदनपुर । अष्ट-सुरन-सुत=कृष्ण (अष्ट बसु; सुरन देव; वसु+देव=बसुदेव, उसका सुत कृष्ण) । दिनपति=सूर्य, सूर अर्थात् सूर-वीर । त्रास=डर । प्रतषेद=(१) प्रतिषेध, रोक (२) प्रतिषेध नामक अलंकार । एक गनायो=एक ही गिनती में है ।

प्रसंग—रुक्मिणी कृष्ण से परिहास करती हुई कह रही है ।

अर्थ—हे कृष्ण ! यह वृषभानुपुर नहीं है जहाँ तुमने सब प्रकार से अपनी इच्छा के अनुकूल किया था और किसी ने तुम्हारी परछाई तक नहीं रोकी थी । यह कुंदन-पुर है जहाँ (कामी नहीं, बल्कि) सूर-वीर ही निवास करते हैं । (अतः यहाँ) हृदय में डर-डरके समझ-बूझकर ही काम करना । सूरदास कहते हैं कि जब सुमुखी (रुक्मिणी) ने ये सरस शब्द सुनाये (तो) प्राणप्रिय (कृष्ण) ने मुस्कराकर कहा कि मेरे लिए तो (वृषभानुपुर और कुंदनपुर दोनों) एक ही गिनती में है । अथवा इस पद में प्रतिषेध अलंकार है ।

प्रतिषेध अलंकार —प्रसिद्ध निषेध का निषेध किये जाने में प्रतिषेध अलंकार होता है । कृष्ण का कुन्दनपुर न जाना प्रसिद्ध निषेध है. पर फिर भी रुक्मिणी द्वारा इसका निषेध हुआ है; अतः प्रतिषेध अलंकार है ।

: १८० :

जब ब्रजचंद चंद मुख लखि है ।

तब जह बान मान की तेरी, अंगन आपु न रखि है ॥

कुंत अग्र गज औ नीकन में, आपुन ही तें दे है ।

पाप-हरन में देव अनूपम, गज-कौ-पुत्र सम है ॥

सुधा-गेह में करि की सोभा, सारंग-रिपु सीस बने है ।

घन ऊपर जलजा-सुत सोभा, सुरुच सांवरी लहै ॥

भूषन बार सुधार तासु रंग, अंग अंग दीपत ह्वै है ।

यह बिध सिद्ध अलंकृत सूरज, सब बिध सोभा छहै ॥६७॥

शब्दार्थ—बान=आदत, स्वभाव । कुंत=भाला अर्थात् भाल । गज=(१) सिंदूर, (२) काजल । नीकन में=नेत्रों में । पाप-हरन=वेणी (पापों का हरण करने वाली त्रिवेणी; अर्थात् वेणी) । देव=पुष्प (देव सुमन, पुष्प को भी सुमन कहते हैं) । गज-कौ-पुत्र=गजमुक्ता । सुधा-गेह=अमृत का घर अर्थात् अघर । करि=ताम्बूल (करि नाग, नागवेल अर्थात् ताम्बूल) । सारंग-रिपु=चम्पा का पुष्प (सारंग भ्रमर, उसका रिपु चम्पा का पुष्प) । घन=कुच (घन पयोधर, कुच को भी पयोधर कहते

है) । जलजा-सुत=मोती (जलजा सीपी, उसका सुत मोती) । सुरुच=रुचिपूर्ण । भूषण-वार=भूषण और वस्त्र अर्थात् वस्त्राभूषण । रंग=प्रेम । विध=(१) प्रकार, (२) विधि नामक अलंकार । छैहै=छा जायेगी ।

प्रसंग—मानवती नायिका (राधा) से उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) जब तुम ब्रजचन्द (कृष्ण) का चन्द्र-मुख देखोगी तो तुम्हारा मान करने का जो यह स्वभाव है, यह तेरे शरीर में स्वयं ही न रहेगा; अर्थात् तुरंत तेरा मान-भंग हो जायेगा । (तब तुम) स्वयं ही अपने भाल पर सिंदूर और नेत्रों में काजल लगाओगी । (तुम्हारी) वेणी में अनुपम पुष्प और गजमुक्ता सम्मिलित हो जायेंगे; अर्थात् तुम अपनी वेणी को पुष्पों और गजमुक्ताओं से अलंकृत करोगी । (तुम्हारे) अधरों में ताम्बूल की शोभा होगी और तुम्हारे शीश पर चम्पे का पुष्प सुशोभित होगा । हे श्यामा ! तुम्हारे कुच रुचिपूर्ण मोतियों की शोभा से सम्पन्न होंगे । तुम अपने प्रत्येक अंग को वस्त्राभूषणों के सजाकर उनके प्रेम से दीप्तियुक्त बनाओगी । इस प्रकार सफलता से सुसज्जित होने पर (तुम पर) सब प्रकार की शोभा छा जायेगी । अथवा इस पद में विधि अलंकार है ।

विधि अलंकार—जहाँ पहिले से सिद्ध वस्तु का फिर से विधान किया जाये, वहाँ विधि अलंकार होता है । यहाँ 'ब्रजचन्द' से ही कृष्ण की शोभा चन्द्रमा के समान सिद्ध है, पर 'मुख-चंद्र' कहकर इसी सिद्ध बात का विधान किया गया है । अतः विधि अलंकार है ।

: १८१ :

नट देखत बृषभान डुलारी ।

आनन अमल पौछ सारंग रिपु तं, सारंग सुत रेख सम्भारी ॥

दं गज बिंदु बिजच्छन बेदन भानु जुगल अनुरूप उज्यारी ।

सेसलता के पत्र सुधा ग्रह गहत, होत सुख अंगन भारी ॥

कंठ लच्छ राखी सुकंठ मैं, बाम अकास प्रकासित न्यारी ।

रामदूत दुति दिपत नछन्नन, पुरी धनद रुचि रचि तमहारी ॥

जह छबि देख भयौ आनंद अति, आपु आपने ऊपर बारी ।

सूर स्याम के हेत अलंकृत कीनौ अमल सुमिल हितकारी ॥६८॥

शब्दार्थ—नट=मुकुर, दर्पण (नटना मुकरा, नट मुकुर, मुकुर दर्पण) ।

आनन=मुख । अमल=निर्मल । सारंग-रिपु=वस्त्र (सारंग दीपक, उसका रिपु वस्त्र) । सारंग-सुत=काजल (सारंग दीपक, उसका सुत काजल) । गज-बिन्दु=सिंदूर की बिन्दी (गज सिंधुर, सिंधुर सिंधुर; बिन्दु बिन्दी) । बिजच्छन=विलक्षण । बेदन=कानों में (बेदन श्रुति; श्रुति कान) । भानु=तर्यौना (भानु तरुणि, तरुण अर्थात् तर्यौना) । सेसलता-के-पत्र=पान का बीड़ा (सेसलता नागलता, उसके पत्र पत्ते अर्थात् पान का बीड़ा) । सुधा-ग्रह=अधर (सुधा का घर अर्थात् अधर) । कंठ-लच्छ=नीलखा हार (कंठ कंठी हार, लच्छ लक्ष लाखों का; अर्थात् नीलखा

हार) । वाम=वेगर (वाम टेढा, टेढा आभूषण अर्थात् वेगर) । अकास=नासिका (अकाम आकाश नाक अर्थात् नासिका) । रामदूत=वाजुवन्द (रामदूत अगद, अंगद वाजुवन्द) । द्रुति=द्युति । नल्लवन=हाथों में (नक्षत्र हस्त, हस्त हाथ) । पुरी-धनद=अलक (धनद कुबेर, उमकी पुरी अलका) बारी=बलिहारी हो गई । हेत=(१) हेतु, कारण; (२) हेतु नामक अलंकार ।

प्रसंग—कृष्ण से मिलने के लिए राधा ने शृंगार किया है । उसके शृंगार का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे मन्वि ।) दर्पण में देखकर राधा ने अपने निर्मल मुख को वस्त्र (साड़ी) से पोंछकर (नेत्रों में) काजल की रेखा सँवारी । (तत्पश्चात् उमने अपने मस्तक पर) मिहूर की विलक्षण बिंदी लगाई (और) दोनों कानों में (सूर्य के समान) चमकते हुए सुन्दर तर्पूने (कर्णफूल) धारण किए । (फिर उसने पान का बीड़ा खाया जिससे उसके अधरो ने पान (की लाली) ग्रहण की जिससे उसके अंगों को भारी सुख मिला । (उसने) अपनी सुन्दर ग्रीवा में नौलखा हार पहिना और नासिका में प्रकाशवान अद्वितीय वेसर धारण किया । (उमके) हाथों में वाजुवन्दों की द्युति की दीप्ति थी । (उमने) अधकार का नाश करने वाली (अपनी) सुन्दर अलकों को सँवारा । (अपनी ही) यह शोभा देखकर उसे परम आनन्द हुआ, और वह स्वयं अपने पर ही बलिहारी हो गई । (इस प्रकार राधा ने) कृष्ण के लिए यह निर्मल और हितकारी शृंगार धारण किया । अथवा इस पद में हेतु अलंकार है ।

हेतु अलंकार—जहाँ कार्य का कारण-महित वर्णन किया जाता है, वहाँ हेतु अलंकार होता है । यहाँ शृंगार-कारण से आनन्द-कार्य का वर्णन होने से हेतु अलंकार है ।

: १८२ :

सजनी, हौ न एक पहिचानौ ।

बाज बोल हेरन तुहीन चल मिलत सुता पति मानौ ॥

बाहन मात तासु रस जछपि सब ब्रज करत बखानौ ।

मोरे मन एकौ नहि आवत करत तिहारी आनौ ॥

भूषन बसन भवन भरपूरन, भूर भंडार भरी सौ ।

सूर स्याम सम्पति है मेरै और न एकौ सो सौ ॥६६॥

शब्दार्थ—बाज-बोल=घोड़ों की बोली । हेरन=देखना । तुहीन चल सुता पति बाहन=बैल (तुहीन चल हिमालय, उसकी सुता पार्वती, उसका पति शंकर उसका बाहन बैल) । मात=गाय (बैल की माता अर्थात् गाय) । तासु-रस=दूध-दही (तासु गाय का रस; अर्थात् दूध-दही) । आनौ=शपथ । भूर=विशाल । न एकौ(१) एक भी नहीं; (२) द्वितीयहेतु=अलंकार ।

प्रसंग—राधा कृष्ण के प्रति अपना अनन्य भाव प्रदर्शित करती हुई अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—हे सखि ! मेरी समझ में एक बात नहीं आती । यद्यपि मेरे घोड़ों की बोली की, उनकी दृष्टि की, (मेरे) बैल-गायों की, गाय के दूध-दही की सब ब्रजवासी प्रशंसा करते हैं (तथापि) मैं तुम्हारी शपथ खाकर कहती हूँ कि (इन वस्तुओं के प्रति) मेरे मन में एक भी वान नहीं आती; अर्थात् मैं इन्हे बिल्कुल भी महत्त्व नहीं देती । (मेरा) भवन भूषण और वस्त्रों से भग्न है, (सभी प्रकार की बहुमूल्य वस्तुओं का) विशाल भंडार (मेरे भवन में) भरा हुआ है, पर मेरी तो सम्पत्ति कृष्ण है, अन्य एक भी वस्तु उनके समान नहीं है । अथवा इस पद में हेतु द्वितीय अलंकार है ।

हेतु (द्वितीय) अलंकार—कारण-कार्य की अभिन्नता के वर्णन में हेतु (द्वितीय) अलंकार होता है । यहाँ कृष्ण कारण और सम्पत्ति कार्य में अभिन्नता वर्णित है । अतः हेतु (द्वितीय) अलंकार है ।

: १८३ :

अंग दान बल कौ दै बँठी ।

मदिर आजु आपने राधा, अंतर प्रेम उमेठी ।

दधि सुत धर रिपु पिता जानि मन पीछे आयौ मोरे ॥

कर भूषन तन हेरन लागी, मयौ देख मन चोरे ।

सारंग पच्छ अच्छ सिर ऊपर, मुख सारंग मुख नीके ॥

कट तट पट पियरौ नटबर बपु, सापे मुख रख जी के ।

नीकन मैं सीतलता व्यापी, अंग अंग सियरानौ ॥

सूर प्रतच्छ निहारत भूषन, सब दुख दरप दुरानौ ॥१००॥

शब्दार्थ—अंग-दान-बल-कौ=पीठ (बलि का वामानावतार को दान में दिया गया अंग—पीठ) । अन्तर-प्रेम=आंतरिक प्रेम । उमेठी=ऐंठी हुई । दधि-सुत-धर-रिपु-पिता=कृष्ण (दधि-सुत चन्द्रमा, उसको धारण करने वाला शिव; उसका शत्रु कामदेव अर्थात् प्रद्युम्न, उसका पिता कृष्ण) । कर-भूषन=आरसी । सारंग-पच्छ=मोर-पख अर्थात् मोर-मुकुट (सारंग मोर, पच्छ पक्ष पख) । अच्छ—अच्छा, सुन्दर । मुख-सारंग=मुख-चंद्र । पट पियरौ=पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर । सापे=संचित किया । नीकन मैं=नेत्रों में । प्रतच्छ,= (१) प्रत्यक्ष, (२) प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार । दुरानौ=छिप गया, दूर हो गया ।

प्रसंग—राधा कृष्ण से मान किये बैठी थी, पर अपनी आरसी में वह कृष्ण की छवि देखकर इतनी मुग्ध हुई कि उसने अपना मान ही भग कर दिया । इसी घटना का वर्णन सखी सखी से कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज राधा आंतरिक प्रेम में ऐंठी हुई (और कृष्ण से मान करके) अपने भवन में पीठ दिए हुए बैठी थी । यह जानकर कि कृष्ण मेरे पीछे आए (खड़े) हैं, वह अपनी आरसी में उनका शरीर (छवि) देखने लगी । (उस छवि को देखते ही उसका) मन चोरी हो गया, अर्थात् वह कृष्ण की रूप छवि पर पूर्णतया मुग्ध हो गई । उनके सिर पर मोर पंखों का सुन्दर मुकुट था, मुख-

चन्द्र शोभा-सम्पन्न था, वे कटि पर पीताम्बर धारण करके नटवर का वेश बनाये हुए थे । (उनकी उस रूप-छवि को देखकर राधा ने) अपने हृदय में सुख संचित किया; अर्थात् परम सुख का अनुभव किया । उसके नेत्रों में शीतलता व्याप्त हो गई, अंग-प्रत्यंग शीतल बन गया । (इस प्रकार कृष्ण को) प्रत्यक्ष देखकर (राधा का) सारा बुख और दर्द दूर हो गया । अथवा इस पद में प्रत्यक्ष प्रमाण अलंकार है ।

प्रत्यक्ष प्रमाणालंकार—जहाँ इन्द्रिय और मन का अपने विषय के यथार्थ ज्ञान के प्राप्त करने का वर्णन होता है, वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाणालंकार होता है । इस पद में राधा कृष्ण की रूप-छवि के द्वारा उनके विषय में सौन्दर्य-विषय यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करती है, अतः प्रत्यक्ष प्रमाणालंकार है ।

: १८४ :

सारंग-पितु-सुत-धर-सुत-बाहन, आजु न नैक पुकारे ।
 सिब-रिपु-तिय-जल-जुत काहे ते, नैकु न जात निहारे ॥
 कलही-पति-पितु-सुता और रँग, कीन्हो कहा सुनाऊँ ।
 ब्रज बीथिन में जे ब्रजबासी, तिन्हें देखि मुरभाऊँ ॥
 सुरभी सुत, सुत सुरभिन औरें हेरत हरष न पूरे ।
 भूसुत-सत्रु-गेह गुन कासों, कहे भरे अति भूरे ॥
 चारों ओर व्यास खगपति के, भुँड भुँड बहु आए ।
 ते कुखेत बोलत सुन सुन कै, सकल अँग कुम्हिलाए ॥
 लं कर गेंद गयो है खेलन, लरकन सँग कन्हई ।
 यह अनुमान गयो काली तट, सूर साँवरो माई ॥१०१॥

शब्दार्थ—सारंग-पितु-सुत-धर-सुत-बाहन = मोर (सारंग कमल, उसका पिता समुद्र, उसका सुत चन्द्रमा, उसको धारण करने वाला शिव, उसका सुत कार्तिकेय, उसका बाहन मोर) । सिब-रिपु-तिय-जल-जुत = वृन्दावन (शिव-रिपु जालंधर, उसकी पत्नी वृन्दा; जल वन; जुत युक्त अर्थात् वृन्दा + वन = वृन्दावन) । कलही-पति-पितु-सुता = यमुना (कलही कर्कशा, उसका पति शनि उसका पिता सूर्य, उसकी सुता यमुना) । भूसुत-सत्रु-गेह = वृक्ष (भूसुत केवाँच, उसका शत्रु बानर, उसका गृह वृक्ष) । व्यास खगपति के = कौवों (व्यास कथा सुनने वाला, खगपति गरुड़ को राम-कथा सुनने वाला, काकभुशुंडि अर्थात् कौवा) । कुखेत = बुरा स्थान । अनुमान = (१) अनुमान करना, (२) अनुमान प्रमाणालंकार ।

प्रसंग—कृष्ण के कालीदह पर जाने के अनुमान से दुखी होकर यशोदा अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज मोर तनिक भी नहीं बोलते, न जाने क्यों वृन्दावन की ओर तनिक भी नहीं देखा जाता; क्या कहूँ, यमुना ने अपना रंग कुछ और ही कर लिया है । ब्रज की गलियों में जो ब्रजवासी है, उन्हें देखकर मुझे अत्यधिक

वेदना होती है। गाय बछड़ों को और बछड़े गायों को उदास होकर देखते हैं। न जाने किस कारण से वृक्ष भूरे रंग के हो गये हैं। चारों ओर कौवों के भुँड के भुँड आकर बुरे स्थान पर में (अर्थात् अशुभ सूचक होकर) बोल रहे हैं जिनकी वाणी को सुन-सुनकर मेरे सारे अंग कुम्हिला गये हैं। कृष्ण अपने साथियों के साथ गेंद लेकर खेलने गया है। सूरदास कहते हैं कि इससे यशोदा ने अनुमान कर लिया कि वह कालीदह के तट पर पहुँच गया है। अथवा इस पद में यह अनुमान प्रमाणालंकार है।

अनुमान प्रमाणालंकार—जहाँ साधन द्वारा साध्य का चमत्कारपूर्ण होता है, वहाँ अनुमान प्रमाणालंकार होता है। यहाँ अशुभमूचक पदार्थों के द्वारा यशोदा का कृष्ण का कालीदह के तट पर जाने का अनुमान वर्णित है, अतः अनुमान प्रमाणालंकार है।

: १८५ :

सो जानो वृषभान-दुलारी ।

सिय-रिपु-पितु-सुत-बंधु-तात-हित, जाके चरन कमल गुनकारी ॥

कामग्रन्थ-अरि-गुन-रिपु-सुत सम, गति अति नोक बिचारी ।

त्रइ-मूरत-सुत-रिपु-पितु-बाहन-गेह-नृपति कटि डारी ॥

भूषन-पति-आहार-जा-फल से, मेघ अनोखे दोऊ ।

सारंग-सुत-सुत-सुत अहार सो, दीपत तन मै जोऊ ॥

गिरजापति-पितु-पितु से दोऊ कर बर देख बिचारी ।

बानी सुनत तुरत अपने मन, कोटि कोकिला बारौ ॥

निपट नदान बीच से दसनन, जो छबि पूरन पावौ ।

अंतरिच्छ मैं पकौ बिम्ब फल, सहज सुभाब मिलाबौ ॥

दिनचर-सुत-सुत सरस नासिका, है कपोल श्री-भाई ।

सारंग नैन भौह धनु बेनी नागिन सो सुखदाई ॥

बेदन अर्क बिभूषित सोभा, बेदी रिच्छ बलानौ ।

सूर स्याम है उपमा भूषन, तब निज बात प्रमानौ ॥१०२॥

शब्दार्थ—सिय-रिपु-पितु-सुत-बंधु-तात-हित = लाल (सिय-रिपु जयत, उसका पिता इन्द्र, उसका सुत अर्जुन, उसका बन्धु कर्ण, उसका पिता सूर्य, उसका हित् अरुण, अरुण लाल रंग को भी कहते हैं) । कामग्रन्थ-अरि-गुन-रिपु-सुत = गज (कामग्रन्थ कोकशास्त्र अर्थात् कोक पक्षी, उसका अरि रात्रि, उसका गुण अन्धकार, उसका रिपु दीपक, उसका सुत काजल; काजल जैसा काला अर्थात् गज) । नोक—सुन्दर । त्रइ-मूरत-सुत-रिपु-पितु-बाहन-गेह-नृपति = सिंह (त्रइ मूरत त्रिमूर्ति अर्थात् सूर्य, उसका सुत कर्ण, उसका रिपु अर्जुन, उसका पिता इन्द्र, उसका बाहन हाथी, उसका गृह वन, वन का नृपति सिंह) । भूषन-पति-आहार-जा-फल = श्रीफल (भूषन मुद्रा भूषण, मुद्रालोपा का पति अगस्त्य, उसका आहार समुद्र, उसकी पुत्री लक्ष्मी अर्थात् श्री,

श्री+फल=श्रीफल) । मेघ=कुच (मेघ पयोधर, कुच को भी पयोधर कहते हैं) । सारंग-सुत-सुत-सुत-अहार=स्वर्ण, सोना (सारंग सुत कमल, उसका सुत ब्रह्मा, उसका सुत शंकर, उसका आहार धतूरा जिसे कनक भी कहते हैं; और कनक का अर्थ स्वर्ण भी होता है, स्वर्ण गोना) । जोऊ=ज्योति । गिरजापति-पितु-पितु=कमल (गिरजापति शंकर, उसका पिता ब्रह्मा, उसका पिता कमल) । नदान=अनार (नदान । नादान, अनारी; नादान; । अर्थात् अनार) । अन्तरिच्छ=अधर । दिनचर, सुत-सुत=शुक (दिन बार-बार बारि, बारिचर मछली उसका सुत व्यास, उसका सुत शुक) । श्री-भाई=शंख (श्री लक्ष्मी उसका भाई शंख) । सारंग=हिरन । वेदन=कान (वेद श्रुति, श्रुति कान को भी कहते हैं) । अर्क=तर्प्योना, कर्णफूल (अर्क तरुणि अर्थात् तर्प्योना, तर्प्योना कर्णफूल) । रिच्छ=तारा (रिच्छ ऋक्ष-ऋक्ष नक्षत्र अर्थात् तारा) । उपमा भूषण=(१) शोभा की तुलना; (२) उपमान प्रमाणालंकार ।

प्रसंग—सखी सखी से राधा के सौंदर्य का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—(हे सखि ! तुम) राधा (के सौंदर्य) को इस प्रकार जानो । उसके गुणकारी चरण-कमल लाल है और उसकी गति गज-गति के समान सुन्दर है । उसकी कटि सिंह की कटि के समान क्षीण एवं सुडौल है । उसके दोनों कुच श्रीफल के समान विलक्षण है । उसकी देह में सोने की सी काति है । उसके दोनों हाथ कमल के समान सुन्दर दिखाई देते हैं । उसकी मधुर वाणी को सुनते ही अपने मन में करोड़ों कोयलों को न्योछावर करना पड़ता है । उसके दात बिल्कुल अनार (के दाने) से हैं जो उसे पूर्ण शोभा देते हैं । उसके अधरों में पका हुआ बिम्बफल सहज रूप में मिल गया है । उसकी नासिका शुभ्र (की चंचु) के समान (नुकीली) है । उसके कपोल शंख के समान हैं । उसके नेत्र हिरन के नेत्रों के समान, भौहे धनुष के समान और उसकी मुखदाई वेणी नागिन के समान है । उसके कर्णफूलों की शोभा सूर्य के समान और उसके भाल पर लगी हुई विदी तारे के समान कड़ी जाती है । मूरदास कहते हैं कि शोभा की इस प्रकार की तुलना से कृष्ण ने अपनी बात को प्रमाणित कर लिया । अथवा इस पद में उपमान प्रमाणालंकार है ।

उपमान प्रमाणालंकार—उपमान की समता से कारण जहाँ उपमेय के बिना देखे ही ज्ञान का वर्णन हो, वहाँ उपमान प्रमाणालंकार होता है । इस पद में राधा को देखे बिना ही उसके सौन्दर्य के उपमानों से उसके सौन्दर्य का ज्ञान कृष्ण ने कर लिया है, अतः उपमान प्रमाणालंकार है ।

: १८६ :

अब लो ऐसी नाहिं सुनी ।

जैसी करी नंद के नंदन, अद्भुत बात गुनी ॥

खवन बचन ते पावन पतिनी-सारंग कहत पुकार ।

गुन अकास कौ सुख साधना, सास्त्र करत बिस्तार ॥

रवि तै त्रै जननी सु सुद्ध, पुनि संस्कार तै होई ।

रति मै अघर तिया मुच सिगरे जानत सुनि मति जोई ॥

सुद्ध सबन कौ लच्छन जानत, सबदाभूषन जंसी ।

सूरज स्याम सुद्ध दासी कौ, करी कहो बिधि कैसो ॥१०३॥

शब्दार्थ—अब लौं=अब तक । नंद के नंदन = कृष्ण । गुनी = गुनकर, जान-बूझकर । अवन = श्रुति, वेद । पतिनी-सारंग = समुद्र की पत्नी अर्थात् गंगा । गुन अकास कौ = आकाश का गुण अर्थात् शब्द । रवि तै त्रै जननी = भूमि (रवि तै त्रै रवि से तीसरा नक्षत्र मंगल, उसकी जननी भूमि) । मुच = शुचि, पवित्र । सबदाभूषन = (१) शब्द प्रमाण, (२) शब्द प्रमाणालकार । दासी = कुब्जा से तात्पर्य है ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्वव से कह रही है ।

अर्थ—(हे उद्वव !) जैसी अद्भुत बात जान-बूझकर कृष्ण ने हमारे साथ की है, ऐसी बात अब तक नहीं सुनी गई । वेद-वचन पुकार कर कहते हैं कि सागर गंगा से पवित्र होता है । शास्त्र विचार करके बताते हैं कि शब्द साधना से शुद्ध होते हैं । फिर बताया गया है कि भूमि स्स्कार से शुद्ध होती है और स्त्री के आधार रति-क्रीड़ा से शुद्ध होते हैं, इस सत्य को बुद्धिमानों ने सुना है और जाना है । इन सभी को शुद्ध करने का लक्षण शब्द-प्रमाण से जाना गया है । पर यह तो बताओ कि कृष्ण ने कुब्जा को किम भांति शुद्ध किया है । अथवा इस पद में शब्द प्रमाणालकार है ।

शब्द प्रमाणालकार—जहाँ शास्त्र और लोक के प्रमाणों का वर्णन हो, वहाँ शब्द प्रमाणालकार होता है । इस पद में वेद, शास्त्र और लोक-वचनों को प्रमाण बताया गया है, अतः शब्द प्रमाणालकार है ।

: १८७ :

भू-सुत-मेघ-काल-निसि-इनके-आदि-बरन चित आवे ।

तरु भामिन बन जाते जानौ मद्ध बरन बिसराव ॥

अबल हुतासन केर संदेसौ तुमहूँ मद्ध निकासौ ।

हिम-के-उपल-तलाई-अतैं जाकें जुगत प्रकासौ ॥

हम तो बंधों स्याम गुन सुन्दर छोरन हार न कोई ।

जो ब्रज तजौ अर्थपति सूरज, सब सुख दाइक जोई ॥१०४॥

शब्दार्थ—भू-सुत-मेघ-काल-निसि-इनके-आदि बरन = कुब्जा (भूसुत मंगल अर्थात् कुंज, मेघ-काल वर्षा, निसि जामिनी, वर्षा और जामिनी शब्दों के आदि-वर्णों को मिलाने से 'कुब्जा' बना) । तरु भामिन बन मद्ध बरन गोपियों को (तरु सागोन, भामिन भामिनी कोपिनी, बन कानन, सागोन, कोपिनी और कानन शब्दों के मध्य वर्णों के मिलाने से बना—गोपिन अर्थात् गोपियों को) । अबल हुतासन मद्ध निकासौ = योग (अबल अगोर, हुतासन अग्नि, अगोर और अग्नि के मध्य वर्णों से बना—जोगि अर्थात् योग) । हिम-के-उपल-तलाई-अतैं = काशी (हिम के उपल ओला अर्थात् करका, तलाई सरसी, करका और सरसी के अत वर्णों-को मिलाने से बना—काशी

अर्थात् काशी) । अर्थपति = (१) स्वार्थी, (२) अर्थापत्ति अलंकार ।

प्रसंग—गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं ।

अर्थ—(हे उद्धव! कृष्ण का) मन कुब्जा पर आ गया है, इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने गोपियों को भुला दिया है । तुम (भी अपने) योग के संदेश को (हमारे) बीच में से निकाल दो, अर्थात् अपना योग-संदेश बंद करो और (इसे) काशी में जाकर युक्तिपूर्वक प्रकाशित करो । हम तो कृष्ण की गुण-रूपी डोरी से बँधी हुई हैं जिससे हमें कोई नहीं छुड़ा सकता । सब प्रकार के सुख देने वाले (कृष्ण ने तो) स्वार्थी बनकर ब्रज को छोड़ दिया है । अथवा इस पद में अर्थापत्ति अलंकार है ।

अर्थापत्ति अलंकार—जहाँ किसी अनुपपाद्य अर्थ को देखकर उसके उपपादक अर्थ की कल्पना की जाये, यहाँ अर्थापत्ति अलंकार होता है । यहाँ कृष्ण को 'सुखदायक' बताया गया है, पर गोपियों के वचन सुनकर तथा उनके प्रति कृष्ण के व्यवहार को देखकर इसमें 'सुखदायक' अर्थ की कल्पना करनी पड़ती है, अतः अर्थापत्ति अलंकार है ।

: १८८ :

सिंधु-रिपु-भक्ष-पति-पिता-कौ-सत्रु सेना साज ।

चलो आवत आज भू पर कर अनूपम काज ॥

सम्भु-भक्ष के पत्र बन दो बने चक्र अनूप ।

देव कं कौ छत्र छावत, सकल सोभा रूप ॥

आड़ केसर की करी अधरातका सुचि सोइ ।

लपट लट की रज्जुका, भू जुग जुवा जनु जोइ ॥

सिंधु-रिपु-हित-तासु-पतिनी-मात-सुत-के-रंग ।

कीन सुन्दर सारथी सुख पूर पावन अंग ॥

ब्रह्मचारी-पिता-माता-मात नीतन जोर ।

करे बाहनहार दोऊ जगत की गति तोर ॥

हेत श्री ब्रजराज जीतन चलो आवत भूर ।

सूर रसवत देखिये नंदनंदन जीवन-मूर ॥१०५॥

शब्दार्थ—सिंधु-रिपु-भक्ष-पति-पिता-कौ-सत्रु = कामदेव (सिंधु-उदधि अर्थात् दधि, उसका रिपु बिलाव, उसका भक्ष्य मूषक, उसका पति गणेश, उसका पिता शिव, उसका शत्रु कामदेव) । सम्भु-भक्ष = शिव का भक्ष्य धनूरा अर्थात् कनक = स्वर्ण । बन = कानों में (बन कानन, कानन कानों में) । चक्र = तर्पण, रथ के पहिए । देव कं = कमल (देव सुमन पुष्प, कं जल, जल का पुष्प अर्थात् कमल) । अधरातका = अधर में रहने वाले अर्थात् धुरे । रज्जुका = रस्सी, बागडोर । भू = भू, भौंह । सिंधु-रिपु-हित-तासु-पतिनी-मात-सुत-के-रंग = लाल (सिंधु-रिपु अंगस्त्य, उसका हित राम, उसकी पत्नी सीता, उसकी माता पृथ्वी, उसका सुत मंगल, मंगल का रंग लाल माना गया है) । ब्रह्मचारी-पिता-माता-मात = मछली (ब्रह्मचारी शुकदेव, उसका पिता

व्यास, उसकी माता सत्यवती, उसकी माना मछनी) । बाहनहार=भार को वहन करने वाले अर्थात् घोड़े । रसवत=(१)रस-रूप (२) रसवत अलंकार ।

प्रसंग—सखी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) आज (राधा-रूपी) कामदेव अपनी सेना को सजाकर अनुपम कार्य करने के लिए पृथ्वी पर चला आ रहा है । उसके कानों में स्वर्ण के बने हुए दो अनुपम चक्र हैं (जो मानो उसके) रथ के पहिये हैं । वह मस्तक पर (शशि-फल) धारण किये हुए है जो मानो सम्पूर्ण शोभा-रूपी कमलों का छत्र है । केसर की लगाई हुई आड़ ही (मानो उस रथ के) सुन्दर धुरे हैं । उसकी उलभी हुई लटें (ही मानो घोड़ों की बागडोर और) दोनों भौहें ही (मानो) जुआ है । सुखपूर्वक पवित्र अंग में (लगी हुई) लाल विंदी ही (मानो) सारथी है । जगत की गत को तोड़ने वाली मछली के समान उसके शक्तिशाली नेत्र (ही मानो) दो भार-वहन करने वाले घोड़े हैं । यह सुन्दर (राधा-रूपी कामदेव मानो) कृष्ण को जीतने के लिए चला आ रहा है । मूरदास कहते हैं कि उस जीवनमूल कृष्ण को रमरूप में ही देखिए । अथवा इस पद में रसवत अलंकार है ।

रसवत अलंकार—जहाँ एक रस किसी दूसरे रस का अंग बन जाता है, वहाँ रसवत् अलंकार होता है । यहाँ वीररस शृंगाररस का अंग है, अतः रसवत् अलंकार है ।

: १८६ :

है ब्रजचंद चंद चकोर ।

हूँ रहूँगे कबहि नैना नेह-नातों जोर ॥

धातु-देस-बिचार-कर-बिपरीत-पहिलै-जोर ।

पाछिले-कर-पहिल-दीरघ-बहुरि-लघुता-ओर ॥

बार-कर-बिपरीत इनकी मोहि नाहि निहोर ।

जनम संगी अंग के को संग का के घोर ॥

यहै निस दिन मोहि चिता, समुझ सजनी तोर ।

मूरदास पुकार कासों करे बिन घन-मोर ॥१०६॥

शब्दार्थ—ब्रजचंद=ब्रज का चन्द्रमा अर्थात् कृष्ण । नेह-नातों=प्रेम का सम्बन्ध । धातु-देस-बिचार-कर-बिपरीत-पहिलै-जोर=माता (धातु तामा, देस मालवा, ताता और मालवा के प्रथम अक्षरों को जोड़ने से 'तामा' शब्द बना जिसका उल्टा शब्द हुआ—माता) । पाछिले-कर-पहिल-दीरघ-बहुरि-लघुता-ओर=पिता ('माता' शब्द के 'ता' शब्द को दीर्घ करने से 'ता' और लघु करने से 'त' हुआ, दोनों को जोड़कर 'तात' शब्द बना जिसका अर्थ है पिता) । बार-कर-बिपरीत=लज्जा (बार बारि जल, जल का विपरीत लज अर्थात् लज्जा) । घन=(१)बादल, (२) कृष्ण ।

मोर = (१) मयूर, (२) मन ।

प्रसंग—कृष्ण के प्रति आसक्त नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) मेरे नेत्र न जाने कब तक कृष्ण के मुख-रूपी चंद्रमा से प्रेम का सम्बन्ध जोड़ कर उसके चकोर बने रहेंगे ? (कृष्ण के प्रति आसक्त होने में) मुझे अपने माता-पिता की लज्जा बिल्कुल भी नहीं है । हे सखि ! मुझे रात-दिन यही चिंता लगी रहती है कि (माता-पिता तो) जन्म के ही साथी हैं, अंग का साथी भला कौन हुआ है । (आगे) तेरी समझ है । सूरदास कहते हैं कि (उस आसक्त नायिका का) मन-मयूर कृष्ण-घन को छोड़कर किससे पुकार करे । (इस पद में प्रेयस् अलंकार है) ।

प्रेयस् अलंकार—जहाँ कोई भाव किसी दूसरे भाव का अथवा किसी रस का अंग होता है, वहाँ प्रेयस् अलंकार होता है । इस पद में चिता भाव शृंगार रस का अंग है, अतः प्रेयस् अलंकार है ।

: १६० :

अदल-पति-रिपु-पिता-पतिनी अब न जँहै फेर ।

बात-सुत-भ्राता-अप्रिय-के-बिन सुभाव-न-हेर ॥

भानु-तपन-किसान-ग्रह-के रच्छपालक आद ।

मद्ध ठाढी होत नंदननंद कर उनमाद ॥

नदिन के उर ताल मारत महा मार प्रयोग ।

मरन देत न जियन सजनी गरक गाढ़त रोग ॥

सिंधु-रिपु-हित-तासु-पतिनी-भ्रात-सिब-कर-जौन—

आदि, कासो पढ़ी बेरी जान परत न तौन ॥

देख बिन मन अरत आपन, देख बिन न रहात ।

सूर संकर करन भूषन जो जगत विख्यात ॥१०७॥

शब्दार्थ—अदल-पति-रिपु-पिता-पतिनी = यमुना (अदल पार्वती, उसका पति शंकर, उसका रिपु कामदेव, उसका पिता कृष्ण, उसकी पत्नी यमुना) । बात-सुत-भ्राता-अप्रिय-के-सुभाव = सखी (बात पवन, उसका सुत भीम, उसका अप्रिय भ्राता कर्ण, उसका स्वभाव दानी, दानी सखी) । बिन न हेर = बिना नहीं देखूँगी । भानु-तपन-किसान-ग्रह-के-रच्छपालक-आद = घाट (भानु-तपन घाम ; किसान के गृह की रक्षक टट्टी ; घाम और टट्टी के आदि-वर्णों को मिलाने से बना—घाट) । नदिन = नयन (नदि = नय + न = नयन) । ताल = बाण (ताल सर, सर बाण) । सिंधु-रिपु-पित-तासु-पतिनी-भ्रात-सिब-कर-जौन-आदि = मंत्र (सिंधु-रिपु अगस्त्य, उसका हितू राम, उसकी पत्नी सीता, उसका भ्राता मंगल ; सिब-कर-जौन जो वस्तु शिव के हाथ में है अर्थात् त्रिशूल या त्रयशूल ; मंगल और त्रयशूल के आदि-वर्णों को मिलाने से बना—मंत्र) । संकर = (१) द्विविधा, (२) संकर नामक अलंकार । विख्यात = प्रसिद्ध ।

प्रसंग—नायिका अपनी सखी से कह रही है ।

अर्थ—(हे सखि !) अब मैं फिर यमुना पर नहीं जाऊँगी । सखी के बिना (अकेली) तो मैं (उस ओर) देखूँगी भी नहीं, (क्योंकि वहाँ) घाटों के बीच में उत्साह से भरे हुए कृष्ण खड़े हो जाते हैं और (अपने) नयनों से हृदय में बाण मारते हुए, अत्यन्त घातक पीड़ा पहुँचाते हैं । हे सखि ! (इस प्रकार) वे न तो मरने देते हैं और न जीने देते हैं, वरन् (कामदेव-रूपी) रोग के गहरे गढे में गाड़ देते हैं । (न जाने) किमं शत्रु से उन्होंने (यह) मंत्र सीखा है । उन्हें देखने से वे मन को अपना बना लेते हैं (और उनके) बिना देखे रहा भी नहीं जाता । सूरदास कहते हैं कि उनकी जग-प्रसिद्ध शोभा द्विविधा में डालने वाली है । अथवा इस पद में संकर अलंकार है ।

संकर अलंकार—जहाँ एक से अधिक अलंकार परस्पर दूध-पानी की भाँति मिले रहते हैं, वहाँ संकर अलंकार होता है । इस पद में रूपक, विभावना आदि अनेक अलंकार परस्पर मिले हुए हैं । अतः संकर अलंकार है ।

: १६१ :

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।

दसन गौरीनंद कौ लिखि, सुबल संबत पेख ॥

नदनंदन मास छै-तै-हीन-त्रितिया, बार—

नंदनंदन जनम ते है बान सुख आगार ॥

त्रितिय-रिच्छ सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन ।

नंदनंदन-दास हित साहित्य-लहरी कीन ॥१०८॥

शब्दार्थ—मुनि=७ । पुनि=फिर । रसन=रसना=१ । रस=६ । दसन गौरीनंद कौ=गणेश का दाँत अर्थात् १ । इस प्रकार 'मुनि पुनि रसन के रस लेख दसन गौरीनंद कौ लिखि सुबल संबत पेख' का अर्थ हुआ—संवत् १६१७ वि० । नंदनंदन-मास=वैशाख मास । छै-तै-हीन-त्रितिया=अक्षय तृतीया । बार-नंदन-नंदन-जनम-ते-है-बान=बार नंदन-नंदन-जनम बुधवार ; बाण पाँच, अर्थात् बुधवार से पाँचवाँ बार अर्थात् रविवार । त्रितिय-रिच्छ=तीसरा नक्षत्र अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र । नंदनंदन-दास-हित=कृष्ण-भक्तों के लिए ।

प्रसंग—इस पद में कवि ने साहित्य-लहरी का रचनाकाल बताया है ।

अर्थ—सुबल संवत् १६१७ वि० के वैशाख मास की अक्षय तृतीया, सुखागार रविवार, कृत्तिका नक्षत्र तथा सुकर्म योग में सूरदास ने नये विचार (से युक्त) साहित्य-लहरी की रचना कृष्ण-भक्तों के लिए की ।

विशेष—इस पद की टीका में विद्वानों में मतभेद है । कुछ मत इस प्रकार है—

१. 'रसन' का अर्थ 'शून्य' मानकर सरदार कवि, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य-लहरी का रचना-काल संवत् १६०७ वि० माना है ।

२. डा० मुंशीराम शर्मा ने 'सुबल' के पर्यायवाची 'वृषभ' संवत् के कारण इसका रचना-काल सं० १६२७ वि० सिद्ध किया है ।

३. 'मुनि पुनि' का अर्थ 'फिर से ७' करने पर इसका रचना-काल संवत् १६७७ सिद्ध होता है ।

सूर-सारावली के कूट

: १६२ :

सिधु-सुता-सुत-त-रिपु गमनी, सुन मेरी तू बात ।

काम-पिता-बाहन-भख-कौ-तन, क्यों न धरत निज गात ॥६३७॥

शब्दार्थ—सिधु-सुता-सुत-त-रिपु-गमनी=हंस-गामिनी (सिधु-सुता सीपी, उसका सुत मोती, उसका रिपु हंस+गमनी=हंगगामिनी। काम-पिता-बाहन-भख-कौ-तन=शीघ्र गति (काम प्रद्युम्न, उसका पिता कृष्ण अर्थात् विष्णु, उसका बाहन गरुड़, उसका भक्ष्य सर्प, सर्प कौ तन सर्प की गति अर्थात् शीघ्र गति) ।

प्रसंग—मानवती राधा की सखी उसे कृष्ण से मिलने के लिए प्रेरित करती हुई कह रही है ।

अर्थ—हे हंस-गामिनी राधे ! तू मेरी बात सुन । तू अपने शरीर में सर्प-जैसी शीघ्रगति को धारण क्यों नहीं करती ? अर्थात् तू शीघ्रता से जाकर कृष्ण से क्यों नहीं मिलती ?

: १६३ :

अलि-बाहन-पति-बाहन रिपु की तपत बढ़ी तन भारी ।

सैल-सुता-सुत-ता-सुत-अँगना, सो तबै बिसारी ॥६३८॥

शब्दार्थ—अलि-बाहन-पति-बाहन-रिपु = कामदेव (अलि-बाहन कमलिनी, उसका पति चन्द्रमा, उसका बाहन अर्थात् उसको धारण करने वाला शिव, उसका रिपु कामदेव । सैल-सुता-सुत-ता-सुत-अँगना = कोमलता (सैल-सुता नदी, उसका सुत जल, उसका सुत कमल, उसकी अँगना कोमलता) । तबै=तभी से ।

प्रसंग—मानवती राधा की सखी, उससे कह रही है कि वह अपनी कठोरता छोड़कर कृष्ण से तुरन्त मिले ।

अर्थ—(हे राधे ! कृष्ण के) शरीर में कामदेव की भारी तपन बढ़ी हुई है । (और) तूने (अपने मन की) कोमलता को तभीसे (मान के अवसर के समय से) त्याग दिया है । भाव यह है कि तुम अपनी मानजन्य कठोरता को छोड़कर कृष्ण से शीघ्र मिलो, क्योंकि वे तुम्हारे विरह में बहुत दुःखी है ।

: १६४ :

भृंग-जूथ चतुरानन-तनया ब्रह्मनाद सुर-संग ।

जल-सुत-बाहन सो जन ध्वन, बिषम लगत बिष अँग ॥६३९॥

शब्दार्थ—भृङ्ग-जूथ=अलीगण, सखियों का समूह (भृङ्ग अली, सखी को भी अली कहते हैं ; जूथ समूह) । चतुरानन-तनया=सरस्वती । ब्रह्मनाद-सुर-संग=मौन (ब्रह्मनाद ओ३म् ; इसका 'अ' सुर के साथ असुर, असुर स्वर-रहित अर्थात् मौन) । जल-सुत-बाहन=देह (जल-सुत जोंक, उसका बाहन करने वाली अर्थात् देह) । जन=नारी से अभिप्राय है । विषम=दुःखदायी ।

प्रसंग—मानवती राधा की सखी उससे कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) जो नारी अपनी सखियों के समूह से भी मौन धारण किये रहती है, अर्थात् उससे भी नहीं बोलती, वह सबके अगो मे दुःखदाई विष सी लगती है—सभी को विषम कष्ट देती है ।

: १६५ :

चतुरानन-सुत-ता-सुत-वा-सुत, उदित होन अब आयो ।

मनमथ-मात-तात-सुत अथयौ, सो तो बृथा गमायौ ॥६५०॥

शब्दार्थ—चतुरानन-सुत-ता-सुत-वा-सुत=सूर्य (चतुरानन ब्रह्मा, उसका सुत मरीचि, उसका सुत कश्यप, उसका सन सूर्य) । मनमथ-मात-तात-सुत=चन्द्रमा (मनमथ कामदेव, उसकी माता लक्ष्मी, उसका पिता समुद्र, उसका सुत चंद्रमा) । अथयौ=अस्त हो गया है ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी मान-मोचन का प्रयास करती हुई कह रही है ।

अर्थ (हे राधे !) अब सूर्य उदित होने वाला है (क्योंकि) चंद्रमा अस्त हो गया है । (रात्रि का यह समय जो रति क्रीड़ा के लिए उपयुक्त था) वह तूने व्यर्थ में ही (मानवती रहकर) व्यतीत कर दिया है ।

: १६६ :

पंकज-उर पंकज जिन केरे, तेरो अटल सुहाग ।

सुरपति-बाहन-ता-सुत सिर पर, मांग भरो अनुराग ॥६४१॥

शब्दार्थ—पंकज उर=हृदय कमल । पंकज=कमल । सुरपति-बाहन-ता सुत=सिद्धर (सुरपति इन्द्र, उसका बाहन हाथी, उसका सुत मिथुर अर्थात् सिद्धर) । अनुराग=प्रेम ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) जिनके (कृष्ण के) हृदय कमल में तू कमल (के सदृश सुशोभित) है, (और जिनके कारण) तेरा सौभाग्य अटल है (उन्ही कृष्ण के) प्रेम (के चिन्ह के रूप) में तू अपनी मांग में सिद्धर भर ।

विशेष—काव्य रूढ़ि के अनुसार प्रेम (अनुराग) का रंग लाल माना गया है ।

: १६७ :

कमल-पुत्र-ता-सुत कर राजत, सो हरि निज करि लीन्हे ।

सप्त सुरन उपजाय बजावत, रटन राधिका कीन्हे ॥६४२॥

शब्दार्थ—कमल-पुत्र-ता-सुत = नारद (कमल पुत्र ब्रह्मा, उसका सुत नारद) ।
कर राजत = हाथ में सुशोभित रहती है । हरि = कृष्ण ।

प्रसंग—राधा की गम्भी राधा से उसके प्रति कृष्ण के अनुराग का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—जो वीणा नारद के हाथ में सुशोभित रहती है, उसे ही कृष्ण अपने हाथों में लेकर और उसमें सात स्वरो की उत्पत्ति करके तथा उन्हें बजाते हुए राधा-राधा की रट लगा रहे हैं । कहने का भाव यह है कि कृष्ण रात-दिन तुम्हारा ही नाम रटते रहते हैं, अतः उनसे विमुख करने वाला मान तुम्हें शोभा नहीं देता ।

: १६८

सुत-प्रह्लाद-तासु-सुत-ता-पितु-भ्राता वृथा गंवागौ ।

सज्जा-सुत बपु सद्रस बसन तन सो तन लागत छायाँ ॥६४३॥

शब्दार्थ—सुत-प्रह्लाद-तासु-सुत-ता-पितु-भ्राता = स्वर्ग (सुत प्रह्लाद प्रह्लाद का सुत बयरोचन, उसका सुत बालि, उसका पिता सूर्य, उसका भ्राता हिरण्य, हिरण्य स्वर्ग को भी कहते हैं) । सज्जा-सुत = यम (सज्जा सूर्य की पत्नी का नाम, उसका सुत यम) । बपु = शरीर । बसन = वस्त्र ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी गम्भी कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! मान के कारण कृष्ण से विमुख होकर तूने) स्वर्ग (के समान अपने शरीर की कांति) को व्यर्थ ही नष्ट कर दिया है (और इसी कारण) यम के शरीर तथा वस्त्रों के समान (कालिमा) तेरे शरीर पर छाई हुई है । कहने का भाव यह है कि तूने जो मान-मूचक काले वस्त्र धारण कर रखे हैं, उससे तेरे शरीर की कांति भी लुप्त हो गई है ।

: १६९ :

सारंग ऊपर सारंग राजत, सारंग सब्द सुनावै ।

सारंग देख सुनै मृगननी, सारंग मुख दरसावै ॥६४४॥

शब्दार्थ—सारंग ऊपर सारंग राजत = बादल पर बादल सुशोभित हो रहे हैं । सारंग सब्द सुनावै = मोर कूक रहे हैं । सारंग = सरसता । सारंग = कामदेव ।

प्रसंग—उमड़ती हुई घटाओं की ओर संकेत करती हुई मानवती राधा की सखी उसका मान-विमोचन करने का प्रयत्न करती हुई उससे कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! देख तो सही) बादल पर बादल सुशोभित हो रहे हैं; अर्थात् बादल आकाश में घुमड़ रहे हैं (जिन्हें देखकर) मोर कूक रहे हैं । हे मृगनयनी ! (प्रकृति की इस) सरसता को जो भी देखता तथा सुनता है, उसी को कामदेव का मुख दिखलाई देता है ।

: २०० :

सारंग-रिपु की बदन ओट दें, कहा बंठी है मौन ।

ब्रह्मसुता सारंग के धोखे, करत सकल ब्रज गौन ॥६४५॥

शब्दार्थ—सारंग-रिपु=वस्त्र (सारंग दीपक, उमका रिपु वस्त्र) । वदन=मुख । ब्रह्मसुता=वाणी अर्थात् कोयल की मधुर कूक । सारंग=कोयल । गौन=गमन करना, विचरण करना ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी गमभा रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) तू अपने मुख को वस्त्र में (घुँघट में) छिपाकर क्यों चुप बैठी हुई है । (देख तो मही इस समय) कोयलों की मधुर कूक के मिम वाणी ही सारे ब्रज में विचर रही है । कहने का भाव यह है कि तेरे चुप रहने के कारण ही ब्रज में कोकिलाएँ कूक रही हैं । यदि तू अपनी मधुर वाणी से प्रियतम से प्रेमालाप करना प्रारम्भ कर देगी तो तेरे माधुर्य से उनकी वाणी का माधुर्य फीका पड़ जायेगा और वे लज्जित होकर चुप हो जायेंगे । अतः तू शीघ्र ही अपने प्रियतम (कृष्ण) से मान छोड़कर प्रेमालाप कर ।

: २०१ :

सारंग-सुता देख सारंग कौं, तेरो अटल भूभाग ।

सारंग-पति-ता-पति-ता-बाहन, कीरत रट अनुराग ॥६४६॥

शब्दार्थ—सारंग-सुता=आल्हादिनी (सारंग आल्हाद, उमकी सुता आल्हादिनी) । सारंग=कृष्ण । सारंग-पति-ता-पति-ता-बाहन=मुरली (सारंग वादल, उसका पति इंद्र, उमका पति कृष्ण, उसकी बाहन की हुई अर्थात् मुरली) । कीरत=कीर्ति, यश । अनुराग=प्रेम ।

प्रसंग—मानवती राधा को कृष्ण के प्रति आकृष्ट करने के लिए तथा मान-विमोचन की प्रेरणा देती हुई उसकी सखी उसमें कह रही है ।

अर्थ—हे आल्हादिनी ! तू कृष्ण की ओर देख (क्योंकि वही) तेरा अटल सौभाग्य है । (वह तुझमें इतना अनुरक्त है कि अपनी) मुरली में प्रेमपूर्वक वह तेरे ही यश का गान करता रहता है ।

: २०२ :

दधि-सुत-बाहन सुभग नासिका, दधि सुत बाहन देख्यौ ।

दधि-सुत-बाहन बचन सुनत तुव, अंग-अंग अबरेख्यौ ॥६४७॥

शब्दार्थ—दधि-सुत-बाहन=शुक (दधि-सुत कामदेव, उमका बाहन शुक अर्थात् तोता) । सुभग=सुन्दर । दधि-सुत-बाहन=शंख (दधि-सुत जल, उमका बाहन शंख) । दधि-सुत-बाहन=क्रोध (दधि-सुत जालधर, उमका बाहन क्रोध अर्थात् क्रोध) । अबरेख्यौ=विचलित हो जाते हैं ।

प्रसंग—मानवती राधा की सखी उसमें कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तेरी) शुक (की चंचु के समान) सुन्दर नासिका (और) शंख (के समान सुन्दर ग्रीवा) को देखकर (कृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु) तेरे क्रोधयुक्त वचनों को सुनकर (उनके) अंग-अंग विचलित हो जाते हैं ।

: २०३ :

ससि-कौ-भ्रात-कहत-ता-बाहन, कुंद कुसुम ललचात ।

खंजन सदस देख तुव अंखियाँ, तन मन मैं अकुलात ॥६४८॥

शब्दार्थ—ससि-कौ-भ्रात-कहत-ता-बाहन = अधर (ससि-कौ-भ्रात अमृत, उसका बाहन अधर) । तुव = तेरी ।

प्रसंग—मानवती राधा की मन्वी उससे कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तेरे अमृत से भरे हुए) अधर (तथा) कुंदकनी के समान दाँतों को देखकर (कृष्ण उनकी शोभा पर) ललचा जाते हैं, पर खंजन-मदश्य तेरी आँखों को देखकर वे तन-मन में अकुला जाते हैं; अर्थात् पूर्णतया व्यथित हो उठते हैं ।

: २०४ :

मारुत सुरपति-रिपु-ता-पतिनी-ता-सुत-बाहनबात ।

खवन सुनत अकुलात साँदरी, कछुक कही नहिं जात ॥६४९॥

शब्दार्थ—मारुत = पवन । सुरपति-रिपु-ता-पतिनी-ता-सुत-बाहन = कोयल (सुरपति-रिपु दैत्य, उनकी पत्नी विनासिता अर्थात् रति, उगका सुत वसंत, उसकी बाहन कोयल) । साँदरी = कृष्ण ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती मानवती राधा से कृष्ण की विरह-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) पवन और कोयल (की कूक) की बात सुनते ही (तेरे वियोग से व्यथित) कृष्ण इतने व्याकुल हो जाते हैं कि फिर उनसे कुछ भी नहीं कहा जाता ।

: २०५ :

चतुरानन-सुत-ता-सुत-पतिनी-ता-सुत-कौ-जो-दास—

ता-सुत-बाहन-पुत्र-अंग धरि जल सुतकरौ प्रकास ॥६५०॥

शब्दार्थ—चतुरानन-सुत-ता-सुत-पतिनी-ता-सुत-कौ-जो-दास-ता-सुत-बाहन-पुत्र-अंग = अंगराग (चतुरानन ब्रह्मा, उसका सुत मरीचि, उसका सुत कश्यप, उसकी पत्नी दिति, उसका दाम अरुण, उसका वाहन प्रातःकाल, उसका पुत्र अरुणोदय जिसे लाल रंग या राग भी कहा जा सकता है; अंग और राग को जोड़ने से बना—अंगराग) । जल-सुत = कमल अर्थात् मुख-कमल ।

प्रसंग—मानवती राधा को उसकी सखी समझा रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तू अपना मान छोड़कर प्रियतम से मिलने के लिए) अंग-राग धारण करके (अपनी मुख) कमल को प्रकाशित कर; सौन्दर्य की वांछ से युक्त बना ।

२०६ .

श्री बलदेव रास जे कहिए, तामैं भानु मिलाइ -

ताकी मुता, कहत चतुरानन, निगम सदा गुन गाइ ॥८५१॥

शब्दार्थ—श्री बलदेव रास जे कहिए तामैं भानु मिलाइ ताकी मुता—राधा (श्री बलदेव हृन्धर अर्थात् वृष; इसमें भानु मिलाने से बना वृषभानु; वृषभानु की मुता राधा) । चतुरानन—ब्रह्मा । निगम—वेद ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! ब्रह्मा का (भी) कथन है कि वेद (भी) सदा तेरे ही गुणों का गान करने हैं । भाव यह है कि तू परम गुणवती है, अतः मान करना तुझे शोभा नहीं देता ।

: २०७ :

सिंधु-सता तुव भाग्य बिलोकत, मन मै रही लजाइ ।

काम-पिता-माता-गुरु-ता-बपु, जुबति कोटि दरसाइ ॥८५२॥

शब्दार्थ—सिंधु-मुता—लक्ष्मी । तुव—तव, तेरा । काम-पिता-माता-गुरु-ता बपु=पीली (काम कामदेव, उसका पिता विष्णु उसकी माता अदिति, उसका गुरु बृहस्पति, उसका शरीर पीला अर्थात् पीली) । जुबति=युवती । कोटि=करोड़ों । दरसाइ=दिखाई देती है ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तुम इतनी मौभाग्यशालिनी हो कि) लक्ष्मी तुम्हारे मौभाग्य को देखकर अपनी हीनता का अनुभव करके अपने मन में लज्जित होती है । तुम्हारी रूप काति को देखकर करोड़ों युवनियाँ पीली दिखाई देती हैं ।

: २०८ :

सातौ-रास-मेल-द्वादस-मै, ऐसे बीतत जाम ।

दुतिय रास मै मिलत सप्तमी, सो जानत निज धाम ॥८५३॥

शब्दार्थ—सातौ-रास-मेल-द्वादस-मै—हीरा जटित स्वर्णभूषण (सातौ रास सातवी राशि अर्थात् तुला, तुला का स्वामी शुक्र अर्थात् हीरा हीरा जटित) । द्वादस बारहवी राशि मीन, मीन का स्वामी बृहस्पति अर्थात् स्वर्ण = स्वर्ण, हीरा जटित स्वर्णभूषण) । ऐसे=व्यर्थ ही । जाम=याम, प्रहर । दुतिय रास=गौण्ड (द्वितीय राशि वृष अर्थात् गो, रास स्थान, गो स्थान अर्थात् गोष्ठ) । सप्तमी—पानवी राशि तुला अर्थात् तुल्य ।

प्रसंग—मानवती राधा से उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) तू तुरत मान को छोड़ दे, क्योंकि मिलन योग्य प्रहर व्यर्थ ही बीता जा रहा है । अतः तू हीरा जटित स्वर्णभूषण धारण करके कुण्ड से गौण्ड में मिल, जिसे वे अपने धाम (परम धाम) के तुल्य मानते हैं ।

: २०९ :

सैल सुता-धरि-ता-रिपु बाधत, अंग-अंग प्रिय आज ।

कोटि जतन कर सींचत तोऊ मिटत नहीं ब्रजराज ॥६५४॥

शब्दार्थ—सैल-गुना-धरि-ता-रिपु = कामदेव (सैल सुता गंगा, उसको धारण करने वाला शिव, उसका रिपु कामदेव) । बाधत=पीड़ा दे रहा है । सींचत = शांत करते हैं । तोऊ=तो भी ।

प्रसंग—कृष्ण की विरह व्यथा का वर्णन दूती राधा से कर रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) आज तुम्हारे प्रियतम कृष्ण के प्रत्येक अंग को कामदेव पीड़ा दे रहा है । वे उसे करोड़ों उपायों से शांत करने हैं, तो भी वह शांत नहीं होती । भाव यह है कि तुम उनसे शीघ्र ही मिलकर उनकी विरह-व्यथा को शांत करो ।

: २१० :

बायस-अजा-शब्द मनमोहन, रटत रहत दिन-रैन ।

तारापति-के रिपु पर ठाड़े, देखत हैं हरि नैन ॥६५५॥

शब्दार्थ—बायस-अजा-शब्द = काम के लिए (बायस कौवा, उसका शब्द काँय, अजा बकरी, उसका शब्द मै, दोनों मिलकर बना = कामै, अर्थात् काम के लिए) । तारापति-के-रिपु = राह (तारापति चन्द्रमा, उसका रिपु राहु अर्थात् राह) ।

प्रसंग—दूती मानवनी राधा से कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) कृष्ण दिन-रात काम के लिए रट लगाये हुए हैं और राह में खड़े होकर उनके नेत्र तुम्हारी आनुरता से प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

: २११ :

गंगा सुत रिपु-रिपु सिख मेरी, सुनत नहिं सखि काह ।

नारायण-सुत-ता-सुत-ता-सुत, लगत बिषम बिष ताह ॥६५६॥

शब्दार्थ—गंगा-सुत-रिपु-रिपु = कान (गंगा सुत भीष्म, उनका रिपु अर्जुन, अर्जुन का रिपु कर्ण अर्थात् कान) । काह = क्यों । नारायण-सुत-ता-सुत-ता-सुत = वज्र हृदय (नारायण कृष्ण, उसका सुत प्रद्युम्न, उसका सुत अनिरुद्ध, उसका सुत वज्रनाभ अर्थात् वज्र हृदय) ।

प्रसंग—मानवनी राधा से उसकी सखी कह रही है ।

अर्थ—हे गणि ! तू मेरी शिक्षा कान देकर ध्यान से क्यों नहीं सुनती । (कृष्ण के प्रति तेरी यह उदासीनता) उनके वज्र-हृदय में विषम विष (के समान) लगती है ।

: २१२ :

जल सुत-बाहन देख बदन तुव, ब्रह्मसुता अकुलानी ।

मंगल-मानु-तासु-पति-बाहन, राजत सदस भुलानी ॥६५७॥

शब्दार्थ—जल-सुत-बाहन = कानिहीन (जल सुत चन्द्रमा, उसका बाहन द्विग, जिसे कुरग भी कहते हैं, कुरग = बदरग अर्थात् कानिहीन) । बदन = मुख । तुव = तब, तेरा । ब्रह्मसुता = सरस्वती, जिसे वाणी भी कहते हैं । मंगल मानु तासु पति बाहन = दंड (मंगल मानु पृथ्वी, उसका पति राजा, उनका बाहन दंड) ।

प्रसंग—दूती राधा से कृष्ण की विरह-व्यथा का वर्णन कर रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) तेरे कांतिहीन मुख को देख कर (कृष्ण की) णी भी अकुला गई है; अर्थात् वे अपने मन की व्यथा को किसी से भी नहीं कहें। (इसी कारण वे राजाओं के हाथ में) दंड के समान सुशोभित होने वाली (अपने हाथ की मुरली को भी) भूल गए हैं; अर्थात् व्यथा के कारण उन्होंने मुरली बजाना भी छोड़ दिया है।

: २१३ :

दक्ष प्रजापति की तनया पति ता सुत नार गई।

सिंधु सुता सुत बाहन की गति, देखत विषम भई ॥६५॥

शब्दार्थ—दक्ष-प्रजापति-की-तनया-पति-ता सुत-नार = मिद्धि (दक्ष प्रजापति की पुत्री सती, उसका पति महादेव, उसका सुत गरुड, उसकी नार मिद्धि)। सिंधु-सुता-सुत-बाहन = मन (सिंधु-सुता लक्ष्मी, उसका सुत कामदेव, उसका बाहन मन)।

प्रसंग—मानवती राधा से कृष्ण की दूती कह रही है।

अर्थ—(हे राधे ! तेरे वियोग के कारण कृष्ण के घर की) मिद्धि भी नष्ट हो गई है (और उनके) मन की गति विषम बन गई है; अर्थात् उनका मन सदैव दुखी रहता है।

: २१४ :

अग्नि तात तेहि तात अंगना, क्यों उनमें तू राखी।

बन्धु कुसुम द्रुम ता रिपु कौ पति सारंग रिपु कर भाखी ॥६५॥

शब्दार्थ—अग्नि-तात-तेहि-तात-अंगना = जल में बड़वाग्नि (अग्नि तात वाड-वाग्नि; उसका तात सागर, उसका अंगन जल)। बन्धु-कुसुम-द्रुम-ता-रिपु-कौ-पति = ग्रीष्म (बन्धु-कुसुम-द्रुम वृक्षों और पुष्पों का बन्धु वसन्त, उसका रिपु ताप, उसका पति ग्रीष्म)। सारंग-रिपु = केलि-क्रीड़ा की शत्रु। भाखी = बताया है।

प्रसंग—मानवती राधा से कृष्ण की दूती कह रही है।

अर्थ—(हे राधे ! तेरे गुरु मान के कारण अब कृष्ण ने) तुझे जल में वाड-वाग्नि और ऋतुओं में ग्रीष्म ऋतु (की श्रेणी में) रक्खा है, तथा तुझे केलि-क्रीड़ा का शत्रु बताया है।

: २१५ :

पति पाताल लगन तन धारन, सो सुख भुजा बिचारी।

प्रथम मथत जलनिधि जो प्रगट्यौ, सो लागत सब नारी ॥६६॥

शब्दार्थ—पति-पाताल-लगन-तन-धारन = प्रेमालिगन (पति-पाताल शेषनाग, उसका तन धारन कुंडली; लगन प्रेम; प्रेम से कुंडली मारना = प्रेमपूर्वक घेराव करना अर्थात् प्रेमालिगन)। प्रथम मथत जलनिधि जो प्रगट्यौ = विप (समुद्र-मथन के समय जो वस्तु सबसे पहले प्राप्त हुई थी; अर्थात् विप)।

प्रसंग—कृष्ण की दूती राधा से कह रही है।

अर्थ—(हे राधे ! तेरी उदामीनता के कारण कृष्ण इतने दुखी और विरक्त बने हुए हैं कि समय के समय) प्रेमालिगन से (उनकी) भुजाओं को जो सुख मिला था, उसकी याद करके (तथा दुखी होकर वे इतने विरक्त बन गये हैं कि अब) सभी

नारियाँ उन्हें विप के समान लगती हैं । भाव यह है कि उनका प्रेम केवल तुम्ही से है, अतः तुम अपना मान छोड़कर उनसे शीघ्र ही मिलो ।

: २१६ :

बन्धु-कुमुदपति-पिता-सुता जो, तुव जस मधुरे गावैं ।

ब्रह्मसुता सुत पद रज परसत, सारंग सुता दिखावैं ॥६६१॥

शब्दार्थ—बन्धु-कुमुदपति-पिता-सुता = लक्ष्मी (बन्धु-कुमुदपति = चद्रमा, उसका बन्धु अमृत, उगका पिता समुद्र, उसकी सुता लक्ष्मी) । तुव = तव, तेरा । ब्रह्मसुता-सुत = अनुराग (ब्रह्मसुता सरस्वती, उगका सुत राग; अर्थात् अनुराग) । पद-रज = चरणों की धूलि । सारंग-सुता = यमुना (सारंग सूर्य, उसकी सुता यमुना) ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती मानवती राधा से कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तुम इतनी यशस्विनी हो कि) लक्ष्मी तुम्हारे यश के मधुर गीत गाती है और यमुना यह प्रदर्शित करती है कि अनुराग तुम्हारे चरणों की धूलि का स्पर्श करता है । भाव यह है कि तुम अत्यन्त यशस्विनी एवं अनुरागवती हो । अतः मान धारण करके तुम्हें अपने यश तथा अनुराग को कलंकित नहीं करना चाहिए ।

: २१७ :

इंद्र-सुता पति भुजा लगन लखि, जलसुत हृदय लगावैं ।

इंद्र सुता तनया पति कौ सुत ताके गुनै न पावैं ॥६६२॥

शब्दार्थ—इंद्र-सुता-पति = बिजली तथा मेघ (इंद्र-सुता बिजली; उसका पति मेघ) । भुजा-लगन = भुजाओं का प्रेम; अर्थात् आलिंगन । जलसुत = कमल । इंद्र-सुता-तनया-पति-कौ-सुत = तूफान (इंद्र-सुता बिजली, उसकी तनया नदी, उसका पति समुद्र, उसका सुत ज्वार-भाटा अर्थात् तूफान) । गुनै = गुण, समता ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती मानवती राधा से कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) बिजली तथा मेघ का आलिंगन देखकर (कृष्ण तेरे विरह से व्यथित होकर तेरे स्थान में) कमल को अपने हृदय से लगाते हैं । (तेरे विरह में वे इतने दुखी हैं कि उनके व्यथा के उफान की) समुद्र का तूफान भी समता नहीं कर सकता ।

: २१८ :

धरत कमल में कमल कमल कर, मधुर वचन उच्चार ।

कमला बाहन गहत कमल सौ, कमलन करत बिचार ॥६६३॥

शब्दार्थ—कमला-बाहन = कमल (कमला लक्ष्मी, उसका बाहन कमल) ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती मानवती राधा से कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! तुम्हारे विरह से व्यथित होकर कृष्ण तुम्हारी याद करते हुए) मधुर वचनों का उच्चारण करके अपने कर-कमलों से कमल में कमल धारण करते हैं (अर्थात् तेरे जिन-जिन अंगों की उपमा कमल से दी जाती है, उन्हीं-उन्हीं अंगों पर वे उन अंगों के चिन्ह-स्वरूप रखते हैं) । तत्पश्चात् वे उनको (कमलों को) अपने कर कमलों से पकड़कर (तुम्हारी स्मृति के कारण अपने मन में) चिन्ता करते हैं । कहने का भाव यह है कि वे अर्हतिश तुम्हारा स्मरण करके चिन्ता में डूबे रहते हैं ।

: २१६ :

कार्तिदी पति नैन तामु सुत, लागत हैं सब लोग ।

इद्र मात तेहि तात सो सरधन, प्रगट देखियन भोग ॥६६८॥

शब्दार्थ—कार्तिदी-पति नैन-तामु-सुत बुद्धिहीन (कार्तिदा यमुना, पति भरता, नैन ग्रंथियाँ, यमुना, भरता और ग्रंथियों के बीच कंधों को मिलाने से बना—मुखि अर्थात् मूर्ख, मूर्ख का सुत बुद्धिहीन) । इद्र-मात-तेहि-तात = गमभदार (इद्र की माता अर्द्धि, उसका पिता दक्ष, दक्ष-गमभदार) । सरधन शृद्धा रखते हैं ।

प्रसंग—मानवनी राधा से कृष्ण की दूती कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे ! जो अपने हितकारी वचनों को नहीं मानते वे सभी लोग बुद्धिहीन होते हैं । गमभदार व्यक्ति वे हैं जो (हितकारी वचनों पर तथा उन्हें कहने वालों पर) श्रद्धा रखते हैं । हमारे प्रत्यक्ष ही वे (हितकारी वचनों का फल) भोगते दिखाई पड़ते हैं । कहने का भाव यह है कि तुम्हारी कुशलता हमें में दे कि तुम मेरी बात मानकर अपना मान छोड़ो और कृष्ण से मिलकर आनंद का भोग करो ।

: २२० :

अम्बुज मात तात पति ता रिपु ता पति काम विगारे ।

तात सुन तू भानुनंदिनी, मेरी बचन विचारे ॥६६५॥

शब्दार्थ—अम्बुज-मात-तात-पति-ता-रिपु-ता-पति क्रोध (अम्बुज मोती, उसकी माता गीपी, उसका पिता समुद्र, उसका पति विष्णु, उसका रिपु दैत्य, उसका पति क्रोध) । भानु नंदिनी = राधा ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती राधा से कह रही है ।

अर्थ—हे राधे ! क्रोध ने सबके कार्य बिगाड़े हैं । अतः तू मेरे वचनों को सुन और उन पर विचार कर ।

: २२१ :

तीस भानु द्वै मास सकत रिपु, सिंधु सुता मम जान ।

भूषन अंग लसत गुंजावलि, और न कछू समान ॥६६६॥

शब्दार्थ—तीस भानु = राधा और कृष्ण के नवशिखवाची तीस सूर्य (राधा के सौलह सूर्य—चरणों की गति के हंग दो, तूपुरों के हंग दस, आरग्री का सूर्य एक, कर्णफूल के सूर्य दो, शीशफूल का सूर्य एक । कृष्ण के चौदह सूर्य—चरणों की गति के हंस दो, तूपुरों के हंस दस, कानों के कुण्डल दो, इस प्रकार तीस सूर्य हुए) । द्वै मास = वसंत (दो मास चैत्र और वैशाख अर्थात् वसंत) । सिंधु-सुता = लक्ष्मी । गुंजावलि = गुंजाओ (घुंघचियों) की माला ।

प्रसंग—कृष्ण की दूती मानवनी राधा से कह रही है ।

अर्थ—(हे राधे !) तू अपनी तीस सूर्यों ने युक्त यौवनावस्था को तथा समस्त ऋतुओं में श्रेष्ठ वसंत ऋतु को लक्ष्मी के समान (चवन या अम्बिर) समझ । (प्रियतम के समागम के अभाव में तेरे) अंगों पर सुशोभित भूषण घुंघचियों की माला के समान (तुच्छ) है । (प्रिय के बिना इनकी) बिल्कुल भी मोटी महत्ता नहीं है । भाव यह है कि तेरे यौवन और गौदर्य का महत्त्व प्रिय के समागम से ही है, अतः तू मान छोड़कर शीघ्रतापूर्वक अपने प्रियतम कृष्ण से मिल ।

सूर के शेष कूट

: १ :

अद्भुत एक कहाँ लौ बरनौ, सारँग-मुग देख्यौ इक सारँग ।
सारँग-रिपु की ओर विराजत है, सारँग तो मन उर सारँग ॥
सारँग मनि जु प्रगटत सारँग, कु द कली ओर विम्ब सारँग ।
मूरदाग गिरिधरन प्रिया-छवि, देखि मुदित नंदलाल सारँग ॥

: २ :

अब मेरी राखी लाज मुरारी ।
सकट मै इक सकट उपज्यौ, कहै मिग गौ नारी ॥
ओर कछु हम जानत नाही, आर्डगन तिहारी ।
उलटि पवन जब बाबर जाग्यौ, स्वान चलयौ सिर भारी ॥
नाचन कूदन मृगिनी लागी, चरन-कमल पर बारी ।
सूरसाम प्रभु अबिगत लीला, आपुहि आपु सँवारी ॥

: ३ :

अरथ करौ पंडित अरु ग्यानी ।
रवि के अंत दधिसुत के आगम, द्वै पट चारि अधिक छवि बानी ।
नहि ब्रज-बनिता, नहि गुर-बनिता, नहि राधा सहचरि यह जानी ।
नहि बर-नारि भग्म जिन भूल्यौ, ब्रह्म-सृष्टि तै यह न उपानी ॥
सारँग-सुत सारँग-चख दीन्है, सारँग-मुता देखि विनखानी ।
कनक-सहोदर बम करि लीन्हें, मूर मूढ़ निज सँगनी जानी ॥

: ४ :

अहो राजति राजीव नैन-छवि, उरग-लता रँग लाग ।
जिहि बनिता रस-बस कीन्हें निसि, प्रगट होत अनुराग ॥
मिथिल अंग अरु सिथिल पाग बनी, सिथिल चरन-गति आज ।
मनहुं सेज-रेवा-हृद ते उठि, आवत है गजराज ॥
भाल-मध्य ज्याबक रँग देखति, लागति है मोहि लाज ।
तुम अपनै जिय यौ जानत हो, तिलक लोक-त्रय राज ।

हम धनु कर लोचनि ललगा, मिलित निगाकृत का ।
 पवन जीतगुत लग्यो अधर पर, यह छवि कही न जाय ॥
 मनु बन्धूक मुगन ऊपर विय, अलि-मुन बैठे आय ।
 कुच-कुंकुम अवलेप तमनि किए, सोभित स्यामल गा ॥
 गत पतन राकाभगि विय मंग, घटा मघन सोभान ।
 स्याम-हृदय लांछन ता ऊपर, लगी करज-कृत रेख ॥
 मनहुं दमन राज शक्ति कीरति, अरुत किमल-तरु गे ॥
 काम बान कर दिए पञ्च चितवन, प्रति अंग अंग लाग ।
 अत्र न काज-गृह देड पियारे, जब आए तब भाग ॥
 ता दिन ने वृषभानु-तन्दिनी, अन्त जान नहि दीन्हे ।
 मूरदास प्रभु प्राणि पुराण, उरि प्रिय रग-वस कीन्हें ॥

. ५ .

आए माई बहु दिगि नै घनधोर ।
 मानो मन मदन कौ हाथी, बल करि बन्दन तोर ॥
 भावन पवन महावतह तै, गुरमन अकुग मोरै ।
 वग-पगति मानो उरह तै, अवधि मगेवर फोरै ॥
 मनु आ लाज मोरि नैनन-मग, कुन कचुकि बर तोरै ।
 अब श्रुति मूर स्याम विच यह गति, गिरन गात जग ओरै ॥

: ६ :

इन्द्र उपवन इन्द्र अरि, दनुजेंद्र इष्ट महाइ ।
 गुन एक जु पाप कीने होत, आदि मिलाइ ॥
 उभय राग समेत दिनमनि, कन्यका ए दोइ ।
 मूरदास अनाथ के है, मदा राखन होइ ॥

: ७ :

एक समै मन्दिर मै देगे, राधा जु अरु नन्दकिमोर ।
 दक्षिण कर मुकता स्याम कै, वजन हस चुप चुगन चकोर ॥
 तामेंह एक अधि छवि उपजी, ऊपर मधुप करत घनधोर ।
 मूरदास प्रभु इन्द्र सकान्यौ, रवि अरु मणि बैठे इक ठौर ॥

: ८ :

कमल पर कमल धरति उर लाइ ।
 कामवती जु हुती बै कमला, कमलै विनु मुरकाइ ॥
 जुगल कमल तै चली जु कमला, कमलन मरु अरुभाइ ।
 आन कमल कर मडित कमला, धरि तन कमल सिराइ ॥

हरि-बाहन-रिपु-रिपु-अरि-गंजन, ताकौ चली दुराइ ।
सूरदास प्रभु जौ नहि मिलिहौ, तौ मरिहै बिष खाइ ॥

: ६ :

कमल पर वज्र धरति उर लाइ ।

राजति रमा कुम्भ रम अतर, पति निज थल जल साइ ॥
बैनतेय सम्पुट सनकादिक, जै अरु बिजै सखाइ ।
औसर बाग बिसारद नारद, हा हा जित गुन गाइ ॥
कनक-दण्ड सारँग विविध रव, निगम मिद्व सुर ध्याइ ।
तिनकै चरन सगोज सूर अव, दरगन किण गुरु-कृपा सहाइ ॥

: १० :

कहुं रजनी विधु अधिक सुहाई ।

पोडस कला सरद परगासित, रबि सौ प्रीति बनाई ॥
यह बिपरीति आपजू जहँ तहँ, अम्बुज सोत मकर गहि लाई ।
ता ऊपर बंधूक प्रकामित, रमन-लता जु सूरत की पाई ॥
द्वै ममि तर द्वै सूर प्रगट भाग, मानौ तमचुर की रति आई ।
सूरदाम स्वामी की सोभा, भागि कौन भाँति बिलगवाई ॥

: ११ :

काहे कौ मम सरन मिधारे ?

ब्रज भूपन बल जाहु तिहारी, तुम ब्रज जीवन जग उजियारे ॥
ग्रह नछत्र है वेद जामु घर, ताहि कहा सारँग सँभारे ।
गिरिजापति भूपन जिन देखे, ते कत देखत है नभ तारे ॥
सुर तरु सदन सुभाग छाँड़ि, कहँ चाहत है द्रुम भूमि भँडारे ।
सूर रहै नीके निगि वागर, हम मुन मुखी न होत दुखारे ॥

: १२ :

गयो मिटि पतियाहू व्यौहार ।

मधुवन बसि मधुरिपु सुनि मधुकर, छाँडे ब्रज आभार ॥
धरनीधर गिरिधर कर धरिकै, मुरलीधर सुखसार ।
अब लखि जोग सँदेसो पठवत, ब्यापक अगम अपार ॥
हाँसी अरु दुख सुनहु सखी सुठि, नवन दसा मंचार ।
सूर प्रान तनु तजन न यातँ, सुमिरि अबधि आधार ॥

: १३ :

गिरि गिरि परत वदन तै अम्भु ।

मानौ वहति सुरसरी सिर धरि, सोमहि सीचत सम्भु ॥

कटि केहरि डगमगत गीम घट, मुन्दरता को खम्भु ।
कनक-लता-भुज मुकतावलि, उर कचुकि नील निलम्भु ॥
सगवगी अलक बदन विधु गजन, मधुपर्हि काल अचम्भु ।
सूरदास गिरिधर के आगम, विमरि गए सब दम्भु ॥

: १४ :

गोद लिए जमुदा नंदनदहि ।
पीत भगुरिया की छवि छाजनि, विज्जुलता मोभित मनु कदहि ॥
बाजी-पति-अग्रज-अम्बा तेहि, अरक-थान-मुन-माला गुदहि ।
मानौ स्वर्गहि तं मुग्गपति-रिपु-कन्या-सौति आई ढरि मिधुहि ॥
आरि करत कर चपत चलावत, नन्द-नारि आनन्द ह्वै मदहि ।
मनौ भुजंग अमी-रस लालच, फिरि-फिरि चाटत मुभग मुचदहि ॥
गूँगी वाननि यौ अनुरागति, भँवर गुँजरत कमल माँहि बदहि ।
सूरदास स्वामी धनि तप किए, बड़े भाग जमुदा अरु नन्दहि ॥

: १५ :

चकोरहि त्रासत है राकेस ।
कमल खिजावत अति जूथन कौ, अटपटिया ब्रज-देस ॥
गिरि मधवा सजोग देखियत, मृग लुब्धक इक मँग ।
उभै बिम्ब बृन्दावन कोकिल, मुख माँगति मव अँग ॥
कनक-लता बाँधति केहरि कौ, रस सरवर सकुचाइ ।
ढाँकत सूर बसन के अन्तर, तुम रस त्रिय बरसाइ ॥

: १६ :

चितवति सारमुता की ओर ।
सकुचि छपाकर गयौ जु नभ दुरि, निरखि आनन तोर ॥
काम पर मृग मीन खंजन, ब्याल भाल चकोर ।
कीर उडुगन अष्ट उर तै, दूती छवि नहि मोर ॥
उरज अम्बुज मधुप हाटक, विकिनी रब घोर ।
बिम्बता बन्धूक विद्रुम, अधर पान तँवोर ॥
कदलि पर केहरि बाँध्यौ, करति चितवनि घोर ।
सूर प्रभु पर अँस-हरनी, परनि नन्दकिसोर ॥

: १७ :

चौपरि जगत मड़े जुग बीते ।
गुन पासे क्रम अंक चारि गति, सारि न कबहूँ जीते ॥
चारि पसारि दिसानि मनोरथ, घर फिरि-फिरि गिनि आनै ।
काम क्रोध मद संग मूढ़ मन, खेलत हार न मानै ॥

बाल विनोद वचन हित अनहित, बार बार मुख भाग्यै ।
 मानौ बग वगदाइ प्रथम दिसि, आठ सात दम नाखै ॥
 पोडस जुक्ति जुवति चित, पोडस वरम निहारै ।
 पोडस अँगनि मिलि पर्जक पै, छ दम अक फिरि डारै ॥
 पन्द्रह पित्र काज, चौदह दस चारि पठे, सर माँधै ।
 तेरह रतन कनक रचि द्वादस, अटन जरा जग बाँधै ॥

: १८ :

छिन पल राउरे की आग ।

करन-नाथ-मु-पच-सग्या, जानिके गव नाग ॥
 भूमिधर-अरि-पिता-वैरी, बाधि राखी पाँग ।
 सिधुमुत-धर-मुहित-मुत गुन, गहक कोप्यौ गाँस ॥
 भानु-अस-गिरीस-आखर-आदि, अँग प्रकास ।
 सूर फिर फिरि सूर-मुत की, परन चाहत पास ॥

: १९ :

जलमुत मै जल मलिल भयौ री ।

सिधुमुता-पति-गवन सबन मुनि, मित्रमुत-बाहन बिलपि ठयौ री ॥
 दारुमुता-सुत विनु जग वातक, रवि मृग मीन मलान भयौ री ।
 हरमुत-बाहन इन्द्रजोरि विधु-बदनी, रनिपति बान दयौ री ॥
 भूपन बसन मनिक् मुख सज्जा पुट्टप सुगन्ध तन वहनि जयौ री ।
 ता जदुनाथ मिलौ इहि औसर सूर बिरह दुख नितहि नयौ री ॥

: २० :

जनि कर जलज पर जलजात ।

सूर-मुत तुम्हारौ सकल लोक सिहात ॥
 रिस-पयोधि निधान सौ कुरुराज छाँडि सुभाइ ।
 सूर-मुत सुनि सिख सखी रवि-इन्दु अंस वसाइ ॥
 सात अष्ट है चरन जाके कित हिए दुख देत ।
 क्यौ न गिरिजानाथ-अरि-तिय मानि सुख सब लेत ॥
 लाल सँग मराल-भोजन माल करिहौ दूर ।
 सूर श्री मनमोहिनँ भजि भोग भामिनि भूर ॥

: २१ :

तब तै इन सबहिनि मचु पायौ ।

जब तै हरि सदेस तुम्हारौ, सुनत तावरो आयौ ॥

फूले व्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि ग्वायो ।
खोले मृगनि चौक चरननि के, हुनो जु जिय विमरायो ॥
ऊँचे बैठि विहंग गभा मै, मुक वनराड कहायो ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपने, कोकिल मगल गायो ॥
निकमि कंदराहू तै केहरि, पूँछ मूड पर ल्यायो ।
गहवर तै गजराज आइकै, अँगहि गर्व बढ़ायो ॥
अब जनि गहर करदु हो मोहन, जो चाहत हो ज्यायो ।
सूर बहुरि ह्वै है राधा कौ, सब बैरिनि कौ भायो ॥

: २२ :

तुम विनु कहौ कागो जाइ ।
सम्भु-आयुध उठि करेजं करत बहु विध घाइ ॥
गोप-पति लगि नरक बैरी आनि कै अकुलाइ ।
पच्छिराज-मुनाथ-पतिनी भोगिवौ चित चाइ ॥
पाँय-तोय निहारि कवहूँ हिलत ना हरखाइ ।
सूर अनभल आन कौ सुनि वृच्छ-बैरि बुलाइ ॥

: २३ :

तेरे तेज सुनौ किन भामिनि, प्रथक प्रथक सब गए सुकाइ ।
भँवर सेन आकुल ह्वै गमनी, अटवि निकट राखे बिरमाइ ॥
सदा हलाहल गरे रहत है, उर बिच अन्तर लिए छिपाइ ।
निधि के मुवन रोहिनी खनै, ख प्रवंस कीन्हौ रिपिराइ ॥
अखिल तात भुकि भप दई तव, धम आइ बिम्ब दुख पाइ ।
सारँगपति कटि निरखि सलज्जित, ओट कोट दीन्हें दिखराइ ॥
गंध जुमल तरराज बिराजत, सकल प्रभा तिन दई छिनाइ ।
सूरदास तै करी अनीती, बिहंग अरुन कीन्हें चखराइ ॥

: २४ :

तें जु पुकारे हरि पै जाइ ।
जिनकी यह सब सौज राधिका, तुव तनु लई छँडाइ ॥
इन्दु कहै हो यदन बिगोयो, अलकनि अलि समुदाइ ।
नैननि मृग वचननि पिक लूटे, बिलपत हरिहि मुनाइ ॥
कमल कीर केहरि कपोत गज, कनक कदलि दुख पाइ ।
विद्रुम कुंद भुजंग सँग मिलि, सरन गए अकुलाइ ॥
अति अनीति जिय जानि सूर प्रभु, पठई मोहि रिसाइ ।
वोली हे ब्रजनारि बेगि चलि, अब उत्तर दै आइ ॥

: २५ :

तै सगि उडुपति कौ गरव हर्यौ ।
 इन्द्रवधू-ता-सुत-कौ-सुत, सो सुत दूरि निबार्यौ ॥
 सारंगसुत कौ बरन बिसेप्यौ, दधिसुत बिम्ब विसार्यौ ।
 गिव विरचि बाहन दोउ जाके, तिनहि सकुचि सिर ढार्यौ ॥
 सारंगसुत तं लजत सारंग, सारंगसुत पुनि जार्यौ ।
 गूग्दाग गुन जीति किए तब, सारंग सारंग खार्यौ ।

: २६ :

दम द्वै वानि कनक सौ नाही ।
 पट दम कला ममेत तोहि सगि, अरथ बिचारौ ती मन माँहीं ॥
 पाच पाँच पँखुरी सो सुन्दर, चम्पक फूल न होइ तहाँ ही ।
 चमकि-चमकि छपि जात सघन, नहि नहि दामिनि दमकाही ॥
 चाव चटुल मराल कुंजर सिध, निरखि न लोक डरावही ।
 द्वै गिव बीच उमा सी एकै, नहिं बै सम्भु उमाहं नाही ॥
 घटा गगन के बिच रवि गगा, सोच बिचारत कवि परछाहीं ।
 सूर जितौ सभ्रम मुख तितनो, कवि भूठे जो साँच सराही ॥

: २७ :

देखत आजु नाँही दोइ ।
 नन्दनन्दन औ छबीला, राधिका रुचि भोइ ॥
 मद्ध वादर बीच मनि मै, स्याम मूरति देख ।
 पुंङरीक बिचार लागी, लैन गन्ध विसेख ॥
 इद्र सुत सुत बीच उन लख, लगे चूमन चाहि ।
 हँसत दोऊ दुहुन कौ लख, सूर बलि बलि जाहि ॥

: २८ :

देखि री देखि अद्भुत रीति ।
 जलज-रिपु-सौ-रिपु कियौ हित, छाँडि आपनी नीति ॥
 कीर कमठ कपोत कोकिल, कियौ ढिग-ढिग बास ।
 धनुष ऊपर तिलक-रेखा, भयौ रिपु कौ त्रास ॥
 जलज भाल सुठारि ऊपर, निरखि मुदित अनँग ।
 सूर स्याम निहारि यह छबि, भई मनसा पंग ॥

: २९ :

देखि री देखि अद्भुत रूप ।
 स्याम घन मै स्याम दधिसुत, कोटि काम सरूप ॥

प्रगट करि अनुराग मोहन, मबहि दरमन देत ।
घिरि चहुँ दिसि दामिनी यह, चंद-गति हरि लेत ॥
अँग अँग अनँग जीते, बन्यौ सुन्दर भेष ।
सूर श्रीगोपाल निरखत, तजत नैन निमेष ॥

: ३० :

देखौ राधे स्याम दमन छवि लागी ।
एक अचम्भौ देखि गखी री, प्रतिबिम्ब मैं जु ममागी ॥
दधिमुत सुफल कीर पर मोभित, कीरति गति अनुरागी ।
सलित सघन माँझ दधिगुत ज्यों, प्रमुदित तनया जागी ।
दधिसुत मैं ज्यों दधिसुत वेध्यौ, दधिगुत कमल उमागी ।
सूरदास गिरिधर के परसत, भागी ॥

: ३१ :

देख्यौ एक कलम अपार ।
सकल ब्रज के भार यामैं, मृगरिपुन की वार ॥
सिब सनक मुकदेव नारद, कमलमुत पचि द्वार ।
धर यौ चक्र संवारि तापर, विकट जाकी धार ॥
सेस महिमा कहि न आवै, निगम गावत चार ।
प्रेम-धुज फहराति उर पर, मूर जन बलिहार ॥

: ३२ :

देख्यौ री हरि नगम नगा ।
जलसुत-भूपन अग बिराजत, वसनहीन छवि उठति तरंगा ॥
कहा कहौ अँग अँग की सोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।
कछु दधि हाथ कछु मुख माखन, सूर हँमत ब्रज-जुबतिन संगा ॥

: ३३ :

नन्द-गाँव कौ मारग बूझै है, हा कोउ दधि बेचनहारी ।
सुनहु न स्याम कठिन तन गारे, विधुबदनी अरु हाटक डारी ॥
अपया कौ सुत ताहि विरचै, जाहि बिरचि सीख पर धारी ।
कमल कुरँग चलत धग्ना-भय, राख्यौ निकट निपँग सँवारी ॥
गति मराल सावक ता पाछै, जावक मुकता चुनत विसारी ।
सूरदास प्रभु कहत वनै नहि, सुख सम्पति वृषभानु दुलारी ॥

: ३४ :

नन्द-नन्दन दरसन जब पैहौ ।
एक द्वै तीनि तजि, चारि बानी मेटि, पाँच छ. गिदरि, सातें भुलैहौ ॥

आठहूँ गाँठि परि है, नबहु दस दिसि भूलिहो, ग्यारहो रुद्र जैसे ।
 बारही कला हैं तपति तन तें मिटति, तेरहौ रतन मुख-छवि न तैसे ॥
 निपुन चौदह, बरन पदही गुभग अति, बरप षोडस सतरहो न रैहै ।
 जपत अठारहवी भेद उनइस नही, बीसहूँ विसै तैं मुखहि पैहै ॥
 नैन भरि देखि जीवन सफल करि लेखि, ब्रजहि में रहत है नहि जानै ।
 सूर प्रभु चतुर, तुमहूँ महाचतुर हो, जैसी तुम तैसे वेऊ सयानै ॥

: ३५ :

नन्दनन्दन मुख देखौ माई ।

अँग-अँग छवि मनहु उये रवि, ससि अरु समर लजार्ई ॥
 खंजन मीन भृग वारिज, मृग-पग दृग अति रुचि पाई ।
 स्नुति-मडल कुटल मकराकृत, विलसत मदन सहाई ॥
 नासा कीर कपोल ग्रीव छवि, दाडिम दसन बुराई ।
 द्वै सारँग-बाहन पर मुरली, आई देति दुहाई ॥
 मोहे थिर चर बिटप विहँगम, व्योम विमान थकाई ।
 कुगुमांजलि बरपत सुर ऊपर, गुरदास बलि जाई ॥

: ३६ :

नारि एक दसहूँ दिस विचरति, अति सुन्दरी मुहागिनि ।
 प्रति-प्रति सदन पुरुष कंठ चिन्मनि, तद्यपि पिय अनुरागिनि ॥
 भरता जार गनत कछु नाही, मत कहहि बैरागिनि ।
 तीनि काल सरबोपरि राजति, स्तवति देव मुनि नागिनि ॥
 अबचनि कौ उपकार करै नित, उच्च दोस की गाहिनि ।
 प्रभु समीप कबहूँ नहि आवति, फिरति दीप गिरि बागनि ॥
 नर-भूषन ह्वै या संगति तैं, एहि त्रिया औ बागनि ।
 सूरदास निरमल मति कारन, करम बिथा नहि लागनि ॥

: ३७ :

नीकन अद्भुत बान लई ।

आपु न तजत गेह पर उर में, करबर सूल सई ॥
 बाचर खचर हारगे बनचर, होत न समता जोग ।
 पय भल्ल कनक रुद्र रँग तेंत्री, सुन्न आदि भर भोग ॥
 याही तैं सबकौ उपजावत, सुख मद महा बियोग ।
 थिर न रहत इक थान न छाँड़त, सूरज अद्भुत लोग ॥

: ३८ :

नीबी ललित गही जदुराई ।

जबहि सरोज धर्यौ श्रीफल पर, तब जसुमति गई आई ॥

तत छन रुदन करत मनमोहन, मन में बुधि उपजाई ।
 देखौ ढीठि देति नहिं माता, गख्यौ गेंद चुराई ॥
 तब नृपभानुगुता हेंगि बोली, हम पै नाहिं कन्हवाई ।
 काहे कौ भक्तभोरत नोखे, चलहु न देउं बतवाई ॥
 देखि बिनोद बाल सुत कौ तब, महरि चली गुगुकाई ।
 सूरदास के प्रभु की लीला, को जानै इहि भाई ॥

: ३६ :

नेकु सखी सारंग श्रोत करि इन्दु-वदन, सर तनक न आवन ।
 दधिमुत-धरनि देखि वाहन-विधु, जल तजि मृगपति अतिमन टानन ॥
 रति जौ देखि अपनौ तनु निदनि, नैगकु भौह कुसुम-गर ताननि ।
 निरखि रूप लोभा कौ सागर, एक सकुच मन में विलम्बावति ॥
 कससपसुत-पीतम सकुचत है, चक्रवाक विछुरत निमि मानत ।
 कहें जन सूर मराल चाल गति, प्रफुलित कुसुम मनहिं सजि जानत ॥

: ४० :

पिय बिनु बहति बैरिन वाइ ।
 मदन बान कमान आयौ, करपि कोप चढाइ ॥
 दिवस-पति सुत-मात-बोध-विचार-प्रथम-मिलाइ ।
 बान पलटत भानुजा-तट, निरखि तन मुरझाइ ॥
 आदि कौ सारंग बैरी, पट प्रथम दिखराइ ।
 उदित अँगनि पै अनीखी, देखि अग्नि जराइ ॥
 कौन राखनहार ब्रज, ब्रजराज दिन अनभाइ ।
 सूरदास सुजान कासौ, कहीं कंठ लगाइ ॥

: ४१ :

पंथ रिपु दिन परस सब दिन, कीजियै सुख मान ।
 बूझियै सत जनन सौ, सब कथा पुन पुरान ॥
 ध्याइयै सारंग पद के, रहन कौ जो थान ।
 कीजियै सुख पाइ ताही, गुनन कौ बर गान ॥
 ओड़ियै नन्दनन्दन जू के, चलत ही दृग बान ।
 राखियै दृग मद्ध दीजै, अनत नाहिं जान ॥
 इन्द्र सत्रु सुभाव, मेरै चाह नाहिं आन ।
 सूर सब दिन सिबा यो हित, देहि जहँ बरदान ॥

: ४२ :

प्रभु कब देखिहौ मम ओर ।

जानि आपुन आपु तै गिरिनाथ गाँठी छोर ॥

स्रवन बचन बिचारि सेनापति सु आनन भोर ।
 दिसा बस तस बहत जानत सात साखी जोर ॥
 जगा जोनी मेल की सुधि कीजिए रुचि जोर ।
 सूर निपट अनाथ भाषित जुगल बर कर जोर ॥

: ४३ :

प्रात समैं नवकुंज सदन मैं बिहरत राधा-नंदकिसोर ।
 दच्छिन कर मुकता स्यामा के तजत हंस अरु चुगत चकोर ॥
 तामैं एक अधिक छबि उपजत ऊपर मधुप करै घनघोर ।
 सूरदास प्रभु इन्द्रसभा मै रबि अरु ससि देखे इक ठौर ॥

: ४४ :

प्रेम कौ सारंग सारंग कौ दीन्हौ ।
 अद्भुत आज बिराजति सुन्दरि, सारंग तजि कर सारंग लीन्हौ ॥
 मुख प्रति सारंग अंग प्रति सारंग, सारंग गति सारंग सुत कीन्हौ ।
 सारंग गहै चली री सारंग सारंग थकित भए यह तीन्हौ ॥
 मदन मनोहर मोहन मूरति तन मन प्रन सबै हरि लीन्हौ ।
 सूरदास प्रभु देव दम्पति गति कोटि कोटि सारंगवस कीन्हौ ॥

: ४५ :

बन बोली बृषभानु-दुलारी ।
 कदली ऊपर सुरपति-बाहन, ता ऊपर ससि धरै कहा री ॥
 तिन मद्धे द्वै खंजन बैठे, करि एको कीन्हौ जु मुरारी ।
 जलनिधि-सुता-सुतन कुम्हिलाने, तातैं मोहिं अचम्भौ भारी ॥
 चतुरानन-बाहन कौ भोजन मलयानिल, तमहूं परजारी ।
 कहै सूर उठि चलि भामिनि, मिलि अति आतुर कुंजन बनवारी ॥

: ४६ :

बन तैं आवत धेनु चराए ।
 संध्या समय सांवरे मुख पर, गोपद-रज लपटाए ।
 बरह-मुकुट के निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए ॥
 बिलसति सुधा जलद-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए ।
 बिधि-बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए ॥
 एक बरन बपु नहि बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए ।
 सूरदास बलि लीला प्रभु की, जीवन जन जस गाए ॥

: ४७ :

बालम बिलमि बिदेस रह्यौ री ।
 भूषन-पितु-पितु-सेनापति-पितु-ता-अरि अंग दह्यौ री ॥

सारंग-सुत-धर-भख धर बैरी, जात न बचन सह्यौ री ।
 नृपति-आदि-सुत-त्रितिय तलफ कहुं, को सक राखि चह्यौ री ।
 बाजनि-सै-तिथि-थान संतोपी, सोई बचन कह्यौ री ।
 जो आपुन हित ब्रज-हित जग-हित, कुब्जा कूर चह्यौ री ॥
 कासौं कहौं सुनै को मेरी, बिपता बीज बयौ री ।
 सूरज प्रभु बिनु मोकहँ बैरी, सब सुख जहर भर्यौ री ॥

: ४८ :

बिधि कौ तात देहु री माई ।
 गोसुत कौ भख पावक लायौ, भीमपिता कर धर्यौ उठाई ॥
 मंगल मातु तामु लै राख्यौ, चारि जाम औरै गति पाई ।
 दस ससि और बतीस भानु मिलि, जब जसुदा पै हाहा खाई ॥
 तो अबलोकि बिलोकि पुत्र-तनु, सिब बाहन की राम मँगाई ।
 रिखि के रिपु हरि के रिपु मैं है, तब जननी अति प्रीति बढ़ाई ॥
 तबहिं न आस करति श्रीपति-रिपु-रिपु, के मुख मै रिपु जु ममाई ।
 सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौ, गिरी परी तहँ जूठनि आई ॥

: ४९ :

बिधु मैं देखे बहुत प्रकार ।
 जलरुह कनकलता पर उदयौ, ढिंग मोतिन कौ हार ।
 कीर कमठ अलि मृग मनमथ धनु, भलकत हेम तुषार ।
 बिम्ब अनार बीच सुक दामिनि, कनेकिल शब्द उचार ।
 मनिधर सिखर रक्त रेखाजुत, बिबिध कुसुम सिंगार ।
 मद्ध प्रबाह सुच्छ सरसरि कौ, चितवति जाति बिकार ॥
 सुनि कौतुक चकि चितवति मोहन, मन मैं करति बिचार ।
 उदित भयौ ससि सूर स्याम हित, स्यामा बदन उदार ॥

: ५० :

बै मुख चितै चितै मुसकात ।
 नबसत साजि राधिका सुन्दरि, रसिक पिबत न रूप अघात ॥
 कर पर हर धरि उरन अरिय, अरि अरि बसकै अरि आवत ।
 मानौ सोम सम्भु सुरसरि कै, कीरति करत न पावत ॥
 सागर मोरि चेरि सागर सौ, कर धरि सारंग लीन्हौ ।
 सूरदास प्रभु सारंग मनिधर, परसत हरि हँसि दीन्हौ ॥

: ५१ :

बैठी आजु रही अकेल ।
 आइगो तब लौ बिहारी, रसिक रुचि बर-बेल ॥

तीन दग कर एक दोऊ, आप ही तैं दौर ।
 पंच कौ उपमेय लीनौ, दाव आपुन तौर ॥
 अंत तैं कर हीन मानैं, तीसरी दो बार ।
 दोइ दस कर दियो समुझत, भूल सौं कै बार ॥
 सोरहैं सो समुझ लागी, हसन हरपत भूर ।
 सूर स्याम सुजान जानौ, परस ही तैं पूर ॥

: ५२ :

ब्रज मैं आजु एक कुमारि ।
 तपन-रिपु-चल तासु-पति-हित, अंत-हीन बिचारि ॥
 सचीपति-सुत-गनु-पितु-मिल-सुता बिरह बिचार ।
 तुम बिना ब्रजनाथ बरपत, प्रबल आँसू धार ॥
 बाल गोप विहाल गाई, करत कोटि पुकार ।
 राख गिरधरलाल सूरज, नाथ बिन उद्धार ॥

: ५३ :

भजि मन दधिमुता-पति-चरन ।
 देवगुरु कौ अबनि सुत ही, सदा चाहैं करन ।
 खचरी जिय जानि मन मै, जात जातक मरन ।
 सत्रु बाहन तासु भूषन, दूटि भुँइ पर परन ॥
 हंस-सुत-रिपु-सुत-के-सुत, की जठर रच्छा करन ।
 सत्य-सुत-मुत-तासु-पतनी. परम चिंता हरन ॥
 दच्छमुता-पनि श्रीपति साथ तैं, जौ बज्र तन उधरन ।
 सूर के प्रभु सदा सहायक, बिस्व पोपन करन ॥

: ५४ :

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वै हौ ।
 पाउँ चारि मिर मृग गुँगमुख, तब कैसें गुन गँहौ ॥
 चारि पहर दिन चरन फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ ।
 टेढ़ कंध रु फूटी नाकनि, कौलौ धौं भुस खैहौ ॥
 लादत जोतन लकुटि वाजि है, तब कहैं मूँड दुरैहौ ।
 सीत घाम घन बिपति बहुत बिधि, भार तरं मरि जैहौ ॥
 हरि संतन कौ कह्यौ न मानत, कियो आपुनो पैहौ ।
 सूरदास भगवंत भजन बिनु, मिथ्या जनम गँवैहौ ॥

: ५५ :

भरि भरि लेति लोचन नीर ।
 तुम बिना ब्रजनाथ सुन्दरि, बिरह-खेद अधीर ॥

कमल उर पर धरति छिन-छिन, छिरकि चंदन चीर ।
जाल मग ससि किरन रोकति, मलय मद समीर ॥
हौ इहाँ तुम पास आयौ, देखि मनसिज भीर ।
सूरदास सुजान श्रीपति, मिलि हरहु तन-पीर ॥

: ५६ :

भामिन आज भवन मैं बैठी ।
मानिक निपुन बना नीकन मैं, धनु उपमेय उमैठी ॥
भूषन पितु पितु सुत अरि पतिनी माता ओर निहारै ।
खचर खिलौना हित सिगार जँगमन सरूप लै धारै ॥
वासव सुत अरि के सुभाव सब कहत सुनत गुन ताही ।
बिथक पुत्र भ्राता पितु पतिनी करन मुनै को नाही ॥
तहँ ब्रजचंद आइगो देखत रही न काहू रोकी ।
सूर स्याम पर गई बारनै निगख कोक जनु कोकी ॥

: ५७ :

भूलि रहे तुम कहाँ कन्हाई ।
तिनकी नाम लेत हम आगै, मपनेहुं दृष्टि न आई ॥
हय बर गय बर मिघ हँस बर, खग मृग कहँ हम लीन्हे ।
सायक धनुष चक्र मुनि चक्रित, चमर न देखे चीन्हे ॥
चंदन और सुगंध कहत हौ, कंचन-कलम बतावहु ।
सूर स्याम ये सब जो ह्वै है, तबहिं दान नृम पावहु ॥

: ५८ :

माधो जू यह मेरी इक गाइ ।
अब आजु तै आप आगै दई, लै आइयै चगाइ ।
अति हरहाई हटकतहूँ, बहुत अमारग जाति ।
फिरति वेद वन ऊख उगारति, सब दिन अरु सब राति ॥
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माँह ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाह ॥
निधरक रही सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि ।
मन ममता रुचि सौ रखवारी, पहिलै लेहु निबेरि ॥

: ५९ :

माधो नैकु हटकी गाइ ।
भ्रमति निसि बासर अपथ पथ, अगह गहि नहि जाइ ।

छुधित अति न अघात कबहूँ, निगम द्रुम दलि खाइ ।
 अष्ट दस घट नीर अँचवति, तृपा तऊ न बुझाइ ॥
 छहौ रस जौ धरौ आगे, तऊ न गध सुहाइ ।
 और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ ॥
 व्योम धर नद सैल कानन, इतै चर न अघाइ ।
 नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ ॥
 भुवन चौदह खुरनि खूँदति, सु धौ कहाँ समाइ ।
 ढीठ गिठुर न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ ॥
 हरे खन-बल दनुज मानव, सुरनि सीस चढ़ाइ ।
 रचि विरचि मुख भौह छवि लै, चलति चित्त चुराइ ॥
 नारदादि सुकादि मुनिजन, थाके करत उपाइ ।
 ताहि वहु कैसे कृपानिधि, सकत सूर चराइ ॥

: ६० :

माधौ बिन पसुपति-रिपु जारै । जदुपति प्रभु तन ताप निबारै ।
 विधि-बाहन के कंठ अभूषन । ता-भख अनहित लागै दूषन ॥
 जम-अनुजा-पितु तासु सनेही । ते सखि सेव जरावै देही ।
 सूरदास श्रीहरि-गुन गावै । गरल सोई सो फनहित लावै ॥

: ६१ :

मुरली नाम गुन बिपरीत ।
 खीन मुरली गहै मुर-अरि, रहत निसिदिन प्रीत ॥
 बहत वसी छिद्र परगट, हृदै छूछै अँग ।
 विदित जग हरि अधर पीबत, करत मनसा पँग ॥
 चलत ते सब अचल कीन्हें, अचल चलत नगेस ।
 अमर आने मृत्यु-लोकहिं, चलत भुइ पर सेस ॥
 नैनहूँ मन मगन ऐसौ, काल गुननि बितीत ।
 सूर त्रै सों एक कीन्हें, रीझि त्रिगुन प्रतीत ॥

: ६२ :

रजनी बिरह-वियोगिनि राधे, कर लिए सारँग सँग बजावति ।
 हरि-स्रुति-हीन-तासु-रिपु-ता-पति-ता अरि-बधु-हित नहिं प्रावति ॥
 हरिसुत-बाहन-ता-रिपु-भोजन-सुत-बाहन बिलम्ब नहिं धावत ।
 चलत न दधिसुत घटत न हरि-अरि, तातै पानि सीस लै आवत ॥
 हरि लिखि मदन काग लिखि कोकिल, लिखि पन्नग पवनहिं भरमावत ।
 तद्यपि बिरह घटत नहिं भामिनि, लिखि अरधंग हरहिं डरपावत ॥

इहि भाँतिन वृषभानुनंदिनी, कहि कहि कथा मनहि समुभावत ।
दीजै दरस कृपा करि स्वामी, तातै सूर परम जस गावत ॥

: ६३ :

राधे कत रिस सरसतई ।
तिष्ठति जाइ बारबारनि पै, होति अनीति नई ॥
नित तुव जरनि मिधुसुत, मानत मृगमद स्याम दई ।
जल थल खगनि सुमन गुरु दोऊ, दुज दुति किरनि भई ॥
बिहरत कुंज बिलासनि पदमिनि, सकुचनि सेत कई ।
दुखी दुरे फल त्राहि बिरहिनी, को अपराध बई ॥
अब तुम जाहु निकुंज भामिनी, नातरु करत खई ।
परमै सूर चतुर चिंतामनि, विपुल बिलासमई ॥

: ६४ :

राधे तुम उडुगन-पति-मुतहीन्ह ।
तेरे भवन गवन हरि कीन्हौ, इहि बाहन गति चीन्ह ॥
नौ-मत साजि सिंगार बदन पै, उठि सारंग-सुत दीन्ह ।
सूरदास प्रभु तोहि मिलन कौ, मैलसुता-सुत कीन्ह ॥

: ६५ :

राधे तेरे रूप की अधिकाइ ।
जो उपमा दीजै तेरै तनु, तामैं छबि न समाइ ॥
मिध सकुचि सर बिथा भरत दिन, बिनु सोइ नीर सुखाइ ।
ससि डर घटत हेम पावक परै, चम्पक रहै कुम्हिलाइ ॥
इभ दूटत अरु अरुन पँगु भए, बिधना आन बनाइ ।
कद्रुज रहे पताल दुरि, खगपति हरि-बाहन भए जाइ ॥
हंस दूरि सर दुर्यौ सरोरुह, गज मृग चले पराइ ।
सूर बिचारि देखि मन पिक, तुव रसना रहे लजाइ ॥

: ६६ :

राधे तै कत मान कियौ री ।
धन हर हित रिपु सुत सुजान कौं, नीतन नाँहि दियौ री ॥
बा जा पति अग्रज अम्बा के, भान थान सुत हीन हियौ री ।
मा पितु अरि हित पितु सुत बंधू, धारत कौन जियौ री ॥
पारबती पितु अरु तेरौ तन, अचल सुभाब लियौ री ।
सूर स्याम हित अरध फट्यौ, कहु कैसे जात सियौ री ॥

: ६७ :

राधे तँ मन मोहि लियौ ।

कुम्भ कुम्भ पर अचरज देख्यौ, तापर मीन दियौ ॥
 मेप बिरष तुल मिथुन मिघ धन, करक कौ अस लियौ ।
 ब्रच्छक ब्रच्छक दोउ मँग रहत है, पाबत है अठयौ ॥
 दधि के सुत कौ फल जो कहियत, मोहत है त्रितियौ ।
 सूरदास प्रभु हित मिलिबै कौ, तोसी कोन तियो ॥

: ६८ :

राधे मान मनायौ मेरौ ।

रवि-सारथी-सहोदर को पति, मारग देखत तेरौ ॥
 मारुत-मुत-पति-अरि-पनि-रिपु-दल, दियौ आनि तहँ घेरौ ।
 हरिपद-जल-बाहन गढ तेरौ, बा मै देहु बसेरौ ॥
 बिहँसि उठी वृषभानुनंदिनी, कीन्हौ जतन घनेरौ ।
 सिधुमुता-मुन कियौ सूर वस जे हुतौ अधिक अनेरौ ॥

: ६९ :

रे मन निपट निलज्ज अनीति ।

जियत की कहि को चलावै, मरत विषयनि प्रीति ॥
 स्वान कुब्ज कुपँगु कानी, खबन पुच्छ बिहीन ।
 भगन भाजन कठ कृमि सिर, कामिनी आधीन ॥
 निकट आयुध वधिक धारे, करत तीच्छन धार ।
 अजानायक मगन क्रीड़त, चरत बारम्बार ॥
 देह छिन-छिन होति छीनी, दृष्टि देखत लोग ।
 सूर स्वामी गौ विमुख ह्वै, सती कैसे भोग ॥

: ७० :

रे मन समभु सोचि विचारि ।

भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि ॥
 धारि पासा साधु मँगति, फेरि रसना सारि ।
 दाँउ अबकै पर्यौ पूरौ, कुमति पिछली हारि ॥
 राखि सतरह 'सुनि अठारह, चोर, पाँचौ मारि ।
 डारि दै तू तीन काने, चतुर चौक निहारि ॥
 काम क्रोध रू लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि नारि ।
 सूर श्रीगोविंद भजन बिनु, चलै दोउ कर भारि ॥

: ७१ :

लैहौ दानि इन्हनि कौ तुमसौ ।
 मत्त गयंद हम हम मौ है, कहा दुरावति हमसौ ॥
 केहरि कनक कलस अमृत के, कैसै दुरे दुरावति ।
 बिद्रुम हेम वज्र के किनुका, नाहिन हमहि मुनावति ॥
 खग कपोत कोकिला कीर, खजनहुँ मुक मृग जाननि ।
 मनि कांचन के चित्र जरे है, गेते पर नहि मानति ॥
 सायक चाप तुरंग बनिजति हौ, लिए सबै तुम जाहु ।
 चंदन चंवर सुगन्ध जहाँ तहँ, कैसे होत निबाहु ॥

: ७२ :

लैहौ दान सब अंगनि कौ ।
 अति मद-गलित ताल फल तें गुरु, इन जग उरज उतंगनि कौ ॥
 खंजन कंज मीन मृगसावक, भंवर जवर भुज भंगनि कौ ।
 कुंदकली बंधूक बिम्बफल, वर ताटक तरंगनि कौ ॥
 कोकिल कीर कपोत किसलता, हाटक हंस फनिंगनि कौ ।
 सूरदास प्रभु हंसि बस कीन्हौ, नायक कोटि अनंगनि कौ ॥

: ७३ :

लोचन लालच तैं न टरै ।
 हरि सारंग सौ सारंग गीधे, दधिमुत काज जरै ॥
 ज्यों मधुकर बस परे केतकी, नहि ह्याँ तैं निकरै ।
 ज्यौ लोभी लोभहि नहि छाँड़त, ये अति उमंग भरै ॥
 सनमुख रहत सहत दुख दारुन, मृग ज्यों नाहि डरै ।
 वै धोखे यह जानत है सब, हित चित सदा करै ॥
 ज्यौ पतंग फिरि परत प्रेमबस, जीवत मुरछि मरै ।
 जैसे मीन अहार लोभ तें, लीलत परै गरै ॥
 ऐसेहि लुब्ध भए हरि छबि पर, जीवत रहत भिरै ।
 सूर सुभट ज्यौ रन नहि छाँड़त, जब लौ धरनि गिरै ॥

: ७४ :

लोचन लालची भए री ।
 सारंग-रिपु के रहत न रोकै, हरि सरूप गिधए री ॥
 काजर कुलुक मेलि मै राखे, पलक कपाट दए री ।
 मिलि मन दूत पैज करि निकसे, बहुरि स्याम पै दौरि गए री ॥

ह्वै आधीन पंच तै न्यारे, कुल लज्जा न गए री ।
सूर स्याम सुन्दर हैस अटके, मानौ उहँइ छए री ॥

: ७५ :

श्रीराधा-बिधु-बदन उदय तै, समि कौ भ्रांति भई ।
मम जै करिबे बाँधि तारा-चमु केतनि भांति दर्ई ॥
नभ निसि सब सम्पूरन, अमि के अगनित सेन लई ।
घाट बाट कछु बै नहि देख्यौ, यह गति मति अथई ॥
सोभा रंच न भई स्याम तनु, भ्रम्पित पट समई ।
छीन बिम्ब प्रति दिन करि करिकै, सब काहू दिखई ॥
दुख पावत अकुलात देखिकै, मन प्रसन्न चकई ।
कौतुक सूर समीर्पाह देखत, छबि त्रिलोक बिजई ॥

: ७६ :

सखी ब्रज राजत एक धनी ।
खेलत है बृन्दाबन माधौ, मद्ध सकल खनी ॥
जलमुत-ता-मुत-ता-मुतको-मुत-ता-मुत भखबदनी ।
मीन-सुता-सुत-ता सुत नासा, तापर जलजमनी ॥
बिद्रुम अघर दसन दुति दामिनि कोकिल मृदुवचनी ।
तिमिर-रिपु-सुत-भ्राता-पितु-बाहन-ता-अरि कटि जु बनी ॥
पीत सानु पर अहि-रिपु राजत, दूटत तरकि तनी ।
सूरदास प्रभु निरखि हरषि कै, बाढ़ी प्रीति धनी ॥

: ७७ :

सखी री कमलनैन परदेस ।
रितु के राज भए सम्प्राप्त, तामैं गए बिदेस ॥
हरि-हित-रिपु-बाहन के भोजन, पठए न देत संदेस ।
पांडौनाथ वेद कर पल्लव, अति पंकज रहे थेरौ ।
एक सै साठि चरन है जिनकैं सो हरि हमसौ फेर्यौ ॥
जननी-स्वाद-बहन-पसुभाषा, सारंग-रिपु के स्वादे ।
ई द्वै नाम मिलत मोहि दुर्जन, तातैं बिरह बिषादे ॥
सुर-गुरु-अरि-बाहन-अरि-ता-पति-ता-अरि यह तन तावत ।
कनक-परनपति तासु अनुज हित सूर अजहुं नहि आवत ॥

: ७८ :

सखी री कंत दुरंतर छायो ।
हरभूषन-आनन-सम-लोचन-ता-अनुचर दिन आयो ॥

लेपि अनल-उच्छिष्ट दसौं दिस भवन अजिर सब छाया ।
तलफत चफल मेरु-अरि-आयुध छिन-छिन प्रकट दुरायौ ॥
सनमुख-असिव-प्रबेस-प्रथम-पुर-ता-बाहन गुन गायौ ।
मनसिज-भग्न सिखि सहित मनोहर, गिरि चढ़ि गिरा सुनायौ ॥
पाँच-मुन्न-दस-गुन-दूने-धरि-सोरह-गुन विसरायौ ।
सूरदाम प्रभु इहै जानि जिय, तैं बिरहिनि समुभायो ॥

: ७९ :

सबै मिलि स्याम संदेस सुनौ री ।
जो तिय चढ़ति सीस गिरिधर के, सो अब कठ गहौ री ॥
नीचै चलत तामु अरि-ता भख भूषण, अंग लगौ री ।
दधिसुत-बाहन मेखल लै कै, बैठि अनीस गनौ री ॥
तार्त सुख महोक बक तीर, यह मत दसन गहौ री ।
कनक-दहन पट औरस मिलिकै, सोई उतारि धरी री ॥
बैरागी के बगल बसत हैं, तापर प्रीति करौ री ।
सूर स्याम प्रभु रस की बातैं, मधुपुर दूर गनौ री ॥

: ८० :

सहज रूप की रासि नागरी, भूषण अधिक बिराजे ।
सुत सौरभ सम्मिलित सुधानिधि कनक-लता पर छाजे ॥
बदन बिदु धारि मिलि सोभित, धम्मिल नीर अगाध ॥
मनहुं बाल रवि रस्मिन संकित, तिमिर कूट ह्वै आध ॥
मानिक मध्य पास चहुं मोती पेंगति, भलक सिद्धर ।
रेंग्यौ तनु-तन तट तारागन, ऊगत घेर्यौ सूर ॥
की मनमथ-रथ-चक्र कि तरिवन, रवि-रथ रचित सुसाज ।
सबन कूप की रहट घंटिका, राजत सुभग समाज ॥
नासा नथ मुक्ता बिम्बाधर प्रतिबिम्बत असमूच ।
बीध्यौ कनक आस सुक सुन्दर, करक बीच गहि चूँच ॥
कहँ लगि कहौ भूषननि भूषित, अंग अंग के रूप ।
सूर सकल सोभा श्रीपति कै, राजिब नैन अनूप ॥

: ८१ :

सारँग सारँग कर जु लिए ।
सारँग कहै सुनौ री सारँग, सारँग सारँग मनहि दिए ॥
सारँग, चढ़ी थके तब सारँग सारँग बिकल हिए ।
सारँग धुकि धुकि परत सारँग, सारँग मनी दिए ॥

सारंग आइ उठाए सारंग, सारंग देख किए ।

सूरदास जौ मिलहि सारंग, तौ यह सुफल जिए ॥

: ८२ :

सिंधुसुता-पति क्यौ न संभारे ।

जाग-ढंकन-रिपु-तनया-पति-रिपु, तामै तू निसिदिन चित धारे ॥

जग कौ मित्र मित्र पति पति अरि ताकी पिता, तेरौ खेल बिगारे ।

सूरदास रे मन सुरपति सुत मित्र काहे विसारे ।

: ८३ :

सुरति बिनु जलसुत बिकल भए ।

सारंग-सुता-पति-रिपु-तनु प्रकट्यौ, खगपति चख न पए ॥

सारंगपति दिखिअत नहि सारंग, सारंग हाथ लए ।

सारंग-नाद सुन्यौ है सारंग, सारंग राखि रए ।

सारंगसुता अक भरि लीन्है, सारंग चित्र ठए ।

सारंग देखि बिबस भए सारंग, लै रथ भाजि गए ॥

भयौ भोर सूर द्वै प्रगटे, आनंद उमंगि भए ।

सूरदास प्रभु आइ भवन तँ, तन की तपत गए ॥

: ८४ :

सुन्दर स्याम सोभा देख ।

बारि-ससि-कै-आदि कोटन, कोटि लाजत लेख ॥

मीन-रिपु-कै-सुन्न-गुन मन, गहत बरबस आन ।

चलन सरितन की सम्हारे, खचर खेलन बान ॥

बिकट भ्रुकुटी मुकुट लटकन, सुकटि सोभा सोइ ।

सूर बलि बलि जात तन मन, तपन तीखन धोइ ॥

: ८५ :

सुनि हरि हरिपति आज बिराजै ।

मधु हरि त्रसत मंद भयौ हरि-बल, बल करि हरि-दल गाजै ॥

हरि की चाल चलत चंचल गति, हरि के बदन बिरह दुख साजै ।

सूरदास प्रभु कौ भजि इक छन, त्रिविध ताप तन भाजै ॥

: ८६ :

सोभा आजु भली बनि आई ।

जलसुत ऊपर हंस बिराजत, तापर इन्द्रवधू दरसाई ॥

दधिसुत लियौ दियौ दधिमुन मै, यह छवि देखि नन्द मुमकाई ।

नीरज सुत बाहन कौ भच्छन, सूर स्याम लै कीर चुगाई ॥

: ८७ :

स्याम-रँग नैना राँचै री ।

मारँग-रिपु तै निकमि निलज भण, अब परगट ह्वै नाचै री ॥

मुरली-नाद मृदंग मृदंगी, अधर बजावनहारे ।

गइयन घर घर घेरि चलावत, लोभ नचावन हारे ॥

चंचलता निरतनि कटाच्छ रस, भाव बनावत नीके ।

सूरदास रीझे गिरधारी, मनमाने उनही के ॥

: ८८ :

स्याम रति अंत रम डहै कीन्हौ ।

कहन पुनि-पुनि कहा अँग अम्बर मजहु, मैं रही मकुचि गहि आपु लीन्हौ ।

कियौ तब मैं कहा लरी मारँग मौ, मारँगधर धरति तब चरन चांपी ।

सेम सहसौ फननि मननि की उद्योति, अति त्रास ते कंट लपटाइ कांपी ॥

रही उनकी टेक चलै मेरी कहा, धरनि गिरिराज भुज सबल धारी ।

सूर प्रभु के सखी मुनहु गुन रैन के, वै गुन्य मैं कहा कहौ नारी ॥

: ८९ :

हमकौ तुम बिन सबै सतावत ।

कहियौ मधुप चतुर माधौ मौ, तुमहूं सखा कहावत ॥

जाकौ तनु हरि हर्यौ दीन सुनि, कुल मरनागत कीन्हौ ।

सोइ मारत करवारि धारि कर, हमकौ कान न कीन्हौ ॥

काढ़ि सिधु तै सिब कर सौप्यौ, गुनहगार की नाई ।

सो ससि प्रगट प्रधान काम कौ, चहु दिमि देत दुहाई ॥

अमरनाथ अपराध छमा करि, पीठि ठोकि मुकरायौ ।

सोइ अब दंड कोपि जलधर लै, ब्रजमंडल पै छायौ ॥

पच्छ पुच्छ सिर धारि सिखनि के, इहि बिधि दई बड़ाई ।

तिन अब बालि छोलि तनु डार्यौ, उपल खोर की नाई ॥

पच्छ छोरि अलि स्वच्छ पच्छ करि, तिनहूं कोप जनायौ ।

परी जो रेख ललाट अधिक मुख, मेटि दुकार बनायौ ॥

कौन कौन सौं बिनती कीजै, कही जितेक कहि आई ।

सूर स्याम अपने या ब्रज की, इहि बिधि कानि घटाई ॥

: ९० :

हरि-मुख निरखति नागरि नारि ।

कमलनयन के कमल बदन पर, बारिज बारिज बारि ॥

सुमति सुन्दरी सरस पिया रस, लम्पट मांडी आरि ।
 हरि जुहारि जु करत बसीठी, प्रथमहिं प्रथम चिन्हारि ॥
 राखति ओट कोटि जतननि करि, भाँपति अंचलि भाारि ।
 खंजन मनहुं उड़न कौं आतुर, सकत न पंग्व पसारि ॥
 देखि सरूप स्याम सुन्दर को, रही न पलक सम्हारि ।
 देखहुं सूर अधिक सूरज तनु, अजहुं न मानी हारि ॥

: ६१ :

हरि-रिपु अति गुञ्जार सुनाई ।

नख-रद स्रम सौं देह भई, गति अनंग तरंगन छाई ॥
 ससि सबिता रथ चलत एक ह्वै, ताकै नाम-रूप दुखदाई ।
 हर नैनाहं के मुख बाहन, तिन अति मिलिकै कूक मचाई ॥
 सुरगुरु-बाहन अति दारुन गति, पुनि दुख दुसह सह्यौ नहिं जाई ।
 जरासिंधु अरि रथ योजन भख, को बरजै इनकी रितु आई ॥
 जल-तनया-अरि की छबि निरखत, व्याकुल भई अतिसय अकुलाई ।
 भोजन धाम पर्यौ आंगन में, तातै हौं अति अधिक जराई ॥
 जलनिधि अति आसैं ताके कन, चमटे मदन बान छतछाई ।
 पसु के पुत्र हरे तिन बाहन, तिस भोजन अब लेउ उतराई ॥
 मेरु अंस किहि काज धर्यौ उर, करकस लगि तन सोम सुहाई ।
 कितके राम सुत सुता सखी री, दूरि धरे यह अधिक सताई ॥
 थल कौ कमल बिमल ताकौ जल, डाख सीस भयौ दुखदाई ।
 ब्रजभूषन कर धर्यौ तासु गति, उगत न तनक गयो छनकाई ।
 कोक-कला अरु छलन बतीसौ, सब गुन पठी सो सखी बुलाई ।
 कहियौ प्रगत पुकारि स्याम सौ, अबधि बढ़ी सोई रितु आई ॥
 लोक लाज कुल कानि सबै तजि, आइ मिली अब हरि सौं माई ।
 सूर स्याम प्रिय जौ नहिं आवै, स्यामा स्याम भई दरसाई ॥

